भारतीय ज्ञानपीठ काशी

ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला—संस्कृत ग्रन्थाङ्क १६

आचार्य दामनन्दी विरचित

पुराणसारसंग्रह

[भाग २]

सम्पादक

पं० गुलाबचन्द्र जैन, व्याकरणाचार्य, एम० ए०

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

प्राक्कथन

पुराणसारसंग्रह प्रथम भागके प्रकाशित होनेके कुछ ही दिन बाद उसके इस दूसरे भागको प्रकाशित होता हुआ देखकर हमें प्रसन्नता होती है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा दूसरी भाषाओंका अभी इतना विपुल जैन साहित्य अप्रकाशित दशामें पड़ा हुआ है जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। वस्तुतः अभीतक हम पूरी तरहसे यह भी नहीं जान सके हैं कि किस भाषाका हमारा साहित्य कितना है, उसके लेखक कौन हैं और वह किस कालकी अमर कृति है। एक माणिकचन्द्र ग्रन्थमालाको छोड़कर पहले कोई ऐसी साहित्यिक संस्था भी नहीं थी जो इस ओर ध्यान देती। अन्य जो भी प्रकाशक थे वे व्यापारी थे। उन्हें उसी साहित्यका प्रकाशन करना इष्ट था जो अर्थार्जनमें सहायता पहुँचाता था। किन्तु जैसे-जैसे समय बीता, कुछ महानुभावोंका ध्यान इधर आकर्षित हुआ और अपने मौलिकरूपमें तथा भाषान्तरके साथ उसे प्रकाशित करनेवाली कई संस्थाएँ खड़ी की गईं। फिर भी उनके पास इतने विपुल साधन नहीं कि वे प्रकाशन और सम्पादनसम्बन्धी सब आवश्यकताओंकी पूर्ति कर सकें। भारतीय ज्ञानपीठकी स्थापनाके बाद अब अवश्य ही यह आशा की जा सकती है कि हमें अपना पूरा साहित्य प्रकाशित दशामें देखनेको मिल सकेगा।

उस हुण्डावसर्पिणी कालमें जैनधर्मके २४ तीर्थङ्कर हुए हैं उनमेंसे ऋषभदेव, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर इन छह तीर्थंकरोंने सार्वजनिकरूपमें पर्याप्त प्रसिद्धि पाई है। उन्हीं छह तीर्थंकरोंके चरितका उनके पूर्वभवोंके साथ आचार्य दामनन्दीने इस ग्रन्थमें संकलन किया है। उनका यह संकलन उनके कालतक उपलब्ध

कई प्रसिद्ध महापुराणोंके आधारसे किया गया है इसलिए उन्होंने इसका नाम पुराणसारसंग्रह रखा है। इसके प्रथम भागमें प्रारम्भके तीन और द्वितीय भागमें अन्तके तीन तीर्थंकरोंका चरित मूल और अनुवादके साथ प्रकाशित हुआ है।

हिन्दी अनुवाद डा० गुलाबचन्द्रजी एम० ए०, व्याकरणाचार्यने किया है। डा० गुलाबचन्द्रजी स्याद्वादमहाविद्यालय और हिन्दूविश्वविद्यालयके स्नातक हैं। हिन्दूविश्वविद्यालयसे ही उन्होंने डाक्टरेटकी सम्मानित उपाधि प्राप्त की है। वर्तमानमें वे नालन्दा पाली इन्स्टीट्यूटमें पुस्तकालयाध्यक्ष हैं। जो विस्तारके साथ पुराणोंका स्वाध्याय करनेके लिए समय नहीं निकाल पाते उनके लिए संक्षेपमें पुण्य पुरुषोंके निर्मल-चरितका स्वाध्याय करनेकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ बड़ा उपयोगी है।

इस सांस्कृतिक और अत्युपयोगी प्रकाशनके लिए भारतीय ज्ञानपीठके सञ्चालक महोदय और डा० गुलाबचन्द्रजी एम० ए०, व्याकरणाचार्य धन्यवादके पात्र हैं।

—फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

विषयानुक्रम

नेमिनाथ-चरित

प्रथम सर्ग

द्वितीय सर्ग

तृतीय सर्ग

चतुर्थ सर्ग

पञ्चम सर्ग

पार्श्वनाथ-चरित

प्रथम सर्ग

द्वितीय सर्ग

तृतीय सर्ग

चतुर्थ सर्ग

पञ्चम सर्ग

वर्धमान-चरित

प्रथम सर्ग

द्वितीय सर्ग

तृतीय सर्ग

चतुर्थ सर्ग

पञ्चम सर्ग

पुराणसार-संग्रह

नेमिनाथचरितम्

प्रथमः सर्गः

जिनवरमरिष्टनेमिं यदुवंशविशालचक्रनेमिमहम् ।
अभिवन्द्य नेमिचरितं नामावलिकाभिरभिधास्ये ॥१॥

जम्बूनाम्नेऽभिहितं श्रुतकेवलिना सुधर्मनामभृता ।
शृणुतेतिहासमुदितं मुदा पुराणोद्यमनवद्यम् ॥२॥

इह भारतवर्षेऽभूद् वरजम्बूवृक्षलक्षणे द्वीपे ।
रम्ये कुशाग्रविषये शौरीपुरनामतो नगरम् ॥३॥

तत्राभवत्प्रवीरः परवीरमदापहा महानृपतिः ।
प्रथितो नाम्ना शूरस्तस्यासीद्धारिणी देवी ॥४॥

पुत्रौ तयोरभूतामन्धकवृष्णि[1]र्विशिष्टधीर्ज्यायान् ।
अपरो नरपतिवृष्णिः[1] सूर्या[2]चन्द्रोपमौ भूमौ ॥५॥

आदाय चाधिराज्ये ज्येष्ठं तनयं नृपो निरक्राम्यत् ।
इतरमपि यौवराज्ये क्रममूले सुप्रतिष्ठस्य ॥६॥

द्वावपि च धारणेयौ समूहतुः संहतौ स्वराज्यधुरम् ।
धुर्याविव धुरमुर्वी[3] परस्परस्याऽप्रतीपेन ॥७॥

अन्धकवृष्णेरासीत्प्रिया सुभद्रेति दुहितरौ तस्याः ।
कुन्ती माद्रीत्यास्तां योषिद्गुणरत्नमंजूषे ॥८॥

तनयाः समुद्रविजयश्चाक्षोभ्यःस्तिमितसागरो हिमवान् ।
विजयाचलौ च धीरौ धारणनामा च पूरणकः ॥९॥

---

१. वृष्टिरित्यपि पाठः । २. 'देवताद्वन्द्वे च' इत्यनेनात्र आनङ् ।
३. महतीं ।

नेमिनाथचरित

प्रथम सर्ग

मैं, यदुवंश रूपी विशाल चक्केकी धुराके समान जिनवर अरिष्टनेमिको नमस्कार कर, पूर्वभवोंकी नामावलीके साथ उनके चरितका वर्णन करता हूँ। श्रुतकेवली सुधर्म स्वामीने जम्बूस्वामी को यह चरित सुनाया था। पुराणोंमें कहे गये इस उत्तम और निर्दोष इतिहास (चरित) को आप सब सुनें ॥ १-२ ॥

श्रेष्ठ जम्बूवृक्षसे उपलक्षित इस जम्बूद्वीपके भरत क्षेत्रमें कुशाग्रपुर नामका एक मनोहर देश था जहाँ शौरीपुर नामका नगर था। वहाँ अत्यन्त बलवान् तथा अपने शत्रुओंके मदको नष्ट करने वाला एक बड़ा राजा था। वह 'शूर' नामसे विख्यात था। उसकी रानीका नाम धारिणी था। ॥ ३-४ ॥

उनसे दो पुत्र हुए। ज्येष्ठ पुत्र अन्धकवृष्णि अति बुद्धिमान् था। दूसरेका नाम नरपतिवृष्णि था। इस भूतल पर वे दोनों ऐसे मालूम पड़ते थे, मानो सूर्य और चन्द्रमा ही हों। राजा शूरने अपने ज्येष्ठ पुत्रको अधिराज पद तथा छोटे लड़केको युवराज पद देकर सुप्रतिष्ठित मुनिराजके चरणोंमें जिनदीक्षा ले ली। रानी धारिणीके वे दोनों पुत्र संगठित हो, अविरोध भावसे अपने राज्यकी धुराको ढो रहे थे। जैसे कि बड़ी धुराको दो धुर्य अर्थात् बैल परस्पर ईर्ष्याभावसे रहित होकर ढोते हैं ॥ ५-७ ॥

अन्धकवृष्णिके सुभद्रा नामकी एक प्रिय रानी थी। उससे कुन्ती और माद्री नामकी दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं जो कि स्त्रियोंके श्रेष्ठ गुणोंकी मंजूषा अर्थात् पिटारी थीं। तथा उनके दश सुन्दर पुत्र हुए जिनका नाम समुद्रविजय, अक्षोभ्य, स्तिमितसागर,

अभिनन्दनवसुदेवाविस्येते दश बभूवुरभिरूपाः ।
विख्यातविपुलसत्त्वाः सर्वेऽपि यथार्थनामानः ॥१०॥

नरपतिवृष्णेरभवद् भार्या पद्मावती परमरूपा ।
नाम्नोग्रमहासेनौ सुरसेनश्चेति तत्पुत्राः ॥११॥

आगम्य सुप्रतिष्ठः प्रतिमामथ गन्धमादनोद्याने ।
तस्यां पुरि संतस्थे तं वीक्ष्य सुदर्शनो यक्षः ॥१२॥

उपसर्गमुग्रमकरोदुदीर्णमन्युस्तदाऽस्य नैकविधम् ।
ध्यानाऽध्यासितचेता मुनिराप्नोत्केवलज्ञानम् ॥१३॥ युग्मम् ।

तत्पूजनार्थमिन्द्रान्प्रलम्बमन्दारमाल्यशोभिशिखान् ।
ससुराऽप्सरोगणवृतान् विलोक्य वृष्णिः समायातान् ॥१४॥

स्वयमपि सदारतनयो निरित्य नगराद्यतीन्द्रमुदितश्रीः ।
सुरसङ्घमध्यभाजं प्रवन्द्यमिन्द्रैः सहसोऽस्थात् ॥१५॥

अप्राक्षीद् भगवन्तं स्वसंशयं छिन्नसंशयमथेत्थम् ।
किं कारणमस्माकं वंशो हरिवंशनामेति ॥१६॥

भगवानवोचदस्मै वत्से त्विह विश्रुतो विजय[1]नामा ।
राजाऽसीत्कौशाम्ब्यां तारानामास्य खलु कान्ता ॥१७॥ युग्मम् ।

तत्रैव सुमुखनामा[2] श्रेष्ठी प्रत्यग्रहीत्समालोक्य ।
स्वानुचरस्योपायाद् भार्यां नाम्ना च वनमालाम् ॥१८॥

तद्भर्त्ता स्वककान्तावियोगदुःखार्तधीदुरपमानात् ।
शीतलजिनस्य तीर्थे प्राव्राजीत्प्रोष्ठिलसकाशे ॥१९॥

---

१. रघुरिति उत्तरपुराणे; सुमुख इति हरिवंशे । २. 'वीरक' हरिवंशे ।

हिमवान्, विजय, अचल, धारण, पूरण, अभिनन्दन और वसुदेव था। वे सब अपने विपुल पराक्रमके लिए विख्यात तथा यथार्थ नामवाले थे ॥ ८-१० ॥ नरपतिवृष्णिके पद्मावती नामकी एक अति रूपवती रानी थी। उससे राजाको उग्रसेन, महासेन और सुरसेन नामके तीन पुत्र हुए ॥ ११ ॥

एक समय उस नगरके गन्धमादन नामके उद्यानमें सुप्रतिष्ठित नामके मुनिराज आये और वहाँ प्रतिमायोग धारण कर बैठे। उनको देखकर सुदर्शन नामका यक्ष अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उनके ऊपर अनेक प्रकारके घोर उपसर्ग किये। पर मुनिराज ध्यानसे न डिगे और उन्होंने अन्तमें केवलज्ञान प्राप्त किया ॥१२-१३॥ उनकी पूजाके लिए, कल्पवृक्षकी मालासे सुशोभित मुकुट पहने हुए तथा अनेक देव और देवियोंसे घिरे हुए सभी इन्द्र वहाँ आये। उनको आया हुआ देखकर राजा अन्धकवृष्णि भी स्वयं अपनी रानी और पुत्रोंके साथ प्रसन्न होता हुआ नगरसे निकला और देवोंके बीचमें बैठे हुए उन मुनिराजकी वन्दना कर इन्द्रोंके साथ बैठ गया। उन विगतसंशय मुनिराजसे उसने प्रश्न पूछा कि भगवन्! हमारा वंश हरिवंश नामसे क्यों कह-लाता है ॥१४-१६॥

तब मुनिराजने उससे कहा कि यहाँ वत्स देशकी राजधानी कौशाम्बीमें विजय नामसे विख्यात एक राजा था उसके एक रानी थी जिसका नाम तारा था ॥१७॥ उसी नगरमें सुमुख नामका एक सेठ रहता था, वह अपने आश्रित वीरक सेठकी पत्नी वनमालाको देखकर मोहित हो गया। उसने कुछ उपायोंसे वनमालाको वशमें कर लिया ॥१८॥ इधर वनमालाके पति वीरकने अपनी पत्नीके वियोग-दुखसे तथा इस घोर अपमानसे दुखी हो, भगवान् शीतलनाथके तीर्थकालमें विद्यमान प्रोष्ठिलाचार्यके समीप मुनिव्रत

संक्लेशसमायुक्तं स तपः कृत्वाऽपि बाह्यसांसिधिकः।
सौधर्मे स्वर्गेऽभूत्पल्यत्रयजीवितो देवः ॥२०॥

सुमुखोऽन्यदादिषातां वनमाला चात्मदुष्कृतविनादि।
परिपूज्य परमदानं मुनये वरधर्मसिंहाय ॥२१॥

गर्भगृहे सुखमनयोरशनिरपतच्च सुप्तयोरुपरि।
मृत्वाऽतोऽजनिषातां[1] हरिवर्षे दम्पती युगपत् ॥२२॥

कालान्तरे वियति तावतिगच्छन् वीरकः समद्राक्षीत्।
ध्यात्वा स पूर्ववैरं प्रबलेनोद्धृत्य चानैषीत् ॥२३॥

चम्पायां स्वर्याते स चन्द्रकीर्त्तावराजकायां तम्।
मार्कण्डाख्यं कृत्वा सुमुखचरं नृपमयात् स्वौकः ॥२४॥

सुचिरं प्रशास्य पृथिवीं नरकमगान्मांससेवया स मृतः।
तत्पुत्रो हरिरासीद्धरितुल्यपराक्रमो राजा ॥२५॥

तस्यान्ते तत्पुत्रो महागिरिस्तस्य हिमगिरिस्तनयः।
नरपतिवसुगिर्याद्याः क्रमशोऽभूवंस्ततो भूपाः ॥२६॥

एवं बहुष्वतीतेष्वभवद्भवतः पिता नरेन्द्रोऽस्मिन्।
शौरिनगरस्य कर्त्ता द्वादशवर्षमयमनुशशास ॥२७॥

हरिवर्षादवतीर्णो यद्भवतां पूर्वजः पुरा तस्मात्।
हरिवंश इति ख्यातो वंशो द्यावापृथिव्योर्वः ॥२८॥

---

१. हरिपुरं नामनगरं विजयार्धे इति हरिवंशपुराणे; उत्तरपुराणे तु हरिवर्षमेव पाठः।

ले लिये और बाह्यसिद्धिवाले, तथा कायका क्लेश देनेवाले तप करने लगा, जिससे वह सौधर्म स्वर्गमें तीन पल्यकी आयुवाला देव हुआ ॥१९-२०॥

किसी समय सेठ सुमुख और वनमालाने वरधर्म नामके मुनिराजकी अच्छी तरह पूजा कर पापोंको नाश करनेवाला उत्तमदान-आहारदान दिया। एक दिनकी बात है कि वे दोनों शयनागारमें सुखपूर्वक सोये हुए थे कि उनके ऊपर आकाशसे बिजली गिरी और दोनों मरकर हरिवर्ष देशमें पति-पत्नीके रूपमें हुए ॥२१-२२॥

किसी समय वीरकके जीव देवने आकाश-मार्गसे जाते हुए उन दोनोंको देखा और पूर्वभवके स्मरणसे उन दोनोंको बलपूर्वक उठा ले गया ॥२३॥

इधर भारतवर्षमें चम्पानगरीके राजा चन्द्रकीर्तिका स्वर्गवास हो गया था, इसलिए वह नगरी राजारहित थी। उस देवने सुमुखके जीवको वहाँ मार्कण्ड नामका राजा बना दिया तथा अपने स्थान चला गया। उस राजाने पृथ्वीपर बहुत समय तक शासन किया और मांस-सेवनके कारण मरकर नरक गया। उसके सिंहके समान पराक्रमी हरि नामका पुत्र हुआ ॥२४-२५॥ उसके बाद उसका पुत्र महागिरि तथा महागिरिसे हिमगिरि तथा क्रमसे नरपति, वसुगिरि आदि राजा उस कुलमें हुए ॥२६॥ इस तरह बहुत काल बीत जानेके बाद इसी कुलमें तुम्हारा पिता राजा हुआ; जिसने कि शौरीपुर नामका नगर बसाया और वहाँ बारह वर्ष तक राज्य किया ॥२७॥ क्योंकि तुम्हारा पूर्वज पहले हरिवर्ष देशसे आया था, इसलिए तुम्हारा वंश इस लोकमें हरिवंश नामसे विख्यात हुआ ॥२८॥

इत्युक्ते पूर्वभवं पुनरप्राक्षीन्नराधिपः स्वस्य ।
केवल्युवाच नगरे साकेतेऽनन्तवीर्यनृपेट् ॥२९॥

श्रेष्ठी सुरेन्द्रदत्तो द्वात्रिंशत्कोटिसारको जैनः ।
विप्रोऽस्य रुद्रदत्तो मित्रमभूद् वृषभजिनतीर्थे ॥३०॥

एकद्विकाऽष्टकान्यथ तिथिपर्वमहोत्सवेष्विति निधाय ।
माषाणि[1] चास्य हस्ते जिनपूजायै गते वणिजि ॥३१॥

वेश्याद्यूतासक्तो द्वादशवर्षार्थमर्पितं वित्तम् ।
परिणाश्य रुद्रदत्तः प्रामोषीदेव तत्रैव ॥३२॥

आरक्षकैः कदाचिन्निबद्धमुक्तो वणिग्व्यपेक्षातः ।
उल्कामुखवनमित्वा व्याधैः पर्य्यटि परिमुष्णन् ॥३३॥

सेनान्या निहतोऽस्मिच्छ्रेणिकनाम्ना स रौरवं नरकम् ।
देवद्रव्यकृपणात्प्रविश्य दुःखं चिरं भेजे ॥३४॥

त्र्यधिकं त्रिंशतमस्मिन्नब्ध्युपमानं विभुज्य पापफलम् ।
च्युत्वाऽस्मादभ्राम्यत्तिर्यङ्नरकेषु चिरकालम् ॥३५॥

पश्चात्पापोपशमादजनिष्ट धनञ्जयेशगजनगरे ।
कापिष्ठलायनाख्यानुन्दर्योर्विप्रयोः पुत्रः ॥३६॥

निःश्रीः गौतमनाम्ना मृतपितृकः संचरन् स भिक्षायै ।
वैश्रवणश्रेष्ठिगृहे साधुं भुञ्जानमद्राक्षीत् ॥३७॥

नाम्ना समुद्रदत्तं गत्वा वसतौ तमन्वसावभणीत् ।
न लभेऽन्यथा हि भिक्षां युष्मद्वर्ग्यं कुरु च मामिति॥३८॥युग्मम्।

ज्ञात्वा स भव्यसत्त्वं निःक्रमयामास यतिपतिस्तमतः ।
वर्षसहस्रेणासौ व्यनीनशत्कर्म विघ्नकरम् ॥३९॥

---

१. मुद्राविशेषः, दीनार इति उत्तरपुराणे ।

ऐसा कहने पर राजाने मुनिराजसे अपने पूर्व-भव पूछे। तब उन केवलज्ञानी मुनिराजने इस प्रकार कहा:—भगवान् ऋषभ-देवके तीर्थकालमें एक समय अयोध्या नगरीमें अनन्तवीर्य राजा राज्य करता था। वहीं बत्तीस करोड़ दीनारका स्वामी सुरेन्द्रदत्त नामका एक जैन सेठ भी रहता था। उस सेठका मित्र रुद्रदत्त नामका एक ब्राह्मण था ॥२९-३०॥ वह सेठ तिथि पर्व-महोत्सवोंके दिनोंमें जिन-पूजाके निमित्त बारह वर्षके लिए उस ब्राह्मणको एक, दो और आठके हिसाब से दीनार देकर व्यापार करने विदेश चला गया पर उस ब्राह्मणने वह सब धन वेश्या तथा जुएमें नष्ट कर दिया और वहीं चोरी करने लगा ॥३१–३२॥ किसी समय नगरके रक्षक सिपाहियोंने उसे पकड़ लिया पर सेठके ख्यालसे उसे छोड़ दिया। उसके बाद वह उल्कामुख वनमें जाकर चोरी करता हुआ, भीलोंके साथ घूमने लगा। ऐसा कर्म करते हुए वह श्रेणिक नाम सेनापति-द्वारा मारा गया तथा रौरव नामके नरकमें जन्म लिया। देवद्रव्यको नष्ट करनेके कारण उसने नरकमें बहुत दुःख भोगे। उस नरकमें तैंतीस सागर तक पापफल भोगकर वहाँसे निकला और बहुत काल तक पशुगति तथा नरकोंमें चक्कर लगाता फिरा ॥ ३३–३५ ॥

इसके बाद पापकर्मोंके उपशम होनेसे वह धनञ्जय राजाके हस्तिनापुर नगरमें कापिष्ठलायन ब्राह्मण तथा अनुन्दरी ब्राह्मणीका पुत्र हुआ ॥ ३६ ॥ उसका नाम गौतम था और वह निर्धन था। उसके माता-पिता मर गये थे। एक समय भिक्षाके लिए घूमते हुए उसने वैश्रवण सेठके घरमें भोजन करते हुए समुद्रदत्त नामके मुनिको देखा। वह उनके पीछे-पीछे उनके ठहरनेके स्थानको गया और कहने लगा कि मुझे किसी तरह भिक्षा नहीं मिलती है इस-लिए आप मुझे अपने वर्गमें मिला लीजिए ॥ ३७–३८ ॥ उन मुनिराजने उसे भव्य जीव जानकर दीक्षित कर लिया। उसने भी

लब्धिचतुष्कमवाप्नोदक्षीणमहानसं च देवैश्यम् ।
भूयश्च बीजबुद्धिं पदानुसारिमपि च तपसः ॥४०॥

सश्रीगौतममाख्यां गणधरत्वं चास्य सम्पाद्य गुरुः ।
प्रतिपद्य च जिनकल्पं सुवि[1]शालमगात् तमाराध्य ॥४१॥

शिष्योऽपि च पञ्चाशद्वर्षसहस्राणि सत्तपः कृत्वा ।
तत्रैव समुत्पेदे स्वगुरोरनुयानमिव कुर्वन् ॥४२॥

अष्टाविंशतिमस्मिन्षष्ठग्रैवेयके समुद्राणाम् ।
अहमिन्द्रसौख्यमतुलं भुवनेड् निरन्तरं भुक्त्वा ॥४३॥

अवतीर्य पुनस्तस्मादन्धकवृष्णिर्भवानभूदत्र ।
अहमपि ततोऽवतीर्णो भवद्गुरुः केवली जातः ॥४४॥

पुनरपि चात्मदुहित्रोः पुत्राणां चापि पूर्वजन्मानि ।
विज्ञापितोऽथ वेत्ता पृथिवीपतिना समाचख्यौ ॥४५॥

अत्रैव मलयराष्ट्रे[2] भद्रिलनगरेशमेघरथनृपतेः ।
कान्ताऽभवत्सुभद्रा तत्पुत्रो दृढरथो नाम्ना ॥४६॥

श्रेष्ठी धनदत्ताख्यो नन्दयशा गेहिनी तयोस्तनये ।
ज्येष्ठा सुदर्शनाऽख्या सुज्येष्ठाऽन्या नव च पुत्राः ॥४७॥

धनजिनदेवकपालाश्चार्हद्दासस्तथा च जिनदासः ।
अर्हज्जिनदत्ताख्यौ प्रियमित्रो धर्मरुचिरिति ते ॥४८॥

प्राव्राजीत्क्षितिपालः श्रुत्वा धर्मं सुदर्शनोद्याने ।
दत्वा सुताय राज्यं सुमन्दिराचार्यमासाद्य ॥४९॥

ससुतो नृपेण सार्धं नैर्ग्रन्थ्यमुपाददे तदा श्रेष्ठी ।
देवी सश्रेष्ठिसुता सुदर्शनां प्राप्य चाऽऽर्याऽऽसीत् ॥५०॥

---

१. षष्ठग्रैवेयके विशालनाम्नि विमाने । २. मङ्गला इति उत्तरपुराणे ।

एक हजार वर्ष तक तपस्याकर विघ्नकारी कर्मोंको नष्ट किया। जिससे उस तपस्वीको अक्षीण महानस, देवऋद्धि, बीजबुद्धि तथा पदानुसारिणी ये चार लब्धियां प्राप्त हुईं। अब वह गौतम ऋद्धि-सम्पन्न हो गया। गुरुने भी उसे आचार्य पद प्रदान किया और जिनकल्पको ग्रहण कर तथा चार आराधनाओंका आराधन कर सुविशाल नामके विमानमें अहमिन्द्र हुए ॥ ३९–४१ ॥

उन गौतमने भी पचास हजार वर्ष तक उत्तम तप करके उसी अहमिन्द्र विमानमें अहमिन्द्र पद पाया मानो वे अपने गुरुका अनुगमन-सा कर रहे हों। वहाँ छठवें ग्रैवेयक में २८ सागर तक अनुपम अहमिन्द्रके सुखोंको सतत भोगकर वहाँसे च्युत हो गौतमका जीव तुम अन्धकवृष्णि हुए हो और तुम्हारा गुरु मैं भी वहाँसे च्युत हो केवली हुआ हूँ ॥ ४२–४४ ॥

फिर राजाने अपनी दोनों पुत्रियों और पुत्रोंके पूर्वजन्म कहनेके लिए मुनिराजसे निवेदन किया। तब मुनिराजने इस प्रकार कहा—इस भारत क्षेत्रमें मलयदेशके भद्रिलनगरमें मेघरथ नामका राजा था। उसकी रानीका नाम सुभद्रा तथा पुत्रका नाम दृढ़रथ था। वहीं धनदत्त नामका सेठ रहता था उसकी सेठानी का नाम नन्दयशा था। उन दोनोंके सुदर्शना और सुज्येष्ठा नाम की दो पुत्रियाँ थीं तथा धनपाल, जिनपाल, देवपाल, अर्हद्दास, जिनदास, अर्हद्दत्त, जिनदत्त, प्रियमित्र और धर्मरुचि नामके नव पुत्र थे ॥ ४५–४८ ॥

मेघरथ राजाने सुदर्शन उद्यानमें आचार्य सुमन्दिरसे धर्मोपदेश सुनकर अपने पुत्रको राज्य देकर जिनदीक्षा ले ली ॥४९॥ राजाके साथ सेठने भी अपने पुत्रोंके साथ मुनि-दीक्षा ले ली तथा रानी सुभद्रा भी उस सेठकी पुत्रियोंके साथ सुदर्शना आर्यिका के पास आर्यिका हो गई ॥५०॥ भ्रमण करते हुए धनदत्त सेठ,

उपलभ्य च कैवल्यं वाराणस्यां प्रियं गोपण्डवने ।
श्रेष्ठी गुरुश्च राजा विहृत्य धीरास्त्रयोऽप्यन्ते ॥५१॥

आराध्य सप्तपञ्चद्वादशवर्षैः क्रमाद्ययुः सिद्धिम् ।
राजगृहसिद्धशैले नन्दयशाश्चापि धनमित्रम् ॥५२॥

संत्यज्य सुतमुदारं स्वगर्भदोषादनिर्गता पूर्वम् ।
परिबोधिता सुताभ्यां दीक्षित्वाऽऽगत्य राजगृहम् ॥५३॥ युग्मम् ।

स्वसुतान् प्रायोपगतान् सिद्धशिलायामवेक्ष्य वन्दित्वा ।
तन्मातृत्वमवैच्छत् भवान्तरे स्नेहसम्बन्धात् ॥५४॥

तपसातनितात्मतनूंस्तान्सुज्येष्ठा सुदर्शना ज्येष्ठा ।
सोदर्यत्वमवृणुतां तेषामन्यत्र विपुलाक्ष्यौ ॥५५॥

सर्वेऽप्याराध्य पुनर्द्वाविंशत्यर्णवान्तममरसुखम् ।
भुक्त्वाऽच्युताच्च्युतास्ते जाता देवीदुहितृपुत्राः ॥५६॥

ग्रामे पलाशपुरके[1] मृतजननीको द्विजो दमवरस्य ।
क्रममूले प्रव्रजितो जनकान्तत्वं तदा ज्ञात्वा ॥५७॥

वैय्यावृत्त्यतपःस्थो मृत्वा देवोऽभवन्महाशुके ।
षोडशसमुद्रजीवो वसुदेवोऽभूत्ततश्च्युत्वा ॥५८॥

इति केवलिना गदितं श्रुत्वा राज्यं समुद्रविजयाय ।
दत्त्वा प्रव्रज्य तदा वृष्णिर्मोक्षं[2] पुनः प्रापत् ॥५९॥

इत्यरिष्टनेमिस्वामिचरिते पुराणसारसंग्रहे हरिवंशावतारो नाम
प्रथमः सर्गः समाप्तः ।

---

१. 'शालिग्रामे' इति हरिवंशपुराणम् । २. वृष्णि इत्यत्र अन्धकवृष्णिः ।

सुमन्दिर गुरु और राजाको बनारसके गोषण्डवनमें चार आराधनाओंका आराधन करते हुए अभीष्ट केवलज्ञान उत्पन्न हो गया तथा वे तीनों धीर वीर विहार करने लगे। अन्तमें राजगृहनगरके सिद्धपर्वतपरसे क्रमशः सात, पाँच और बारह वर्षके अन्तरालसे मोक्ष प्राप्त किया। इधर सेठकी पत्नी नन्दयशा अपने गर्भके कारण दीक्षा न ले सकी थी। सो उसने अपनी पुत्रियोंके उपदेशसे अपने उदार पुत्र धनमित्रको छोड़कर, दीक्षा ले ली और (भ्रमण करती हुई) राजगृह आई ॥५१-५३॥ वहाँ सिद्ध पर्वतपर प्रायोपगमन संन्यास धारणकर बैठे हुए अपने पुत्रोंकी वन्दना कर उनके स्नेह संबंधसे अगले जन्ममें भी उनकी माता बननेकी इच्छा की। तथा सुदर्शना और सुज्येष्ठा उन दोनों बहिनोंने तपसे कृश शरीर अपने भाइयोंको देखकर अगले भवमें उनकी सहोदरा (बहिनें) होनेका निदान किया ॥५४-५५॥

उन सबने आराधनाओंका आराधन कर देहत्यागकर अच्युत स्वर्गमें २२ सागर तक देवसुलभ सुखका भोग किया और वहाँसे च्युत होकर हे राजन्, वे सब तुम्हारी रानी, दोनों पुत्रियाँ और नव पुत्रोंके रूपमें हुए हैं ॥५६॥ [वसुदेवका पूर्वभव इस प्रकार है] पलाश ग्राममें एक ब्राह्मण [का लड़का] था। उसकी माँ [बचपन में] मर गई थी और बाप भी [गर्भावस्थाकालमें] मर गया था। [अपने शेष बान्धवोंसे तिरस्कृत हो] उसने द्रुमवर मुनिके चरणोंमें दीक्षा ले ली। और वैयावृत तपकर आयु समाप्त होनेपर महाशुक्र स्वर्गमें देव हुआ तथा वहाँ सोलह सागरकी आयु पाई। पीछे च्युत होकर तुम्हारा छोटा पुत्र वसुदेव हुआ है ॥५७-५८॥

इस प्रकार केवली-द्वारा कहे गये उपदेशोंको सुनकर राजा अन्धकवृष्णिने अपने ज्येष्ठ पुत्र समुद्रविजयको राज्य देकर दीक्षा ले ली और तपस्या कर मोक्षपद पाया ॥५९॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रहके अरिष्टनेमिचरितमें हरिवंशोत्पत्ति नामका प्रथम सर्ग समाप्त हुआ।

द्वितीयः सर्गः

राजा समुद्रविजयः शशास वसुधां ततो नृपतिनीत्या ।
शिवदेवीमिष्टतमामिष्टैरनुरञ्जयन्भोगैः ॥१॥

ऐन्द्रीप्रभृतिषु दिक्षु क्रमेण निर्यंस्तदा च वसुदेवः ।
इन्द्रादिवेषधारी विजहार विमोहयँल्ललनाः ॥२॥

राज्ञा बहिःप्रयाणान्निवारितो जनविबोधितेन पुनः ।
षण्मास्यबहिर्गमने वल्ल[1]भनाम्नाऽथ दुष्टूक्तः ॥३॥

मन्त्रव्याजेनास्मात्प्रवास्य वसुधेश्वरात्मजाः बहुशः ।
विद्याधरीश्च वीरो विवहन् विजहार चारुतमाः ॥४॥

लब्ध्वा सुतं बल[2]मतो रोहिण्यां स स्वयंवराप्तायाम् ।
आगत्य शौरिनगरं शस्त्रोपाध्यापनमकार्षीत् ॥५॥

शिष्येण कंसनाम्ना राजगृहं ह्यागतोऽन्यदाऽश्रौषीत् ।
मागधनृपस्य चोर्वीं पुरमध्ये घोषणामेवम् ॥६॥

सिंह[3]पुरे सिंहरथं जीवग्राहं ग्रहीष्यति मनुष्यः ।
यस्तस्मै मत्सुतया सहेष्टं राष्ट्रं प्रदास्य इति ॥७॥

श्रुत्वा तामथ कंसोऽगृहीत्पताकां स्वगुर्वनुज्ञानात् ।
काष्ठमयसिंहयुग्मं वसुदेवविकल्पितं पश्चात् ॥८॥

आरुह्य रथं युद्धे सिंहरथं सिंहशृंखलच्छेदे ।
गुरुणैव कृतैर्विशिखैरुत्पत्य च तं परिबबन्ध ॥९॥

---

१. 'निपुणमति' उत्तरपुराणे; 'कुब्जा' हरिवंशपुराणे । २. बलदेवमित्यर्थः । ३. पौदनपुरम् उत्तरपुराणे ।

द्वितीय सर्ग

महाराज समुद्रविजय अपनी रानी शिवादेवीको नाना प्रकार के वांच्छित भोगोंसे प्रसन्न करते हुए इस पृथ्वीका राजनीतिपूर्वक अच्छी तरह शासन करने लगे ॥ १॥ उनका छोटा भाई वसुदेव नाना प्रकारके इन्द्रादि वेषोंको धारण कर नगरकी स्त्रियोंको मोहित करता हुआ पूर्व आदि सभी दिशाओंमें घूमता-फिरता था। यह बात पुरवासियोंने राजासे कही तो राजाने उन्हें छह महीने तक बाहर घूमनेसे मना कर दिया। एक समय वल्लभ नामके नौकरने यह बात वसुदेवसे व्यंगमें कह दी। तब वसुदेव मन्त्र साधनेके बहानेसे निकल भागे। और इस तरह वह वीर अनेकों राजाओं और विद्याधरोंकी सुन्दर-से-सुन्दर कन्याओंके साथ विवाह करता हुआ खूब भ्रमण करने लगा ॥२-४॥ इसी कालमें स्वयंवर विधिसे उसने रोहिणीसे विवाह किया, तथा उसके साथ सुख भोग उससे बलदेव नाम पुत्र हुआ। इसके बाद वसुदेव शौरीपुरमें आकर शस्त्र विद्या सिखाने लगा ॥ ५ ॥

एक समय वह अपने शिष्य कंसके साथ राजगृहमें आया हुआ था। कि वहाँ उसने नगरके मध्यमें मगधराज (जरासन्ध) की एक बड़ी घोषणा इस प्रकार सुनी कि, जो मनुष्य सिंहपुरमें जाकर सिंहरथको जिन्दा ही पकड़ लेगा उसे मैं अपनी पुत्रीके साथ इच्छित देश दूँगा ॥६-७॥ उस घोषणाको सुनकर अपने गुरुकी आज्ञासे कंसने झंडा पकड़ लिया और वसुदेवके द्वारा (विद्यासे) निर्मित काष्ठके बने सिंहोंके रथ पर चढ़कर युद्ध करने गया। वहाँ उसने अपने गुरुके द्वारा बनाये बाणोंसे सिंहरथके सिंहोंकी साँकलें (जंजीरें) काट दीं और कूदकर उसे पकड़ लिया ॥८-९॥

सिंहमिव सिंहरथिनं पञ्जरपरितोदितं च तमवश्यम् ।
राज्ञे तदोपनिन्ये वसुदेवो देवराजसमः ॥१०॥

तुष्टेन जरासन्धेनोक्तो जीवद्यशां परिणयेति ।
नाहमयं मच्छात्रो गृहीतवांस्तेऽरिमित्यगदीत् ॥११॥

तच्छ्रुत्वा नरपतिना पृष्टः कंसोऽब्रवीत्स्वकां जातिम् ।
कौशाम्ब्यां शीधुकरी माता रञ्जोदरी[1] ममेति ॥१२॥

आकूल्या शीधुकरीतनयो नायं भवेदिति ज्ञात्वा ।
आहूता क्षितिपतये त्वेवं रञ्जोदरी प्रोचे ॥१३॥

यमुनाप्रवाहमध्ये लब्ध्वैनमवर्द्धयम्पुनश्चौर्यात् ।
दृष्ट्वा मया विसृष्टः किलैत्य शस्त्राण्यशिक्षिष्ट ॥१४॥

मातास्य हि मञ्जूषा सा नाममुद्रेति तं स्म दर्शयति ।
ज्ञात्वौग्रसेनिमेनं तेन नृपोऽस्मै ददौ कन्याम् ॥ त्रिकम् ।

अथ पित्रे क्रुद्धोऽगात्सद्योजातं विसृष्टवान्मामिति ।
मथुरां कंसः प्रायात् सुतया कालिन्दसेनायाः ॥१६॥

तत्र गृहीत्वा पितरं नगरद्वारस्य गोपुरे बद्ध्वा ।
गुरुदक्षिणां च गुरवे भगिनीं स्वकां देवकीमदात् ॥१७॥

अतिमुक्तकाऽख्यमुनये भिक्षार्थमुपागताय कंसवधूः ।
कृत्वा नमः कदाचित्समैथु[2]नत्वात्पुरः स्थित्वा ॥१८॥

---

१. 'मण्डोदरी', उत्तरपुराणे; 'रञ्जोदरी' इति हरिवंशे । २. नर्मभावेन इति हरिवंशे; हासात् इति उत्तरपुराणे ।

तब इन्द्रके समान, वसुदेव उस सिंहके समान सिंहरथको पिंजरमें बाँधकर और असहाय बनाकर (मगध) राजाके पास ले आया ॥ १० ॥

इस पर प्रसन्न होकर जरासन्धने उसे अपनी पुत्री जीवद्यशा से विवाह करनेको कहा। तब वसुदेवने कहा कि तुम्हारे शत्रुको मैंने नहीं पकड़ा, मेरे इस शिष्यने पकड़ा है।। ११ ।। यह सुन कर राजाने कंससे उसकी जाति पूछी तो कंसने कहा कि—कौशाम्बीमें शराब बनानेवाली मेरी माता रञ्जोदरी रहती है ॥ १२ ॥ जरासन्धने उसकी आकृतिसे यह जान कि यह शराब बनानेवाली का पुत्र नहीं हो सकता है इसलिए उसने रञ्जोदरीको बुलाया। रञ्जोदरीने आकर राजासे कहा कि—मैंने यमुनाके प्रवाहमें बहते हुए इसे पाया था और गुप्त रूपसे इसका लालन-पालन किया है। पीछे इससे रुष्ट हो मैंने इसे निकाल दिया। यह भी वहाँसे चलकर शस्त्र-विद्या सीखने लगा। इसलिए (मैं इसकी माता नहीं हूँ) यह पेटारी इसकी मां है। फिर उसने उस पेटीमें लगी नामकी मुहरको राजाके लिए दिखाया। राजाने इससे उसे उग्रसेनका पुत्र जानकर अपनी कन्या दे दी ॥१३–१५॥

कंस यह मालूम कर कि मुझे उत्पन्न होते ही छोड़ा गया है, अपने पिता उग्रसेन पर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और कलिन्दसेनाकी पुत्री जीवद्यशाके साथ मथुरा गया ॥ १६ ॥ वह पिताको पकड़कर नगर-द्वारके फाटक पर क़ैद कर दिया तथा अपने गुरुको गुरुदक्षिणा स्वरूप अपनी (चचेरी) बहिन देवकी विवाह दी ।। १७ ॥

एक समय मथुरामें भिक्षाके लिए अतिमुक्तक नामके एक मुनि आये। उन्हें नमस्कारकर कंसकी रानीने काम-भावसे आगे खड़े होकर यह कहा कि देखो यह तुम्हारी बहिन देवकीका 'आनन्द-

२

आनन्दवस्त्रमेतद्देवक्यास्तव स्वसुर्निरीक्षस्व ।
इति सप्रहासमस्मै वस्त्रं परिदर्शयामास ॥१९॥

तद् दृष्ट्वा तव भर्त्तुः पितुश्च हन्ताऽचिरेण देवक्याः ।
गर्भप्रभवो भवितेत्युक्त्वा निरगान्मुनिः क्रोधात् ॥२०॥

कंसोऽपि तां प्रवृत्तिं श्रुत्वोपायं विचिन्त्य वसुदेवम् ।
प्रणिपत्य वरं वव्रे स्वकवेश्मनि देवकीप्रसवम् ॥२१॥

दत्वा वरञ्च तस्मै स्वयं च वार्तां विबुध्य विश्रुतमनाः ।
गत्वा मुनिमप्राक्षीत्प्रणम्य सहकारवनसंस्थम् ॥२२॥

भगवन्निह कंसोऽयं किं कृत्वा जातवान् स्वपितृशत्रुः ।
अतिमुक्तकमुनिरगदीदतिपृष्टः कंसपूर्वभवम् ॥२३॥ युग्मम् ।

गङ्गा[1]नन्दावत्योः संगमतीरे पुरा महानद्योः ।
अभवज्जटालकौशिकवने[2] वशिष्ठो मुनिश्रेष्ठः ॥२४॥

पञ्चाऽग्नितपसि सर्पीं वीक्ष्य सदारुं मृतामनलमध्ये ।
निर्विण्य वीरभद्रस्यान्तेवासी बभूव यतिः ॥२५॥

उत्पर्वते पुनः स्थितमातापनप्रकम्पेनाकृष्टाः ।
वनदेवतास्तमूचुः किं करवामेति सप्तैत्य ॥२६॥

विससर्ज तास्तदानीं किं मे निष्किञ्चनस्य कृत्यमिति ।
पुनरन्यदोग्रसेनस्तमभ्ययाचिष्ट आतिथ्यम् ॥२७॥

नगरेऽपि तस्य भिक्षां न्यषेधयत्स्वयमपि प्रविष्टाय ।
वृताऽग्निहस्तिहेतोर्भिक्षां दातुं विसस्मार ॥२८॥

---

१. यमुना इति हरिवंशपुराणे; गंगागन्धावती इति उत्तरपुराणे ।
२. मथुरायां इति हरिवंशपुराणे ।

वस्त्र' है। इस प्रकार मजाकमें उसने मुनिराजको वस्त्र दिखलाया ॥१८-१९॥ यह देख मुनिने कहा कि उसी देवकीके गर्भसे उत्पन्न बालक शीघ्र ही तुम्हारे पति और पिताका मारने वाला होगा। यह कहकर वे मुनि क्रुद्ध हो वहाँसे चले गये ॥ २० ॥ यह बात कंसने सुनी और उपाय सोच वसुदेवसे प्रणामकर यह वर माँगने लगा कि देवकीकी सन्तान मेरे ही घर हो। उदारचित्त उस वसुदेवने भी वर दे दिया पर पीछे सब वार्ता ज्ञात होने पर वह आम्रवनमें बैठे हुए अतिमुक्तक मुनिके समीप गया और उन्हें प्रणाम कर पूछने लगा कि—हे भगवन्! यह कंस किस कारणसे अपने पिताके शत्रु रूपमें उत्पन्न हुआ है। तब अतिमुक्तक मुनिने विशेष आग्रह पर कंसके पूर्वभव इस प्रकार कहे ॥ २१-२३ ॥

पूर्वकालमें गंगा और नन्दावती इन दो महानदियोंके संगमपर जटाल कौशिक वनमें वशिष्ठ नामका एक बड़ा तपस्वी रहता था। उसने पञ्चाग्नि तप करते समय अग्निमें लड़कीके साथ जलते हुए एक मरी सर्पिणीको देखा। इससे उस तपस्वीको वैराग्य हो गया और वीरभद्र मुनिराजका शिष्य हो गया ॥ २४-२५ ॥ एक समय पर्वतके ऊपर आतापन योग धारण कर वे मुनिराज खड़े थे कि उनके तप बलसे कम्पित हो सात वनदेवता वहाँ आये और मुनिराजसे बोले कि कहिये क्या करें? उस समय मुनिने उन्हें यह कहकर लौटा दिया कि मुझ परिग्रहहीनको भला कौन-सा काम है। किसी समय राजा उग्रसेनने उन मुनिराजको अपना अतिथि बनाना चाहा इसलिए उसने नगरमें प्रविष्ट उन मुनिके लिए 'दूसरे भिक्षा न देवें' इस बात की घोषणा करा दी। पर वह राजा, (तीनों बार ही) कभी दूतके कारण, कभी अग्निके कारण, कभी हाथीके उपद्रवके कारण मुनिराजको दीक्षा देना भूल गया ॥ २६-२८ ॥

दृष्ट्वा तमृषिमवोचत्त्रैमासिकपारणास्वलब्धान्नम् ।
कश्चिन्नागरपुरुषो नगरद्वारे स्थितं श्रान्तम् ॥२९॥

कष्टं खलु पापिष्ठो नरपतिः स्म च स्वयं न ददातीति ।
दातॄनपि वारितवान् तच्छ्रुत्वा प्रकुपितेन तेन ॥३०॥

आध्याता वनदेवाः प्रागेतनाः परभवे भवत्कार्यम् ।
कुर्यामेत्युपजग्मुर्मुनिश्च मृत्वा हि सनिदानः ॥३१॥ त्रिकम् ।

पद्मावत्या गर्भे पपात देव्याश्च दौहृदमदासीत् ।
राजोदरबलिमांसं भक्षयितुं च गर्भदोषेण ॥३२॥

तनयं दौहृदसिद्धौ सचिवोपायात्प्रसूतं कंसमयीम् ।
मंजूषामावास्य च देवी विससर्ज यमुनायाम् ॥३३॥

कौशाम्ब्यां पुनरेनं व्यवीवृधच्छीधुकारिणी लब्ध्वा ।
कंस इति नाम कृत्वा ततोऽयमनया पुनस्त्यक्तः ॥३४॥

आगम्य शौरिनगरं त्वत्तः शस्त्रेषु च प्रवीणोऽभूत् ।
जितवांश्च सिंहरथिनं साधो भवतः प्रसादेन ॥३५॥

लब्ध्वा मागधतनयामिह पश्चादुग्रसेनमागत्य ।
पूर्वभववैरहेतोः पितरमयं बद्धवान् पापः ॥३६॥

इत्युक्ते वसुदेवो दीप्तावधिलोचनं पुनरपृच्छत् ।
किं कृत्वा पूर्वभवे भविता हन्ताऽस्य मत्पुत्रः ॥३७॥

इति पृष्टो मुनिरगदीद्देवक्याः सप्तमः स्वकमहिम्ना ।
भोक्ष्यत्यवनिमशेषां सूनुः कंसाद्यरीन् हत्वा ॥३८॥

इस प्रकार त्रैमासिक पारणाओंमें अन्न न पाकर वे मुनिराज थककर नगरके द्वारपर बैठे थे कि उन्हें देखकर एक नागरिकने कहा—बड़े दुखकी बात है कि यह पापी राजा न तो स्वयं भिक्षा देता है न दूसरे दाताओंको देने देता है। यह सुनकर मुनि क्रुद्ध हो गये और उन पूर्व वन-देवताओंको बुलाया और उनसे कहा कि अगले जन्ममें आप लोगोंका कर्म है। देवताओंने भी कहा कि हम लोग आपका काम करेंगे। यह कह वे सब लौट गये। मुनि भी निदान सहित मरा तथा उग्रसेनकी रानी पद्मावतीके गर्भमें आया और रानीको एक दोहला पैदा किया। गर्भ दोषके कारण रानीको राजाके पेटकी त्रिवलियोंका मांस खानेकी इच्छा हुई। तब मंत्रियोंने किसी उपायसे रानीका दोहला पूर्ण किया। इधर रानीने पुत्र उत्पन्न होते ही काँसोकी पेटीमें रखकर यमुना नदीमें बहा दिया ॥२९–३३॥ तब कोशाम्बीमें किसी मदिरा बनाने वालीने इसे उठाकर पाला-पोसा तथा इसका नाम कंस रखा। फिर उसने इसे निकाल दिया। कंस भी शौरीनगरमें आकर तुमसे शस्त्र विद्या सीखकर प्रवीण हो गया। और हे वसुदेव ! तुम्हारी कृपासे उसने सिंहरथको जीत लिया ॥ ३४–३५ ॥ तथा जरासन्धकी पुत्रीके साथ विवाह कर अपने पूर्वभवके वैरके कारण ही उस दुष्टने मथुरामें आकर अपने पिता उग्रसेनको क़ैद किया है ॥ ३६ ॥

ऐसा कहनेपर उन अवधिज्ञानी मुनिराजसे वसुदेवने फिर पूछा कि भगवन् ! पूर्वभवोंमें ऐसा क्या कारण हुआ कि मेरा पुत्र कंसको मारनेवाला होगा ? यह पूछने पर मुनिने कहा कि देवकीका सातवाँ पुत्र अपनी महिमासे कंस आदि शत्रुओंको मारकर सम्पूर्ण पृथ्वीका भोग करेगा। दूसरे भी जो छह पुत्र हैं, सब चरम देहधारी हैं, उन्हें किसी प्रकारकी विपत्ति नहीं होगी।

इतरेऽपि चरमदेहा न विपत्तेषां त्वमपि मा शोचीः ।
शृणु जन्मान्यपि तेषां महात्मनामित्यथाऽचख्यौ ॥३९॥

इह शूरसेनदेशे मथुरायां शूरसेनभोग्यायाम् ।
भानुर्बभूव भूमौ भानुसमो विश्रुतः श्रेष्ठी ॥४०॥

द्वादशकोटिस्वामी भार्या तस्याऽभवद्यमुनदत्ता ।
सप्ताङ्गजा बभूवुस्तस्याः सम्पन्नसर्वगुणाः ॥४१॥

नाम्ना सुभानुराद्यो भानुयशाश्चापि भानुषेणश्च ।
शूरश्च शूरदेवो दत्तः सेनश्च शूरादिः ॥४२॥

इभ्योऽन्यदा दिदीक्षे श्रुत्वाऽभयनन्दिनः परमधर्मम् ।
जिनदत्तायाः पार्श्वे प्राव्राजीच्छ्रेष्ठिनी चापि ॥४३॥

वेश्यासुराप्रसङ्गाद्द्यूतेन च पितृधनं निधनमाप्ताः ।
स्तेयाऽर्थमिभ्यतनया गताः कनिष्ठं महाकाले ॥४४॥

प्राविक्षन्नुज्जयिनीं कुलसन्ततिकारणं परित्यज्य ।
तत्र तु कमलाह्वायाः कान्तो वृषभध्वजो राजा ॥४५॥ युग्मम् ।

तस्य च दृढप्र[1]हारी वप्रश्रीवल्लभो भटश्रेष्ठः ।
स किल कदाचिन्मंगीं नगरेभ्यस्य विमलचन्द्रस्य ॥४६॥

विमलायाश्च दुहितरं तद्दर्शनजातकामदाहस्य ।
तनयस्य वज्र[2]मुष्टेः क्षितिपतिना ग्राहयामास ॥४७॥ युग्मम् ।

तस्मिन्वसन्तमासे प्रमदवनं राजरञ्जनाय गते ।
माताऽस्य कामिनीं तां घटयोजितसर्पसन्दष्टाम् ॥४८॥

भृत्यैः प्रेतावासेऽजीहरदस्याः प्रियोऽपि विनिर्वृत्य ।
श्रुत्वा प्रयाणमेनां विचेतुमविशन्महाकालम् ॥४९॥

---

१. 'दृढमुष्टि' हरिवंशपुराणे । २. चतुर्थ्यर्थे षष्ठी ।

तुम भी सोच न करो, उन महात्माओंके पूर्वजन्मोंको सुनो, इतना कहकर मुनिराज इस प्रकार कहने लगे ॥ ३७–३९ ॥

इसी शूरसेन देशमें शूरसेन राजासे भोग्य इसी मथुरा नगरीमें पृथ्वीमें सूर्यके समान प्रतापी भानु नामका एक विख्यात सेठ था। वह १२ करोड़ धनका स्वामी था। उसकी पत्नी यमुनादत्ता थी। उससे सर्वगुणसम्पन्न सात पुत्र हुए। उसके नाम क्रमसे सुभानु, भानुयश, भानुषेण, शूर, सूरदेव, सूरदत्त और शूरसेन थे ॥ ४०–४२ ॥ एक समय उस सेठने अभयनन्दि मुनिसे धर्मोपदेश सुन दीक्षा ले ली तथा सेठानीने भी जिनदत्ता आर्यिकाके समीप आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये ॥ ४३ ॥ सेठके वे पुत्र अपने पिताके धनको वेश्या, शराब, जुआ आदिमें नष्टकर निर्धन हो गये, तथा चोरी करनेके लिए उज्जयिनी नगरमें घुसे। वहाँ कुल-परम्परा चलानेके लिए, महाकालके मन्दिरमें अपने छोटे भाईको वे लोग छोड़ गये थे। उस नगरीमें राजा वृषमध्वज तथा रानी कमला राज्य करते थे। उनके दृढ़प्रहारी नामका एक अच्छा पहलवान था जिसके वप्रश्री नामकी पत्नी थी। उनके वज्रमुष्टि नामका पुत्र था। वह नगरसेठ विमलचन्द्र और सेठानी विमला की पुत्री मंगीको देखते ही कामज्वरसे पीड़ित हो गया। तब पहलवानने राजासे कहकर उन दोनोंका विवाह करवा दिया ॥ ४४–४७ ॥

एक समय वसन्तके महीनेमें वज्रमुष्टि, राजाके साथ क्रीड़ा करने प्रमदवन गया था। उसकी माताने उसको पत्नीको (द्वेष बुद्धिसे घटमेंसे माला लानेके बहानेसे) घटमें रखे हुए सर्पसे डँसवा लिया तथा नौकरोंके द्वारा उसे श्मशान भिजवा दिया। जब उसका पति वज्रमुष्टि लौटकर आया तो अपनी पत्नीको

तत्र वरधर्मसाधुं दृष्ट्वा नत्वाऽब्रवीदयमदृष्टाम् ।
कमलसहस्रेण त्वां समर्चयिष्ये यदि लभेयेति ॥५०॥

लब्ध्वा च मानिनीं तां मुनिमाहात्म्यान्निरस्तविषदोषाम् ।
अत्राऽस्वेति सुतुष्टः सुदर्शनाख्यं सरं प्रायात् ॥५१॥

दृष्ट्वाऽथ शूरसेनस्तस्येदृक्षं प्रियां प्रति स्नेहम् ।
तस्या मनो विविदिषुः स्वरूपमस्यै स्म दर्शयति ॥५२॥

तां च विपन्नबुद्धिं स्वपतिमथाऽगत्य पूजयन्तमृषिम् ।
खड्गं प्रहर्त्तुमुद्यतामरौत्सीच्छूरसेनश्च ॥५३॥

प्रणिपत्य साधुमसकौ ययौ सभार्यस्तदैत्य चौरास्ते ।
चौर्येण लब्धमर्थं समभागं सर्वशः कृत्वा ॥५४॥

आसीनमूचुरेनं गृहाण भागं तवेति सर्वेऽपि ।
नेयेष शूरसेनो निश्चक्रमिषुर्जगादेत्थम् ॥५५॥

दाराऽर्थमेव पुरुषाः प्रयतन्ते दारुणेषु कार्येषु ।
दाराश्च वज्रमुष्टिप्रियासमाः सर्व एवेति ॥५६॥

तद्वृत्तान्तं श्रुत्वा सर्वे निर्विण्णमानसास्तस्मिन् ।
वरधर्मपादमूले प्रव्रज्यामाददुर्धीराः ॥५७॥ त्रिकम् ।

ज्येष्ठः स्वकवनिताभ्यः प्रदातुमर्थं प्रयातवान् मथुराम् ।
सर्वा अपि निष्क्रान्ताः स्वभर्तृदीक्षाश्रवादेवम् ॥५८॥

प्रेतावासमें ले गया सुन, उसको ढूँढ़ता हुआ महाकालके मन्दिर में आया ॥४८-४९॥ वहाँ उसने वरधर्म नामके मुनिको देख उन्हें नमस्कार किया और उनसे प्रार्थना की कि हे मुनिराज! यदि इसका (पत्नीका) सर्प-दंश हट जाय तो मैं आपकी हजार कमलोंसे पूजा करूँगा। तब मुनिके माहात्म्यसे उस स्त्रीका विष हट गया। वह (वज्रमुष्टि) अपनी पत्नीको पा अति सन्तुष्ट हुआ और उसे 'यहीं ठहरो' कहकर कमल लेनेके लिए सुदर्शन सरोवर गया ॥५०-५१॥

वहाँ बैठे हुए शूरसेनने उसका अपनी प्रियाके प्रति इतना अनुराग देख, उस स्त्री मंगीके मनकी परीक्षा करनेके लिए अपना रूप दिखाया। तब वह स्त्री भी उसपर आसक्त हो गई और अपने पतिसे छुटकारा पानेके लिए मुनिकी पूजा करते हुए अपने पतिको तलवार मारनेके लिए उद्यत हुई पर उस मतिहीन स्त्रीको शूरसेनने रोक लिया ॥५२-५३॥ वह वज्रमुष्टि भी मुनिकी वन्दना कर अपनी पत्नीके साथ चला गया। उसी समय वे सब चोर वहाँ आये और चोरीसे प्राप्त धनको सबके लिए बराबर हिस्सेमें बाँट अपने उस बैठे हुए छोटे भाईसे बोले कि तू भी यह अपना हिस्सा ग्रहण करो, पर उसने संसारसे विरक्त हो दीक्षा लेनेकी इच्छासे उस हिस्सेको लेना अस्वीकार कर दिया तथा इस प्रकार बोला कि भाइयो, स्त्रीके निमित्तसे ही पुरुष भयंकर कार्यों में प्रवृत्त होता है; और ये सब स्त्रियाँ वज्रमुष्टिकी स्त्रीके समान ही तो हैं ॥५४-५६॥

यह वृत्तान्त सुनकर सब विरक्त हो गये और वरधर्म मुनिके चरणोंमें उन धीरवीरोंने दीक्षा ले ली। केवल बड़ा भाई ही, पत्नियोंको धन देनेके लिए मथुरा गया पर उन सबने भी अपने पतियोंको दीक्षित हुआ सुनकर दीक्षा ले ली। उस बड़े भाई

दीक्षित्वा गणपतिना सार्द्धं सभ्रातृकः परिविहृत्य ।
आयासीदुज्जयिनीं तमपृच्छद्वज्रमुष्टिरिति ॥५९॥

सर्वेऽपि चारुरूपा नवयौवनदीप्ततेजसो यूयम् ।
यत्प्राव्राजिष्ट चेह तद्वैराग्यकारणं किन्नु ॥६०॥ त्रिकम् ।

तेनोक्तमात्मचरितं श्रुत्वा निर्वेदकारणं तेषाम् ।
निश्चक्राम स्वयमपि दौष्ठ्यं स्त्रीणां परिविनिन्दन् ॥६१॥

मंगी च तादृगार्याजिनदत्ताग्रे तु सर्वमथ पृष्ट्वा ।
श्रुत्वाऽऽत्मकारणत्वं निर्विद्यैषा प्रवव्राज ॥६२॥

कृत्वा तपांसि घोराण्यासन् सर्वेऽपि सम्यगाराध्य ।
त्रायस्त्रिंशत्काऽऽख्याः सौधर्मे द्व्यर्णवायुष्काः[1] ॥ ६३ ॥

अवतीर्य पूर्वभागे धातकीखण्डस्य भारते तस्मात् ।
नित्यालोके नगरे रजतगिरिदक्षिणश्रेण्याम् ॥ ६४ ॥

चित्रांगदः सुतोऽभून्मनोहरीचित्रचूलयोर्ज्येष्ठः ।
इतरे द्वन्द्वाः क्रमशोऽभवन् सुता भानुकीर्त्याद्याः ॥ ६५ ॥

गरुडध्वजवाहनकौ मणिहिमचूलौ च गगनानन्दचरौ ।
अनतिवररूपसत्त्वा विद्यावरपारगाश्चैते ॥ ६६ ॥

तत्रैव मेघपुर्यां सर्वश्रीवल्लभो नृपः श्रीमान् ।
नाम्ना धनञ्जयोऽभूद् दुहिता ख्याताऽस्य तु धनश्रीः ॥ ६७ ॥

स कदाचिदङ्गजायाः कः स्याद् भर्त्तेति मन्त्रिणोऽप्राक्षीत् ।
मन्त्री स्म वदत्येकः सागरनामेत्थमवनीशम् ॥ ६८ ॥

कन्याप्रदानमेतद्द्वयमेव विलोकते नरपलोकः ।
कन्याशुभानुबन्धि कार्यं वा दातुरासन्नम् ॥ ६९ ॥

---

१. चार्णवायुष्का इति हरिवंशे; उत्तरपुराणे तु द्व्यर्णवायुष्काः ।

सुभानुने भी दीक्षा ले ली और गणपतिके साथ अपने भाइयों सहित विहार करते हुए वह उज्जयिनी नगरी आया। वहाँ वज्र-मुष्टिने उससे पूछा कि आप सब लोग तो सुन्दर रूपवाले, नव जवान, तेजस्वी हैं। आप लोगोंके वैराग्यका क्या कारण है जो सबने यह दीक्षा ले ली है। तब उसने आत्मचरित सुनाया। वज्रमुष्टिने अपने ही चरित्रको उन सबके वैराग्यका कारण जान, स्त्रियोंके खोटे स्वभावकी निन्दा करता हुआ स्वयं भी दीक्षित हो गया। मंगीने भी वैसे ही जिनदत्ता आर्यिकासे सब वृत्तान्त पूछकर और अपने ही चरित्रको वैराग्यका कारण जान विरक्त होकर दीक्षा ले ली ।।५७-६२।। उन सब भाइयोंने घोर तपस्या की और आराधनाओं-का अच्छी तरह आराधनकर सौधर्म स्वर्गमें त्रायस्त्रिंशत् जातिके देव हुए जिनकी वहाँ दो सागरकी आयु थी ।।६३।। फिर वे सब वहाँसे अवतरित हुए। और धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व भागमें भारतवर्षके विजयार्धपर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें नित्यालोक नगरके राजा चित्रचूल और रानी मनोहरीसे वह बड़े भाई सुभानुका जीव तो चित्रांगद नामका पुत्र हुआ तथा भानुकीर्ति आदि दूसरे भाई जुड़वाके रूपमें हुए उनका नाम गरुडध्वज, गरुडवाहन, मणि-चूल, हिमचूल, गगनचर और आनन्दचर था। वे सब अतिरूप-वान् बलवान् एवं विद्यापारगामी थे ।।६४-६६।।

वहीं मेघपुरी नामकी नगरीमें धनञ्जय नामका राजा था। उसके सर्वश्री नामकी रानी तथा धनश्री नामकी पुत्री थी। किसी समय उसने मन्त्रियोंसे पूछा कि पुत्रीका पति किसे बनाना चाहिये। तब सागर नामके एक मन्त्रीने राजासे कहा कि हे राजन्! यह राजसमाज कन्याप्रदानमें दो ही हेतु देखता है एक तो यह कि यह कार्य कन्याके लिए शुभानुबन्धी हो तथा दाताका निकटवर्ती हो। दूसरा यह कि पुत्रीके सुखकी परवाह न कर

अनपेक्ष्य सुतासौख्यं स्वकार्यहेतोः प्रदीयते बलिने ।
परिचिन्त्य सौविहित्यं कन्यायास्त्वन्यदा राजन् ॥ ७० ॥

कार्यान्तराहितधियो न वयमिदानीमतोऽत्र दैवयुतम् ।
परिमृग्य ददामोऽस्मै सुसागरः प्राह तच्छ्रुत्वा ॥ ७१ ॥

नृप सुप्रतिष्ठनगरे रतिदेवीप्रियतमोऽस्ति हरिषेणः ।
हरिवाहनोऽस्य पुत्रः सर्वश्रीभ्रातृजो योग्यः ॥ ७२ ॥ पञ्चकम् ।

ऊचेऽथ कार्यसिद्धिः सकलनरेन्द्रस्य पतिरयोध्यायाम् ।
प्रीतिङ्करीप्रियतमो रथाङ्गभृत्पुष्पदन्ताख्यः ॥ ७३ ॥

तस्याङ्गजः सुदत्तः सौभाग्येनाङ्गजः शरीरधरः ।
सर्वेषां प्रभविष्णू राजन्यानां स खलु बहुमान्यः ॥७४॥ युग्मम् ।

ईहानन्दो मन्त्री जगाद सञ्चिन्त्य तद्वचः श्रुत्वा ।
सर्वैरविरुद्धत्वात्स्वयंवरं वरमहं मन्ये ॥ ७५ ॥

प्रतिपद्य तस्य वाक्यं स्वयंवरायाजुहाव सर्वनृपान् ।
आगत्य सुदत्ताद्याः क्लृप्तासनमञ्चकेष्वासुः ॥ ७६ ॥

अवगाह्य राजवृन्दं कन्या हरिवाहनं तदा वव्रे ।
अतिगम्य सर्वनृपतीन् सुबुद्धिना दर्श्यमानांस्तान् ॥ ७७ ॥

प्रक्षुभिताः क्षितिपालाः स्वविवाहार्थं दुरात्मनाऽऽहूताः ।
वयमिति तदेतरेतरमघ्नन्कन्या मम ममेति ॥ ७८ ॥

ईक्षित्वा क्षत्रवधं विनिन्द्य विषयांश्च चित्रचूलसुताः ।
प्राव्राजिषुस्तदानीं भूतानन्दाऽर्हतः पार्श्वे ॥ ७९ ॥

केवल अपने स्वार्थके लिए बलवान राजाको कन्या दी जाती है। इस समय हमें ऐसा कोई विशेष काम भी नहीं है इसलिए कन्याके कल्याणकी सोचकर किसी समय किसी भाग्यशालीको खोजकर ही हम उसे कन्या प्रदान करेंगे। सागर मंत्रीकी यह बात सुनकर सुसागर नामका मंत्री बोला कि हे राजन्! सुप्रतिष्ठ नगरमें राजा हरिषेण और रानी रतिदेवी रहते हैं। उनके हरिवाहन नामका पुत्र है वह रानी सर्वश्रीका भ्रातृज है और इसके योग्य है ॥६७–७२॥ तब कार्य-सिद्धि नामक मंत्रीने कहा कि अयोध्यामें पुष्पदन्त नामका चक्रवर्ती रहता है। उसकी प्रीतिङ्करी नामकी प्रिय रानी है। सौभाग्यसे उनके, मूर्तिमान् कामदेवके समान, सुदत्त नामका पुत्र है। वह सभी राजाओंमें प्रभावशाली एवं बहुमान्य है ॥७३–७४॥ तब उसकी बात सुनकर और खूब विचारकर ईहानन्द नामक मंत्रीने कहा कि मैं तो स्वयंवरको ही ठीक समझता हूँ इसमें किसीका विरोध नहीं है ॥७५॥

तब राजाने उसकी बातको मानकर स्वयंवरके लिए सभी राजाओंको बुलाया। सुदत्त आदि राजा लोग आकर सजे हुए आसनोंपर बैठे ॥७६॥ तब उस समय कन्याने सुबुद्धि मंत्रीके द्वारा बतलाये गये सभी राजाओंको जान तथा उन सबको पार कर हरिवाहन राजकुमारको वरण कर लिया ॥७७॥ यह देख वे सब राजकुमार अत्यन्त क्षुब्ध हो गये और कहने लगे कि इस दुष्टने अपने विवाहकी शोभाके लिए ही हम लोगोंको बुलाया था और "यह कन्या मेरी है, मेरी है" कहते हुए आपसमें लड़ने लगे ॥७८॥

इस प्रकार क्षत्रियोंका वध देखकर इन्द्रियोंके विषयोंकी निन्दा करते हुए चित्रचूल विद्याधरके सभी पुत्र भूतानन्द तीर्थंकरके पास प्रव्रजित हो गये। तथा सातों ही भाई आराधनाओंका

सामानिका बभूवुः सप्ताऽप्याराध्य साधु माहेन्द्रे ।
सप्ताब्ध्युपमायुष्कास्ततोऽवतीर्णाः पुनरिहैवम् ॥ ८० ॥

ज्येष्ठो हास्तिननगरे शंखाऽख्यः श्वेतवाहनेभ्यस्य ।
अजनिष्ट बन्धुमत्यामितरेऽपि च गङ्गदेवस्य ॥ ८१ ॥

तन्नगरेशस्यासन्नन्दयशोदानन्दनाः सुता द्वन्द्वाः ।
गङ्गश्च गङ्गदत्तस्तथाऽपरो गङ्गरक्षितकः ॥ ८२ ॥

नन्दश्च सुनन्दोऽपि च सुनन्दिषेणश्च मातृपितृदयिताः ।
अन्योऽन्यस्पर्धिगुणाः सुन्दररूपाश्च सर्वेऽपि ॥८३॥ चतुष्कम् ।

सप्तमपुत्रमहासीद् देव्यमुना द्वेष्याहं क्षितीशेन ।
तमवृधत् गृहीत्वा धात्री नाम्ना च रेवतिका ॥ ८४ ॥

शङ्खोऽन्यदा गतस्तं करे गृहीत्वा मनोहरोद्याने ।
भुञ्जानान् राजन्यान्विलोक्य वाक्यं जगादैवम् ॥ ८५ ॥

निर्नामिको निषण्णैः सोदर्यसमाजभोजने यदिह ।
नाहूयते भवद्भिः किमयन्न भवेद् भवद्भ्राता ॥ ८६ ॥ युग्मम् ।

तद्वचनादाहूतः सह तैर्भोक्तुं प्रयत्नवानसकौ ।
सह नृपतिनैत्य देवी पादेनैवं तदाजघ्ने ॥ ८७ ॥

कष्टं खलु मद्धेतोः दुखं यत्प्राप्तवान् वतायमिति ।
तमुपादाय प्रययौ शङ्खस्तैरन्वितः सर्वैः ॥ ८८ ॥

तत्र द्रुमषेणर्षिं प्रवन्द्य पप्रच्छ पूर्वजन्मानि ।
निर्नामकस्य मुनिरप्यवधिज्ञान्येवमाचष्टे ॥ ८९ ॥

सौराष्ट्रकगिरिनगरे चित्ररथः कनकमालिनीकान्तः ।
मांसप्रियो नृपोऽभूत्तस्य च सूदो दशग्रामेट् ॥ ९० ॥

सम्यक् आराधनकर माहेन्द्र स्वर्गमें सामानिक देव हुए जहाँ उनकी सात सागरकी आयु थी। वहाँसे अवतरित हो ज्येष्ठ भाई तो भारतवर्षके हस्तिनापुरमें श्वेतवाहन सेठ और बन्धुमती सेठानीसे शंख नामका पुत्र हुआ और शेष छह भाई उसी नगरके राजा गंगदेव और रानी नन्दयशोदाको प्रसन्न करनेवाले जुड़वे पुत्र हुए। उनका नाम क्रमसे गंग, गंगदत्त, गंगरक्षित, नन्द, सुनन्द और नन्दिषेण था। वे सब माता-पिताको प्यारे सुन्दर रूपवाले तथा गुणोंमें एक दूसरेसे बढ़े-चढ़े थे ।।७९-८३।। सातवें पुत्रकी रानीने पैदा होते ही इस विचारसे छोड़ दिया कि इसके गर्भमें आते ही राजा मेरे प्रति द्वेषभाव रखने लगा था। तब उसे रेवती नामकी धायने लेकर पाला-पोसा ।।८४।।

एक समय शंख (सेठका पुत्र) उस त्यक्त बालकका हाथ पकड़ मनोहर उद्यानमें ले गया और वहाँ भोजन करते हुए राजकुमारोंको देखकर इस प्रकार बोला कि भाइयोंके सामूहिक भोजनमें बैठे हुए आप लोग इस निर्नामकको क्यों नहीं बुलाते हो, क्या यह आप सबका भाई नहीं है ।।८५-८६।। उसके ऐसे वचनोंसे उन लोगोंने उसे बुला लिया और वह भी उनके साथ भोजन करने लगा। उस समय राजाके साथ रानीने वहाँ आकर उस निर्नामकको लात मारी ।।८७।। तब शंखके मनमें यह हुआ कि बड़े खेदकी बात है जो कि इसने मेरे कारण दुख पाया और उसे लेकर उन सब भाइयोंके साथ वहाँसे चला गया। वहाँ द्रुमषेण मुनिकी वन्दना कर उनसे निर्नामकके पूर्व भवोंको पूछा तब उन अवधिज्ञानी मुनिने भी इस प्रकार बतलाया ।।८८-८९।।

सौराष्ट्र देशके गिरिनगरका राजा चित्ररथ और उसकी रानी कनकमालिनी थी। वह राजा मांसका बड़ा प्रेमी था अमृतरसायन नामका उसका रसोइया दश गाँवका स्वामी था।

अमृतरसायनसंज्ञो नृपे कदाचित्सुधर्ममुनिपार्श्वे ।
मांसोत्पत्तिं श्रुत्वा राज्ये संस्थाप्य मेघरथम् ॥ ९१ ॥

निष्क्रान्ते त्रिशतैः सह हृतवृत्तिः नवनृपेण चुक्रोध ।
पिकग्रामकशेषं तु जैनीभूतेन ह्यनयोऽऽसौ ॥ ९२ ॥

नाग्राहयिष्यदेनं श्रावकतां क्षपणको यदि च नायम् ।
वृत्तिमलोप्स्यद्राजा ममेति तस्मै कदाचिददात् ॥ ९३ ॥

कटुकालाबुमिश्रं कदन्नममुना स ऊर्जयन्तगिरौ ।
मृत्वाऽपराजितेऽभूद् देवो द्वात्रिंशदब्ध्यायुः ॥ ९४ ॥ पञ्चकम् ।

सूदोऽपि पापदोषाद्दुर्गन्धां बालुकाप्रभां गत्वा ।
त्रिसमुद्रसमं कालं दुःखान्यघसन्नरकमित्वा ॥ ९५ ॥

भ्रान्त्वा संसारवने पापोपशमात्पुनर्मलयराष्ट्रे ।
ग्रामे च पलासाख्ये कुटुम्बिनो यक्षदत्तस्य ॥ ९६ ॥

अजनिष्ट यक्षिलायां यक्षावरजः स यक्षिलो नाम्ना ।
शकटेन यन्[१] कदाचिद् भ्रात्रा विनिवार्यमाणोऽपि ॥ ९७ ॥

उपरिष्टादन्धाहेरवाहयच्छकटमेष निष्करुणः ।
सोऽपि परिरुग्णभोगो मृत्वा वै सतीव्रदुःखेन ॥ ९८ ॥

श्वेताम्बिकानगर्यां वासवनाम्नो वसुन्धरागर्भे ।
दुहिताऽसीन्नन्दयशा देवी चाकामनिर्जरया ॥ ९९ ॥

सोऽयं यक्षिलकोऽभून्निर्नामा कटुकतुम्बिकादानात् ।
मात्राऽपि च विद्वेष्यो निष्कारुण्याच्च पूर्वभवे ॥ १०० ॥

तच्छ्रुत्वा द्विशतैः सह राजासौ देवनन्दमभिषिच्य ।
सश्रेष्ठिशङ्खतनयो निरक्रमीज्जातनिर्वेदः ॥ १०१ ॥

---

१. यन् = गच्छन्नित्यर्थः ।

एक समय सुधर्म मुनिसे मांसकी उत्पत्ति सुनकर वह राजा विरक्त हो गया और अपने पुत्र मेघरथको राज्य देकर तीन सौ राजाओंके साथ दीक्षित हो गया। तब नवीन राजाने जो कि जैनी हो गया था उस दुष्ट रसोइयेकी आजीविका छीन ली और केवल पिकग्राम उसके पास रहने दिया। तब वह रसोइया बहुत क्रुद्ध हुआ (और विचारने लगा कि) 'यदि इस मुनिने राजाको श्रावकके व्रत न दिये होते तो यह मेरी आजीविकाको कभी न छीनता' ॥९०-९३॥ ऐसा सोच उसने एक समय उन मुनिराजको कड़वी लौकीके साथ कदन्न खिला दिया। इससे गिरनार पर्वतपर मरकर वे मुनिराज अपराजित अहमिन्द्र विमानमें ३२ सागरकी आयुवाले देव हुए ॥९४॥

वह रसोइया भी पापके कारण भयंकर वालुकाप्रभा नामके नरकमें जाकर तीन सागर तक दुख भोगता रहा। फिर नरकसे निकलकर संसाररूपी वनमें घूमता फिरा। तथा पापोंके उपशम होनेसे वह मलय देशके पलास नामक गाँव में, यक्षदत्त गृहस्थकी पत्नी यक्षिलासे, यक्षका छोटा भाई, यक्षिल नामका पुत्र हुआ। एक समय वह गाड़ीसे घूम रहा था। अपने भाईके द्वारा मना करनेपर भी उसने निर्दयता-पूर्वक अंधसर्पके ऊपरसे गाड़ी चला दी जिससे उसका शरीर कुचल गया और वह बड़े तीव्र दुःखसे मरकर अकामनिर्जराके कारण श्वेताम्बिका नगरीमें वासवराजा और वसुन्धरा रानीसे नन्दयशा नामकी पुत्री हुआ। वह यक्षिल भी कड़वी लौकी खिलानेके कारण यह निर्नामक हुआ है और पूर्वजन्मकी निर्दयताके कारण हो इसकी मां इससे द्वेष करती है ॥९५-१००॥

यह सुन वह राजा विरक्त हो गया और अपने पुत्र देवनन्द को राज्य दे, दो सौ राजाओंके साथ तथा सेठके पुत्र शंखके

देवी च सधात्रीका बन्धुमती सुव्रतार्यिकापार्श्वे ।
प्राव्राजिष्टां नितरां तदेवं निर्वेदमासाद्य ॥ १०२ ॥
निर्नामिको निदानं मृगराड्विक्रीडितं तपः कुर्वन् ।
अकरोन्मनुष्यभवे भूयासं लोककान्त[१] इति ॥ १०३ ॥
जन्मान्तरेऽपि तनया भूयासुरिमे देव्यवृणोत् धात्री ।
वर्धयिष्यन्त एते भवान्तरे च निदानमकरोत् ॥ १०४ ॥
इति तपसित्वा[२] भूवंस्ते षोडशसागरायुषो देवाः ।
कल्पे च महाशुक्रेऽवतीर्थं तस्मादसौ शङ्खः ॥ १०५ ॥
राजा हिरण्यनाभी रिष्ट[३]पुरे समभवत् सुभद्रायाः ।
तद्दुहितरि रोहिण्यां त्वत्पुत्रोऽभूद् बली पद्मः ॥ १०६ ॥
जाता दशार्णनगरे धन्याऽमरसेनयोस्तु नन्दयशाः ।
इह देवकी तवेष्टा दुहिता खलु मृत्तिका[४]वत्याम् ॥१०७॥
मलयेषु भद्रिलपुरे प्रिया सुदृष्टेरिहाऽभवद्धात्री ।
श्रेष्ठिन्यलका नाम्ना दिवोऽवतीर्णा महाशुक्रात् ॥ १०८ ॥
ये गङ्गदेवतनया गङ्गाद्याः षडपि देवकीगर्भे ।
उत्पत्स्यन्ते नृपते द्वन्द्वा भूत्वा क्रमेणैवम् ॥ १०९ ॥
शक्राज्ञया सुतास्ते प्रसूतमात्रास्तु भद्रिलपुराय ।
हरिणैगमेशि[५]नाम्ना हरिष्यन्ते चाधिदेवेन॥ ११० ॥
तत्र च धात्रीचर्या वर्धिष्यन्ते शुभेन सर्वेऽपि ।
नृपदेवदत्तपालावनीकदत्तश्च तत्पालः ॥१११॥
शत्रुघ्नो जितशत्रुश्चैते ते हरिकुलध्वजस्येशः ।
प्रव्रज्य जिनस्यान्ते संगस्यन्ते शिवसुखेन ॥११२॥
अवतीर्य नाकलोकान्निर्नामासौ तपःफलोत्कर्षात् ।
उत्पत्स्यते प्रियायां भविताऽत्रैकोऽप्यमित्रीयः ॥११३॥

---

१. जनकान्तिके इति हरिवंशपुराणे । २. तपश्चरित्वा इत्यर्थः । ३.अरिष्टपुरे । ४.मृगावती, उत्तरपुराणे । ५.'नैगमार्षं' इति उत्तरपुराणे ।

साथ दीक्षित हो गया। उसी तरह रानीने भी धाय और बन्धु-मती सेठानीके साथ विरक्त होकर सुव्रता आर्यिकाके पास दीक्षा ले ली ॥१०१-१०२॥ निर्नामकने भी सिंहनिष्क्रीडित तप करके यह निदान किया कि मैं फिरसे मनुष्य भव धारण कर लोगोंका राजा बनूं ॥१०३॥ रानीने भी निदान किया कि जन्मान्तर में ये सब मेरे पुत्र हों तथा धात्रीने भी चाहा कि दूसरे जन्ममें मैं इनको पालने वाली बनूँ। इस प्रकार तपस्या कर वे सब महा-शुक्र नामके स्वर्गमें सोलह सागर आयु वाले देव हुए। फिर वहाँ से अवतरित हो शंखका जीव रिष्टपुरके राजा हिरण्यनाभि और रानी सुभद्राकी पुत्री रोहिणीसे तुम्हारा पुत्र बलदेव हुआ है। नन्दयशाका जीव मृत्तिकावती देशमें दशार्ण नगरके राजा अमर-सेन (देवसेन) और रानी धन्यासे देवकी नामकी तुम्हारी प्रियतमाके रूपमें हुआ है। तथा धात्रीका जीव भी, महाशुक्र स्वर्गसे अवतीर्ण हो मलय देशके भद्रिलपुर नगरमें सेठ सुदृष्टिकी प्रिय सेठानी 'अलका'के रूपमें हुआ है ॥१०४-१०८॥ और गंगदेवके जो गंग आदि छह पुत्र थे वे सभी हे वसुदेव ! क्रमसे तुम्हारे जुड़वे पुत्र होंगे। उन्हें जन्मते ही इन्द्रकी आज्ञासे हरि-णैगमेशी नामका देवता भद्रिलनगर ले जायगा ॥१०९-११०॥ वह धात्रीका जीव (अलका सेठानी) इन सबका अच्छी तरह पालन-पोषण करेगा। इनके नाम क्रमश: नृपदत्त, देवपाल, अनीकदत्त, अनीकपाल, शत्रुघ्न और जितशत्रु होंगे। ऐश्वर्यशाली ये सब हरिवंशको उन्नत बनावेंगे ! और जिनेन्द्र भगवान्‌के पास दीक्षा लेकर मोक्ष सुख प्राप्त करेंगे ॥१११-११२॥ निर्नामकका जीव भी स्वर्गसे अवतरित हो अपने उच्च तपके बलसे तुम्हारी प्रिय रानी देवकीसे अकेले ही उत्पन्न होगा। और वह शत्रुपर चढ़ाई करेगा ॥११३॥

इत्थं यतिनाऽऽख्यातं निशम्य पुनरानकः प्रवन्द्येशम् ।
पप्रच्छ मुदितचेताः स्ववंशभाविनं जिनेन्द्रमिति ॥११४॥

हरिवंशवर्द्धनोऽर्हन् कथं भवेत् किं प्रकृत्य पूर्वभवे ।
इति चोदितो बभाषे भगवज्जन्मानि मुनिरित्थम् ॥११५॥

जम्बूद्वीपसुपद्मासीतोदाऽपाच्य[1]सिंहपुरनृपतेः ।
अर्हद्दासस्यासीज्जाया त्वेका च जिनदत्ता ॥११६॥

तस्यामजनि च स्वप्नान् वीक्ष्य विवस्वद्धरीन्द्रकरिलक्ष्मीः ।
अपराजित इति तनयो जिनपूजासादितोत्पादः ॥११७॥

अन्येद्युः परमर्हितं मनोहरोद्यानसन्निषण्णमसौ ।
राजा जिनमभिनन्तुं ययौ विमलवाहनं ससुतः ॥११८॥

तत्पार्श्वेऽसौ नृपतिः प्राव्राजीत् पञ्चराजशतसहितः ।
सम्यक्त्वराज्यलाभौ लब्ध्वाऽप्यपराजितो रेमे ॥११९॥

श्रुत्वा निर्वृतिगमनं जिनपित्रोर्गन्धमादनाद्रौ सः ।
अकरोदष्टमभक्तां दत्तां धनदेन च जिनार्चाम् ॥१२०॥

चैत्ये सिंहनिविष्टेऽतिष्ठिपज्जातु मिथोऽत्र देवीभ्यः ।
प्रीतिमतीप्रभृतिभ्यः पर्वणि धर्मं ब्रुवन्नास्ते ॥१२१॥

तत्समये द्वौ तस्मिन्नवतेरतुश्चारणौ सतौ नत्वा ।
उपविश्याऽऽख्यद् दृष्टौ क्व नु भगवन्तौ मयेति नृपः ॥१२२॥

आमित्येकोऽभ्यददात्पुष्करपश्चार्द्धमन्दराऽपरतः ।
विजयार्द्धोदक्श्रेण्यां सूर्याभो नामतो नगरम् ॥१२३॥

---

१. उदक् इति उत्तरपुराणे ।

इस प्रकार मुनिराजसे यह सब सुन वसुदेव प्रसन्न हुआ और उन्हें फिरसे नमस्कार कर अपने वंशमें होनेवाले तीर्थंकरके विषयमें इस प्रकार पूछने लगा ॥११४॥ कि हरिवंशको गौरव देनेवाले वे अर्हन्त पूर्व भवोंमें किस प्रकार क्या पुण्य कर्म कर उत्पन्न हो रहे हैं। तब मुनिराज वसुदेवके आग्रहसे भगवान् नेमिनाथके पूर्वभवोंको इस प्रकार कहने लगे ॥११५॥

इसी जम्बूद्वीपमें सीतोदा नदीके पश्चिम तटपर सुपद्मा देशके सिंहपुर नगरमें राजा अर्हद्दास तथा रानी जिनदत्ता रहते थे। उनके जिन-पूजाके माहात्म्यसे, रानीको सूर्य, सिंह, हाथी और लक्ष्मीको स्वप्नमें देखनेके बाद अपराजित नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ११६-११७॥ एक दिन वह राजा मनोहर नामके बगीचेमें बैठे हुए, परमहितकारी विमलवाहन तीर्थंकरकी वन्दना करने अपने पुत्रके साथ गया। और धर्मोपदेश सुनकर उनके समीप पाँच सौ राजाओंके साथ दीक्षित हो गया। अपराजित भी जिन भगवान्से सम्यक्त्व और (पितासे) राज्य प्राप्त कर सुखपूर्वक रहने लगा ॥११८-११९॥

फिर गन्धमादन पर्वतपर तीर्थंकर व अपने पिताका निर्वाण-गमन सुन (वहाँ गया) और वहाँ आठ दिनका उपवास किया तथा कुबेरके द्वारा प्रस्तुत जिन-पूजा भी की ॥१२०॥ किसी समय वहाँ वह राजा पर्वके दिनमें अपनी प्रीतिमती आदि रानियों-के साथ सिंहनिविष्ट नामके चैत्यालयमें बैठकर धर्मचर्चा कर रहा था कि उसी समय दो चारण मुनि वहाँ आकाशसे उतरे। तब राजा उन दोनोंको नमस्कार कर उनके पास बैठ कर कहने लगा कि आप दोनोंको मैंने कहीं देखा है ॥१२१-१२२॥ तब उनमेंसे एकने कहा 'हाँ' और बताने लगे कि पुष्करार्ध द्वीपके पश्चिम मन्दराचलके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें जो विजयार्ध पर्वत है उसको

राजाऽस्मिन् सूर्याभो यथार्थनामाऽस्य धारिणी देवी।
तत्पुत्राश्चिन्तागतिमनोगती च चपलगतिरिति ॥१२४॥

तत्राऽरिन्द[1]मनगरे राज्ञाजितसेनजानिनाऽऽहूताः।
स्वसुतास्वयंवरार्थं मन्त्रभृतोऽरिञ्जयाख्येन ॥१२५॥

कन्याऽसौ प्रीतिमती गतियुद्धप्रसाधिनी किलात्मगुरोः।
पतितोत्थिता चरणयोः संसाराऽसारतां बुद्ध्वा ॥१२६॥

प्रोवाच दिदीक्षिषया ननु वरम्मह्यं देहीति राज्ञा।
तस्या ज्ञात्वाऽऽकूतं प्रोचे वृणीष्व तपसोऽन्यदिति ॥१२७॥

शारीरावनिकायां च शश्वद्रुधिरं निपद्य निपिबन्त्या।
विसृजे यदि निर्यातुं न रौद्रगृहतन्त्रराक्षस्याः ॥१२८॥

तस्मा अहं प्रदेया गतियुद्धपराजिताऽस्मि येनेति।
अस्तु तथेति नृपोऽसौ तत्खचरान् बोधयामास ॥१२९॥चतुष्कम्।

तच्छ्रुत्वा महतीयं विद्या त्विति खेचराः खलु विषेदुः।
विद्यावेगविदग्धाः प्रोत्तस्थुर्धारिणीतनयाः ॥१३०॥

अथ तेभ्यः पूर्वतरं मेरुं पर्याप्य सा जिनप्रतिमाः।
आपूज्य विजितखचरा निवृत्तिपार्श्वे प्रवव्राज ॥१३१॥

भग्नाः स्त्रिया वयमिति प्राव्राजिषुरन्तरात्मनिर्विण्णाः।
दमवरमुनेस्त्रयस्ते सूर्याभसुतास्तपः कृत्वा ॥१३२॥

माहेन्द्रकल्पमीयुः सप्तोदधिसंयुताऽयुषस्तत्र।
सामानिकत्वमाप्त्वा च्युत्वाऽस्मान्मध्यमावरजौ ॥१३३॥

---

१. अरिञ्जय इति हरिवंशपुराणे।

उत्तर श्रेणीमें एक सूर्याभनगर है। वहाँ यथार्थनामवाला सूर्याभ राजा तथा रानी धारिणी रहते थे। उनके चिन्तागति, मनोगति और चपलगति नामके तीन पुत्र थे ॥१२३-१२४॥

उस पर्वतपर अरिन्दम नगरमें अरिञ्जय नामके राजा और अ जतसेना उसकी रानी थी। राजाने अपनी पुत्रीके स्वयंवरके विषयमें विचार करनेके लिए मन्त्रियोंको बुलाया। पर वह प्रीतिमती नामकी कन्या गतियुद्ध विद्यामें निपुण थी। उसने संसारकी असारताको जानकर, दीक्षाकी भावनासे अपने पिताके चरणोंमें गिरकर कहा कि मुझे एक वरदान दीजिए। तब उसके अभिप्रायको जानकर राजाने कहा कि तपस्याकी बात छोड़कर तुम कोई दूसरा वर माँगो। तब उस कन्याने कहा कि यदि आप इस भयानक गृहावस्थारूपी राक्षसी, जो कि शरीररूपी भूमिमें बैठकर निरन्तर खून पी रही है, से दूर होनेके लिए छुटकारा नहीं देते तो मुझे उस ही व्यक्तिको विवाहें जो मुझे गतियुद्धमें हरा दे। राजाने उसे 'तथास्तु' कह इस बातकी सूचना विद्याधरोंके पास भेजी ॥१२५-१२९॥

यह सुनकर तथा इस विद्याको महान् जानकर सभी विद्याधर दुखी हुए पर रानी धारिणीके पुत्र चिन्तागति आदि अपने विद्याबलके घमण्डसे वहाँ आये ॥१३०॥ तदनन्तर उस गतियुद्धमें उस कन्याने उन लोगोंसे पहले ही मेरुकी प्रदक्षिणा कर तथा जिनप्रतिमाओंकी पूजाकर उन विद्याधरोंको जीत लिया और निवृत्ति नामकी आर्यिकाके समीप दीक्षा ले ली ॥१३१॥ वे विद्याधर भी यह मान कि 'हम लोग स्त्रीसे पराजित हो गये हैं, भीतर ही भीतर ग्लानि अनुभव करने लगे। तथा सूर्याभ राजाके उन तीनों पुत्रोंने दमवर मुनिके समीप दीक्षा ले ली और तपस्या कर माहेन्द्र स्वर्गमें सात सागरकी आयु वाले सामानिक देव हुए। वहाँ से च्युत होकर

जातौ पूर्वविदेहे ह्यु दक्खचराद्रेः पुष्कलावत्याम् ।
इह गगनवल्लभपुरे गगनेन्दोर्गगनसुन्दर्याम् ॥१३४॥

नाम्नाऽमितगत्याख्योऽमिततेजाश्चेति पुण्डरीकिण्याम् ।
प्रव्रजितौ संश्रुत्य स्वयम्प्रभादर्हतो धर्मम् ॥१३५॥

तावावामिह राजन् महेन्द्रकल्पच्युतं तु नौ ज्येष्ठम् ।
त्वामायातौ प्रष्टुं पृष्ट्वा नो जन्म सर्वज्ञात् ॥१३६॥ पञ्चकम् ।

भवितासि भरतवर्षे हरिवंशाकाशचारुशशलक्ष्मा ।
त्वमरिष्टनेमि-अर्हन् पञ्चमके जन्मनि किलाऽत्र ॥१३७॥

मासावशेषमायुस्तवाऽत्मपथ्यं चरेति सन्दिश्य ।
आपृच्छ्य च राजानं चेलतुरस्मादृषी सहसा ॥१३८॥

चारणवचनं श्रुत्वा मुदितो नृपतिश्चिरं समादध्यौ ।
आगमिष्यतां यदि मे मृतं वृथा च स्यादायुरिति ॥१३९॥

अल्पीयान् खलु कालस्तपसे नास्तीति जिनमहमकार्षीत् ।
अर्हन् महिमाधीना जगति च सत्सम्पदः सर्वाः ॥१४०॥

अष्टाहमहसमाप्तौ राज्ये प्रीतिङ्करं प्रतिष्ठाप्य ।
स प्राणानत्याक्षीद्विधिवत्प्रायोपगमनेन ॥१४१॥

अनुपरमचारुसौख्यां द्वाविंशतिसागरोपमाऽयुष्काम् ।
पुनरच्युतेन्द्रलक्ष्मीमलभत् भूयस्ततश्च्युत्वा ॥१४२॥

इह कुरुषु भरतवास्ये राजानौ गजपुरे महात्मानौ ।
श्रीचन्द्रश्रीमत्यौ सुतस्तयोः सुप्रतिष्ठोऽभूत् ॥१४३॥

अभिषिच्य ततस्तनयं श्रीचन्द्रोऽसौ सुमन्दिरसकाशे ।
प्रव्रज्य पतितकर्मा निर्वाणमगाज्जगत्पूज्यम् ॥१४४॥

मझला और छोटा भाई, पूर्व विदेहके पुष्कलावती देशमें विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीके गगनवल्लभपुरमें राजा गगनेन्दु और रानी गगनसुन्दरीसे अमितगति और अमिततेज नामके पुत्र हुए। फिर पुण्डरीकिणी नगरीमें स्वयंप्रभ भगवान्से धर्मोपदेश सुन मुनि हो गये ॥१३२-१३५॥ हे राजन्, महेन्द्रकल्पसे अवतरित होकर वे दोनों हम ही हुए हैं और सर्वज्ञसे अपने जन्मकी बात जानकर अपने ज्येष्ठ भाई तुम्हें देखने यहाँ आये हैं ॥१३६॥ तुम अबसे पाँचवें जन्ममें इसी भारतवर्षमें हरिवंश रूपी आकाशमें मनोहर चन्द्रमाकी भाँति भगवान अरिष्टनेमि होओगे ॥१३७॥ तुम्हारी आयु केवल एक माह शेष रह गई है इसलिए आत्मकल्याण करो। इस प्रकार राजाको उपदेश दे तथा विदा ले वे दोनों मुनि वहाँसे तुरन्त चले गये ॥१३८॥

चारण ऋषिके वचनोंको सुन राजा बहुत प्रसन्न हुआ और बहुत समय तक विचार कर कि 'यदि मेरा मरण हो गया तो मेरी थोड़ी आयु व्यर्थ जायगी और मेरे पास भी अब तपस्या करनेको बहुत थोड़ा समय है' और यह सोचकर कि 'संसारमें सभी अच्छी विभूतियाँ जिनभगवान्की पूजासे ही मिल सकती हैं'- वह जिन-पूजामें रत हो गया। तत्पश्चात् अष्टाह्निका पूजा समाप्त होने पर उसने अपने पुत्र प्रीतिङ्करको राज्य देकर तथा विधिपूर्वक समाधिमरणसे प्राणोंको छोड़ा ॥१३९-१४१॥ और सतत मनोहर सुखसे पूर्ण अच्युत स्वर्गकी विभूतिको बाईस सागर तक भोग कर वहाँसे फिर च्युत हुआ ॥१४२॥ तथा इसी भारतवर्षमें कुरुदेशके हस्तिनापुर नगरमें राजा श्रीचन्द्र और रानी श्रीमतीसे सुप्रतिष्ठ नामका पुत्र हुआ ॥१४३॥

राजा श्रीचन्द्रने अपने पुत्रका राज्याभिषेक कर सुमन्दिर तीर्थंकरके पास दीक्षा ले ली और कर्मोंको नष्ट कर जगत्पूज्य

समवाप सुप्रतिष्ठः प्रदाय दानं यशोधराय पुनः ।
मासोपवासतपसे वसुधाराद्यां च सुरपूजाम् ॥१४५॥

हर्म्येऽन्यदा रजन्यां कार्त्तिक्यां संस्थितः प्रियाभिरमा ।
वीक्ष्य सुनन्दाद्याभिर्निर्विविदे पतनमुल्कायाः ॥१४६॥

प्रातः सुदृष्टनाम्ने राज्यमदीक्षिष्ट सूनवे दत्त्वा ।
पितृगुरुमुपेत्य धीमान् मत्वा श्रियमुल्कया तुल्याम् ॥१४७॥

एकादशाङ्गमखिलं सुशीघ्रमध्यैत प्रश्रुतं श्रीमान् ।
तेपे तपांसि चोग्रं मृगराड्विक्रीडितादीनि ॥१४८॥

सम्भावितैरजस्रं षोडशभिः कारणैस्त्रिजगदीड्यः ।
तीर्थंकरनाम पुण्यं चिकाय चेतोऽङ्गवाक्छुद्धः ॥१४९॥

प्रत्याख्याय च भक्तं मासिकमाराध्य सम्यगुत्संदे ।
स्वर्लोकमौलिकल्पे विमानमुख्ये जयन्ताख्ये ॥१५०॥

द्वाविंशदर्णवोपमनिरन्तराऽत्यन्तरम्यसौख्यायुः ।
सम्भाव्य तत्र भगवानहमिन्द्रत्वं चिरमरंस्त ॥१५१॥

अवरुह्य पुनस्तस्माद् भगवान् भविता समुद्रविजयस्य ।
शिवदेवीप्रियसूनुस्त्रिदशेन्द्रसमर्च्य सच्चरणः ॥१५२॥

एवं निशम्य सूक्तं वन्दित्वा यतिमुपेत्य सिद्धान्तम् ।
आख्याय तत्प्रियायै समरंस्त तयाऽऽनक[1]दुन्दुभिः ॥१५३॥

इत्यरिष्टनेमिनाथचरिते पुराणसंग्रहे भगवद्भवाभिधानो नाम
द्वितीयः सर्गः समाप्तः ॥

---

१. वसुदेवः ।

निर्वाण पद प्राप्त किया ॥१४४॥ इधर राजा सुप्रतिष्ठने एक माहका उपवास किये हुए यशोधर मुनिराजको आहार दान दिया जिससे उसके घर देवोंने धनवृष्टि आदि पंचाश्चर्य किये ॥१४५॥ एक समय कार्तिककी रात्रिमें वह अपनी सुनन्दा आदि रानियोंके साथ महलके ऊपर बैठा था कि उसे उल्कापात देख विराग हो गया। तथा वह बुद्धिमान् समस्त विभूतिको उल्काके समान क्षणभंगुर जान प्रातःकाल अपने पुत्र सुदृष्टको राज्य देकर अपने पिताके गुरु सुमन्दर जिनके पास दीक्षा ले ली ॥१४६–१४७॥ तथा उसने शीघ्र ही समस्त ग्यारह अंग वाले श्रुत (शास्त्र) का अध्ययन कर लिया और सिंहनिष्क्रीडित नामका उच्च तप करने लगा। तीनों लोकोंसे पूजित हो उसने भावनाओंका निरन्तर अभ्यास किया और मन वचन कायसे शुद्ध हो तीर्थंकर नामकी पुण्य प्रकृतिका बंध किया ॥१४८–१४९॥ उन भगवान्ने एक माहमें लेने वाले भोजनको भी छोड़ आराधनोंका अच्छी तरह आराधन किया और स्वर्ग लोकके मुकुटके समान तथा विमानोंमें मुख्य जयन्त विमानमें जन्म लिया तथा वहाँ ३२ सागर तक सतत अत्यन्त रमणीय सुख और आयुको पाकर अहमिन्द्र पदका चिरकाल तक भोग किया ॥१५०–१५१॥

तदनन्तर स्वर्गसे अवतरित हो वे भगवान् राजा समुद्रविजय और रानी शिव देवीके प्रिय पुत्र हो देवेन्द्रोंसे पूजा प्राप्त करेंगे। इस प्रकार वसुदेव उन सब वृत्तान्तोंको तथा तत्त्वोपदेशको सुन मुनिराजको नमस्कार कर अपने महल लौट गया और अपनी प्रिया देवकीको सब सुना कर उसके साथ आनन्दसे रहने लगा ॥१५२–१५३॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रहके अरिष्टनेमिचरितमें भगवान्के भवोंको कथन करनेवाला द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ।

तृतीयः सर्गः

अथ देवकीप्रसूतौ व्यसून्यपत्यानि देवसंक्रमणात् ।
समताडयच्छिलायां विलोक्य कंसः सशङ्कोऽपि ॥ १ ॥

उदपादि ततो विष्णुर्द्वादश्यां सप्तमासिके गर्भे ।
भाद्रपदशुक्लपक्षे श्रवणोर्धसमागते शशिनि ॥ २ ॥

सप्ताहमहावर्षे प्रवर्त्तमाने प्रसूतमात्रममुम् ।
पित्रा विधृतातपत्रं वसनेनादाय निशि सीरी ॥ ३ ॥

कंसभयान्निर्गच्छन्नगरद्वारे पयःकणापातात् ।
हरये च तदा क्षुतवति जीवारिनिषूदन चिरन्त्वम् ॥ ४ ॥

श्रुत्वोग्रसेनदत्तामाशिषमनुषच्चकार संस्थं[१] च ।
कस्मैचिन्मा स्म गदीः मोक्ता भवतोऽयमिति तेन ॥ ५ ॥

पुरतः प्रास्थितवृषभो ज्वलद्विषाणः प्रदीपयन्मार्गम् ।
यमुनाऽभवत्प्रपूर्णाच्छिन्नस्रोता हरेः पुण्यात् ॥ ६ ।

सन्दाय नन्दगोप्यै वृन्दावनमेत्य गोव्रजं सीरी ।
तस्याश्चानीय सुतां देवक्यै तामुभौ ददतुः ॥ ७ ॥

कंसः सुताप्रसूतिं निवेदितो नासिकां तुतोदास्याः ।
भर्त्ता वास्याः स्यान्मे भयावहश्चेति सञ्चिन्त्य ॥ ८ ॥

---

१. प्रतिज्ञां कारितवान् ।

तृतीय सर्ग

तदनन्तर देवकीके प्रसव होनेपर देवता परिवर्तन कर निर्जीव पुत्रोंको वहाँ रख देता था पर मनमें भयभीत कंस उन (मरे हुओं) को जानकर शिलापर पटक देता था। इस तरह (छह पुत्रोंके बाद) सातवें महीनेमें ही भाद्रपद शुक्ला द्वादशीको, जब कि श्रवण नक्षत्रमें चन्द्रमा था तब, कृष्णने जन्म लिया।।१–२।। उस समय सात दिन तक लगातार महावर्षा होनेपर भी तुरन्त पैदा हुए उस बालकको कंसके भयसे बलराम रात्रिमें ही कपड़ेमें ढँक कर ले चले और वसुदेवने छाता लगा लिया। वे लोग ज्योंही नगरके दरवाजेसे निकल रहे थे, त्यों ही बालककी नाकमें पानीकी बूँदें गिरनेसे छींक आ गई इसपर कृष्णके लिए उग्रसेनने (जो कि दरवाजेपर बन्दी था) आशीर्वाद दिया कि हे शत्रुविनाशक, तुम चिरंजीव होओ। यह सुनकर बलरामने उग्रसेनसे प्रतिज्ञा करायी कि आप यह बात किसीसे न कहें क्योंकि वह बालक आपको भी छुड़ाने वाला होगा।।३–५।।

उनके आगे आगे कृष्णके पुण्य प्रतापसे मार्गको प्रकाशित करता हुआ एक बैल जा रहा था जिसके कि सींग ही प्रज्वलित हो रहे थे। तथा बड़े प्रवाहसे युक्त यमुना नदी भी थोड़े प्रवाह वाली हो गई।।६।। गोकुल वृन्दावनमें जाकर बलरामने नन्दगोपकी पत्नीको वह बालक दे दिया और उसकी कन्या लाकर देवकीके लिए दे दी।।७।। फिर कंसको कन्या उत्पन्न होनेकी सूचना दी गई तो उसने यह सोचा कि शायद इसका पति ही मेरा शत्रु हो, और उसकी नाक चिपटी कर दी।।८।।

निमित्तविदा कदाचित् द्यु क्तोऽरिस्तवैधते नृप क्वापि ।
अष्टमभक्तमकार्षीत्तपो हि शत्रुप्रहाणिकरम् ॥९॥

एतेन तदोपगताः समन्ववशाद्देवताश्च पूर्वभवाः ।
क्षपयत मंक्षु मदीयं द्विषमिति जग्मुस्तथेत्येताः ॥१०॥

भूत्वा महाशकुन्तः कृष्णमपस्कत्तुं मुद्यताऽत्रैका ।
तेनास्फारिततुण्डा नर्दन्त्यन्तर्दधे सद्यः ॥११॥

अपरां पुनर्पिशाचीं विषस्तनीमागतां प्रपाययितुम् ।
निजघान च शिशुरेनां स्तनचूचुकमादशन्नेव ॥१२॥

शकटीभूय पतन्तीमपरां पादेन सोऽभिनद्विभयः ।
समपातयच्च वृक्षौ उदूखलोन्नद्धचरणेन ॥१३॥

दर्पोद्विघूर्णयन्तं घोषमशेषं गवां पतिमरिष्टम् ।
व्यावर्त्य विभीः कण्ठं व्यपोथयद्बाहुयन्त्रेण ॥१४॥

वित्रस्तहंसमृगं पतत्तटीप्रस्तरं प्रचलवृक्षम् ।
उत्साहिताय दोर्भ्यां गोवर्धनपर्वतं दध्रे ॥१५॥

एवं कृतानि हरिणा श्रुत्वा कर्माण्यमानुषाणि बलात् ।
तुष्ट्या दिदृक्षमाणा सूनुं सीरायुधेन सह ॥१६॥

उपवासव्यपदेशात्कदाचिदागत्य देवकी घोषम् ।
पयसास्नाप्यत हलिना हरिदर्शनसंस्रुतस्तनी ॥१७॥ युग्मम् ।

किसी समय एक निमित्तज्ञानीने कंससे कहा कि हे राजन् ! तुम्हारा शत्रु कहीं वृद्धिंगत हो रहा है। तब कंसने यह सोच कि तप ही शत्रुका नाश करने वाला है, इसलिए आठ दिनका उपवास किया। इससे पूर्व जन्मके सब देवता उसके पास आ गये। कंसने उन्हें आदेश दिया कि आप लोग मेरे शत्रु को शीघ्र नष्ट कीजिए। तब वे लोग 'अच्छा' कहकर चले गये ॥९-१०॥

उनमेंसे एक देवी बड़े पक्षीका रूप धारणकर कृष्णको चोंच मारने आई तो कृष्णने उसकी चोंचपर ऐसी चोट पहुँचाई कि वह चिल्लाती हुई वहाँसे शीघ्र ही लुप्त हो गई। दूसरी देवी पिशाचीका रूप धारण कर विषैले स्तन पिलाने आयी तब उस बालकने स्तनोंके चूचुकोंको काटकर उसे मार डाला। तीसरी देवी गाड़ीका रूप धारण कर कृष्णके ऊपर गिरना ही चाहती थी कि उस निर्भीक कृष्णने उसे लात मारकर नष्ट कर दिया। चौथी और पाँचवीं देवी दो वृक्षका रूप धारण कर कृष्णको डराने आईं पर ऊखलसे बँधे पैरोंसे कृष्णने उन्हें मार गिराया। एक देवी साँडका रूप धारण कर मदमत्त हो घूमती हुई सारे गोमण्डलमें उपद्रव मचा रही था। तो निर्भीक कृष्णने अपने हाथोंसे उसके गलेको फाड़कर मार डाला। एक समय (भयंकर जलवृष्टिके कारण) सारे पशु-पक्षी भयभीत थे, पर्वतके किनारेके पत्थर गिर रहे थे तथा वृक्ष उखड़े जा रहे थे तो कृष्णने गोमण्डलकी रक्षाके लिए अपने हाथोंसे गोवर्धन पर्वत उठा लिया ॥११-१५॥

इस प्रकार बलसे किये गये कृष्णके इन अलौकिक कार्योंको सुनकर देवकी बहुत प्रसन्न हुई और कृष्णको देखनेकी इच्छासे, उपवासके बहाने बलरामके साथ गोकुलमें आई तो कृष्णको देखते ही उसके स्तनोंसे दूध गिरने लगा। इस प्रकार मानो उसने कृष्णको नहला ही दिया ॥१६-१७॥

मथुराधिपोऽपि गोष्ठं मार्गयितुं शत्रुमन्यदा प्रययौ ।
प्रागेव तदोपायास्ततो मात्राऽन्यतस्तस्मात् ॥१८॥

अटवीमध्ये प्रवसन् राक्षसीमतिविवृद्धविकृततनुम् ।
उदितोऽट्टहासरौद्रां शरैरहंस्ताटकीं[1] नाम्ना ॥१९॥

ग्रामे शाल्मलिखण्डे सुदुर्भरन्यासमण्डपस्तम्भान् ।
तद्दर्शनान्निवृत्ते निवृत्तपरशङ्कया मात्रा ॥२०॥

प्रतिवृत्य पुनः कंसोऽप्यघोषयद्घोषणां स्वपुर्येव ।
नैमित्तसमादेशाद्विमार्गयिषया सपत्नस्य ॥२१॥

शङ्खेन पूरयति खं यः शरासनं जितञ्जयं दिव्यम् ।
आरुह्य सिंहवाहां[2] शय्यामिष्टस्य लब्धेति ॥२२॥ युग्मम् ।

तद्वार्त्तासंश्रवणाद्बहुषु च निस्तेजितेषु तत्रैव ।
कंसश्यालोऽप्यायाद् भानुः कृष्णं वने लब्धा ॥२३॥

प्रोत्साह्य सहानैषीन्मथुरामथ सज्जितां महाशय्याम् ।
इन्द्रस्थाने दृष्ट्वा पृष्ट्वा कंसारिरारुक्षत् ॥२४॥ युग्मम् ।

आरोपितज्यमकरोत्कार्मुकमापूरयत्स शङ्खं च ।
सङ्कर्षणोऽप्युपायादुपेत्य पूर्णं तमव्रजयत् ॥२५॥

विज्ञाय चौग्रसेनिर्गोपेनारोपणं महाधनुषः ।
कमलानयनाय पुनर्गोपानाज्ञापयामास ॥२६॥

अन्यैः सुदुःप्रवेशं कालिन्दीह्रदमगाधमवगाह्य ।
तत्रोत्थितं महाहिं निहत्य हरिणाऽप्युपचितानि ॥२७॥

---

१. नाटवीं इति हरिवंशपुराणे । २. सिंहवाहामिति धनुषः विशेषणम् इति हरिवंशपुराणे ; नागशय्या इति उत्तरपुराणे ।

एक समय मथुराका राजा कंस अपने शत्रुको ढूँढ़नेके लिए गोकुल आया, तो यशोदा माता उसके पहले ही किसी बहानेसे कृष्णको कहीं बाहर ले गई। कृष्णने जंगलमें प्रवास करते हुए, विशाल एवं भयानक आकार वाली, तथा भयंकर अट्टहास करती हुई ताटकी नामकी एक राक्षसीको मार डाला ॥१८-१९॥ एक ग्राममें मण्डपके खम्भे बनानेके लिए रखे हुए बहुत वजन वाले शाल्मलि वृक्षके टुकड़े कृष्णके दर्शनसे ही उठ गये, तब माता निश्चिन्त हो गई कि अब शत्रु इसका कुछ बिगाड़ नहीं सकता ॥२०॥

इधर कंस (अपने प्रयत्नमें असफल हो) लौट आया और उसने निमित्तज्ञानीकी सलाहसे, शत्रुको खोजनेकी इच्छासे अपने नगरमें घोषणा करवाई कि जो भी मनुष्य सिंहशय्यापर चढ़कर, जितंजय नामके दिव्य धनुषको चढ़ायेगा और शंखकी ध्वनिसे आकाशको गुँजा देगा वह मनवाञ्छित पदार्थ पावेगा ॥२१-२२॥ यह घोषणा सुन बहुतोंने प्रयत्न किये पर सब वहीं निस्तेज हो लौट गये। वहाँ (राजगृहसे) कंसका राजा भानु भी आया। तथा कृष्णको वनसे फुसलाकर अपने साथ मथुरा ले आया। तदनन्तर कंसके शत्रु कृष्णने इन्द्र-स्थानमें सजी हुई सिंह-शय्याको देखकर पूछ-ताछ की और उसपर चढ़ गया। उसने धनुषकी डोरीको चढ़ाकर शंखको भी बजा दिया। वहाँ किसी बहानेसे बलरामने आकर कृष्णको शीघ्र ही वहाँसे भगा दिया ॥२३-२५॥ जब कंसने यह जाना कि 'महाधनुषको किसी ग्वालेने चढ़ाया है' तो उसने यमुनाके (कालीदह नामक) सरोवरसे कमल लानेके लिए गोपोंको आज्ञा दी। तत्पश्चात् कृष्णने दूसरोंको प्रवेश करनेमें कठिन, गहरे सरोवरमें घुसकर वहाँ रहनेवाले कालीनागको मारकर कमल तोड़ लिये और ग्वालोंके द्वारा मथुरा भिजवा दिये।

पुष्पाणि पुनर्गोपैः प्रहृतान्याज्ञापयत्समालोक्य ।
इह नन्दगोपतनयेनायान्त्विति मल्लयुद्धाय ॥२८॥

हलिनो हरिस्तदानीं श्रुत्वा कुलगोत्रमात्मनोऽप्युच्चैः ।
स्वभ्रातॄणां च वधं कंसायात्यन्तमभिरुष्टः ॥२९॥

गोपैः पुनः प्रतस्थे मथुरामद्यैव मे द्विषद्दृप्तः ।
स्वकपापकर्मफलरसमास्वादतां वै दुरात्मेति ॥३०॥

प्रतिवेषकं गृहीत्वा रसं तमापात्यते रम [1]तालाङ्कः ।
सुव्यालवदनमश्वं व्यापाद्य च केशिनं केशी ॥३१॥

उत्पाट्य दन्तयष्टिं मदोत्कटं भीमदर्शनं द्वारे ।
विनिहत्य वारणेन्द्रं चेन्द्रस्थानं विवेशाशु ॥३२॥

चाणूरवज्रमुष्ट्योर्निपातनं तत्र मल्लयोर्दृष्ट्वा ।
क्रुद्ध्वा समापतन्तं विगृह्य तरसाऽवधीत्कंसम् ॥३३॥

आहूय शेष[2]वचनादाहुक[3]मुन्मुक्तनिगडकं पश्चात् ।
राज्ये समभ्यषिच्यदत्तुपच्चात्मनो ज्ञातीः ॥३४॥

तत्राऽन्यदा प्रभञ्जनविलोलमालाम्बरो वियति वेगात् ।
विद्याधरनृपदूतः प्रोद्वक्त्रैर्वीक्षितः पौरैः ॥३५॥

अभ्येत्य नगरशोभादर्शनपर्य्याप्तनयनतत्त्वफलः ।
उपसेदिवान् समाजं विष्णोर्विभ्रान्तरिपुजिष्णोः ॥३६॥ युग्मम् ।

उपविश्योपनरेन्द्रं जगाद लब्धक्षणं क्षणाद्विष्णुम् ।
अहमागतोऽस्मि धीमन् रजताद्रेस्त्वत्सकाशमिति ॥३७॥

---

१. बलरामः । २. बलरामः, ब्राह्मणग्रन्थेषु शेषस्यावतारो बलरामः ।
३. उग्रसेन ।

तब कंसने यह जानकर कि ये कमल नन्दगोपके पुत्रने तोड़े हैं, कृष्णको मल्लयुद्धके लिए बुलाया ॥२६–२८॥

इधर बलराम-द्वारा अपने उच्चकुल गोत्रकी तथा कंसके द्वारा अपने भाइयोंके वधकी सब बात मालूम होनेपर कृष्णको कंसके ऊपर अत्यन्त क्रोध हुआ, और वे गोपोंके साथ यह कहते हुए चले कि मेरा शत्रु वह दुरात्मा घमण्डी कंस आज ही अपने पापकर्मोंका फल चखे ॥२९-३०॥

रास्तेमें कृष्ण और बलरामने केशी नामके राक्षसको जो कि अपना रूप बदलकर सर्पमुख और घोड़ेका रूप धारण कर आया था—मार गिराया। तथा कंसके दरवाजेपर बँधे हुए तथा देखनेमें भयानक मत्त हाथीके दाँतोंको उखाड़कर उसे भी मार डाला तथा शीघ्र ही इन्द्रस्थानमें प्रवेश किया। वहाँ चाणूर और वज्रमुष्टि नामके दो मल्लोंको पटककर मार डाला। तब यह देख क्रोधसे कंस उनके ऊपर टूट पड़ा। कृष्णने उसे भी युद्ध कर मार डाला ॥३१–३३॥ तदनन्तर बलरामकी आज्ञासे कृष्णने राजा उग्रसेनको बन्धनोंसे मुक्त कर उन्हें बुलाया और उनको राजगद्दी पर बैठाकर अपने परिवारके लोगोंको सन्तुष्ट किया ॥३४॥

किसी समय पुरवासियोंने आकाशमें बड़ी तेजीसे आते हुए एक विद्याधर राजाके दूतको ऊपर मुँह कर देखा। उस दूतकी माला और वस्त्र वायुसे हिल रहे थे ॥३५॥ नगरकी शोभा देखनेसे जिसने अपने नेत्र प्राप्तिको सफल बना लिया है, ऐसा वह दूत, अपने पक्षसे भटके हुए शत्रुओंको जीतनेवाले कृष्णकी सभामें आकर बैठ गया। राजा कृष्णके समीप बैठकर, थोड़े समयमें अवसर मिलते ही कृष्णसे बोला कि—हे धीमन्! मैं विजयार्ध पर्वतसे तुम्हारे पास आया हूँ। वहाँ विद्याधरोंका

रथनूपुरस्य भर्ता विद्याधरनरपतिः सुकेतुरिति ।
सम्भिन्नस्यादेशात्स्वसुतायाः परिपरीक्षार्थम् ॥३८॥

शय्यामिह हरिर्व्यूढामजितञ्जयमायुधं च सन्निदधौ ।
तस्यैवाऽऽरोपणतः परीक्षितायाऽत्रभवतीमिति ॥३९॥

सत्यं सुसत्यभामां कन्यां सन्दातुमैच्छदवनीन्द्रः ।
अभ्युदयायैव शुभो विद्याधरनरपसम्बन्धः ॥४०॥

दूतस्य वाक्यमेवं श्रुत्वा हरिराजगाद यद्येवम् ।
पूर्वकृतपुण्यफलमिदमुपपन्नं नः किमन्यदिति ॥४१॥

प्रतिपूजितः सुदूतो गत्वा स्वनृपाय सर्वमाचख्यौ ।
तमुपेन्द्रमिन्द्रसदृशं बलेन वपुषाप्यतिमनुष्यम् ॥४२॥

परितुष्टोऽसौ खगपः स्वयम्प्रभागर्भसम्भवां साध्वीम् ।
मधुसूदनाय कन्यामददादानीय परमद्‌र्ध्या ॥४३॥

भर्तृप्रवासशोकात्सुविकचा क्लीबचेतसेऽवोचत् ।
जीवद्यशा स्वपित्रे तदेत्य सर्वां स्वकाऽवस्थाम् ॥४४॥

श्रुत्वैव जरासन्धो जामातृनिपूदनोदितक्रोधः ।
निदिदेश कालयवनं सूनुं शौरेर्विनाशाय ॥४५॥

सोऽप्यागत्य ससैन्यो मालाऽवर्त्ताख्यपर्वते युध्वा ।
सप्तदशमहायुद्धान्यपाति यदुभिर्महासत्त्वैः ॥४६॥

पुनराहवेष्वधृष्यं भ्रातरमपराजितं नृपोऽन्वशिषत् ।
आगत्य स सङ्ग्रामान् षट्चत्वारिंशतं यदुभिः ॥४७॥

त्रीणि शतान्यपि युध्वा जनार्दनाऽस्त्रप्रपीतरुधिरायुः ।
प्रजगाम यमातिथ्यं यदवोऽप्यारेमुरतितुष्टाः ॥४८॥

राजा रथनूपुरका स्वामी सुकेतु नामका विद्याधर रहता है। उसने अपने संभिन्नमति मन्त्रीकी सलाहसे अपनी पुत्रीके विवाहके निमित्तसे परीक्षाके लिए ही यहाँ सिंहवाहिनी शय्या और अजितंजय नामक धनुष रखा था। उस धनुषको चढ़ानेसे आपकी परीक्षा हो गई इसलिए राजाने अपनी आयुष्मती पुत्री सत्यभामाको आपको देनेकी इच्छा की है। विद्याधर और नरेन्द्रोंका यह शुभ सम्बन्ध कल्याणके लिए ही होगा ॥३६-४०॥

दूतके इन वचनोंको सुन कृष्णने कहा कि यदि ऐसा है तो यह हमारे पूर्व जन्ममें किये पुण्य फलके सिवाय और क्या हो सकता है। फिर दूत अच्छी तरह सम्मानित हो चला गया और अपने राजासे, बलमें इन्द्रके समान तथा शरीरसे अलौकिक उस कृष्णके सम्बन्धमें सब समाचार कहे॥४१-४२॥विद्याधर भी प्रसन्न हो वहाँ आया और उसने अपनी रानी स्वयम्प्रभाके गर्भसे उत्पन्न साध्वी सुलक्षणा कन्या बड़ी विभूतिके साथ कृष्णके लिए दे दी ॥ ४३ ॥

इधर कंसकी स्त्री जीवद्यशा अपने पतिके मारे जानेसे दुखी हो, बालोंको फैलाये हुए, अपने साहसहीन पिताके पास गई और अपनी सब हालत कहने लगी ॥४४॥ जामाताकी मृत्यु सुनते ही जरासन्धको बड़ा क्रोध आया और अपने कालयवन नामक पुत्रको कृष्णका नाश करनेकी आज्ञा दी ॥४५॥ उसने सेनासहित मालावर्त नामके पर्वत पर आकर सत्तरह महायुद्ध किये और शक्तिशाली यादवोंसे लड़ता हुआ मारा गया ॥४६॥ तब जरासन्धने अपराजित नामके अपने भाईको, जो कि युद्धोंमें निर्भीक था, लड़ने भेजा। उसने आकर यादवोंके साथ तीन सौ छियालीस युद्ध किये और जब कृष्णके अस्त्रने उसका रुधिर पी लिया और आयु समाप्त कर दी तो वह इस संसारसे चल बसा। इससे सभी यादव अति सन्तुष्ट हो आनन्द मनाने लगे ॥४७-४८॥

अथ शौरिपुराऽधिपतेः शिवदेवी श्रीमतः प्रिया राज्ञी ।
स्वप्नानैक्षिष्टेमांस्तुरीययामे सुखं शयिता ॥४९॥

शरदभ्रसन्निकाशं सुगन्धिदानानुसार्यलिव्रातम् ।
द्विरदेन्द्रमिन्द्रनागप्रतिमं स्वप्ने समद्राक्षीत् ॥५०॥

लोलप्रलम्बसास्नं मनोज्ञशृङ्गं सुतुङ्गसत्ककुदम् ।
मन्द्रोद्रेकितमुखरं वृषं च हृष्टं निरैक्षिष्ट ॥५१॥

बालेन्दुकल्पदंष्ट्रं, विजृम्भमाणं स्फुरत्सटाटोपम् ।
व्यावर्तितलाङ्गूलं मृगेन्द्रमैक्षिष्ट पिङ्गाक्षम् ॥५२॥

फुल्लाऽम्भोजनिषण्णां सितद्विपेन्द्रात्तकुम्भनिर्गलितैः ।
अभिषेकमवाप्नुवतीमपश्यदीशा श्रियं क्षीरैः ॥५३॥

सर्वर्तुकुसुमचित्रं स्वामोदापूर्णसर्वदिग्विवरम् ।
देव्या तदा प्रलम्बं सुमनोदामद्वयं दृष्टम् ॥५४॥

व्याकीर्णकिरणमालः कुमुद्वतीबन्धुरुद्यतो व्यभ्रे ।
ददृशेऽम्बरे प्रपूर्णः शशाङ्कमुख्या शशाङ्कश्च ॥५५॥

विद्धाऽसिताऽन्धकारं कमलाकरवत्सलं समुद्यन्तम् ।
उदयाद्रिशिखरिशेखरमद्राक्षीद् श्रीलहरिदश्वम् ॥५६॥

स्वैरक्रीडासक्तौ परस्परप्रेमसङ्गतौ शुभ्रौ ।
ईक्षाम्बभूव देवी मनोज्ञरूपा झषौ मुदितौ ॥५७॥

व्याकोशपद्मपिहितौ सुरभिजलाऽपूरितोदरौ देव्या ।
आत्मकुचकलशसदृशौ सुवर्णकलशावदृश्येताम् ॥५८॥

अथानन्तर शौरीपुरके राजा श्रीमान् समुद्रविजयकी प्यारी रानी शिवदेवीने रात्रिके चौथे पहरमें सुखसे सोते हुए ये १६ स्वप्न देखे ॥४९॥ (पहले) स्वप्नमें उसने शरत्कालीन मेघके समान (श्वेत) तथा जिसके सुगन्ध मदजल पर भ्रमर-पंक्ति मँडरा रही थी और जो ऐरावतके समान था ऐसे गजेन्द्रको देखा ॥५०॥ दूसरे स्वप्नमें एक ऐसे हृष्टपुष्ट बैलको देखा, जिसके गलेकी लम्बी सास्ना (खाल) हिल रही थी, जिसके सुन्दर सींग थे, अच्छा ऊँचा कन्धा था तथा जो गम्भीर ध्वनिसे दल्हार रहा था ॥५१॥ तीसरे स्वप्नमें उसने एक ऐसे जम्हाई लेते हुए सिंहको देखा जिसकी दाढ़ें बालचन्द्रमाके समान थीं, तथा जिसकी सटा हिल रही थी और जो अपनी पूँछ मोड़े हुए था तथा जिसके नेत्र पिंगल वर्णके थे ॥५२॥ चौथे स्वप्नमें उस रानीने विकसित कमल पर बैठी हुई लक्ष्मीको देखा जिसे श्वेत हाथी दूधके कलशोंसे अभिषेक करा रहे थे ॥५३॥ पाँचवें स्वप्नमें उस देवीने सब ऋतुओंके कुसुमोंसे चित्रित लटकती हुई दो मालाएँ देखी जिसकी सुगन्धिसे समस्त दिशाएँ भर रही थीं ॥५४॥ छठवें स्वप्नमें उस चन्द्रमुखी रानीने स्वच्छ आकाशमें उगते हुए कुमुदिनियोंके मित्र पूर्ण चन्द्रमाको देखा, जो अपनी किरणें फैला रहा था ॥५५॥ सातवें स्वप्नमें उसने उगते हुए शोभायुक्त कमलोंके मित्र सूर्यको देखा जिसने काले अन्धकारको नष्ट कर दिया था, तथा जो उदयाचल पर्वतके मुकुटस्वरूप था ॥५६॥ आठवें स्वप्नमें उस मनोज्ञ रूपवाली देवीने, प्रसन्न एवं शुक्ल दो मछलियोंको देखा जो स्वच्छन्द क्रीड़ा कर रहीं थी, तथा आपसमें स्नेहयुक्त थीं ॥५७॥ नवम स्वप्नमें उस रानीने अपने स्तनोंके समान ही बड़े दो कलशोंको देखा जो सुगन्धित जलसे पूरित थे तथा विकसित कमलोंसे ढँके हुए थे ॥५८॥ दशवें स्वप्नमें उस

स्वच्छसलिलाभिपूर्णं प्रविकसिताऽनेककुसुमसङ्कीर्णम् ।
नानाविहङ्गरंगं ददर्श देवी सरो रम्यम् ॥५९॥

व्याघूर्णितोर्मितरलं प्रवालमुक्तामणिप्रभाच्छुरितम् ।
आलोकिताऽक्षिकान्तं प्रमत्तयादोगणं जलधिम् ॥६०॥

मृगराजमस्तकस्थं नानारत्नप्रभाविनिष्यन्दि ।
सिंहासनमासन्नं मृद्वास्तीर्णं ददर्शेशा ॥६१॥

आमुक्तहेमदामप्रलम्बघण्टाप्रणादवाचालम् ।
बहुभेदभक्तिचित्रं विमानमालोकते स्मार्या ॥६२॥

रत्नप्रभाप्रभातं समुन्नताऽनेककेतुसम्भूषम् ।
अवभिद्य भुवमुपेतं भगवत्याऽदर्शि भवनं च ॥६३॥

वैडूर्यसूर्यकान्तप्रभृत्यशेषोरुरत्नसद्राशिः ।
समदर्शि दीप्तदीधितिपिनद्धशक्रायुधो देव्या ॥६४॥

उद्यद्दिवाकराभं ज्वलन्तमुदितार्चिषं च हुतभक्षम् ।
अपधूममत्रभवती निरैक्षताऽक्षिप्रियं प्रीता ॥६५॥

एतान् षोडशशुभ्रान् स्वप्नान् सन्दर्श्य मातरं भगवान् ।
अवतीर्य त्रिदिवाग्रादिन्द्रानाकम्पयन् स्थानात् ॥६६॥

वक्त्रेन्दुमीश्वरायाः सितद्विपेन्द्राकृतिं गृहीत्वेशः ।
प्रविवेश शुक्लपक्षे श्रावणमासस्य सप्तम्याम् ॥६७॥

राज्ञी ततः प्रभाते कृतकौतुकमङ्गला समेत्य पतिम् ।
स्वप्नानामप्राक्षीत्फलमाचख्यौ नृपश्चेत्थम् ॥६८॥

देवीने स्वच्छ जलसे पूर्ण एक मनोहर सरोवर देखा जो कि खिलते हुए अनेक प्रकारके फूलोंसे तथा नाना प्रकारके पक्षियोंसे भरा हुआ था ॥५९॥ ग्यारहवें स्वप्नमें उस रानीने उठती हुई तरंगोंसे चंचल तथा नेत्रोंको प्रिय समुद्रको देखा, जो मूँगा मोती आदि मणियोंकी कान्तिसे व्याप्त था तथा जिसमें मस्त जलजन्तु पड़े हुए थे ॥६०॥ बारहवें स्वप्नमें उस देवीने समीपमें सिंहके मस्तक पर रखे हुए सिंहासनको देखा जिसमेंसे रत्नोंकी प्रभा निकल रही थी तथा जिस पर कोमल गलीचा बिछा हुआ था ॥६१॥ तेरहवें स्वप्नमें उस माताने नाना प्रकारकी रचनाओंसे चित्रित एक विमानको देखा जो कि मोती और सोनेकी रस्सीमें लटकते हुए घण्टोंकी ध्वनिसे शब्दायमान था ॥६२॥ चौदहवें स्वप्नमें उस भगवतीने रत्नोंकी प्रभासे प्रकाशमान तथा पृथ्वीको भेदन कर निकलते हुए धरणीन्द्रके भवनको देखा जो कि उड़ती हुई अनेक प्रकारकी पताकाओंसे भूषित था ॥६३॥ पन्द्रहवें स्वप्नमें उस रानीने वैडूर्य, सूर्यकान्त आदि सम्पूर्ण रत्नोंकी एक बड़ी भारी राशि (ढेर) देखी जो कि चारों तरफ कान्ति फैला रही थी तथा वज्रमणिसे युक्त थी ॥६४॥ सोलहवें स्वप्नमें उस प्रसन्न रानीने नेत्रोंको प्रिय एवं धूम रहित जलती हुई अग्नि देखी जिसकी लपटें ऊपर जा रही थीं तथा जो उगते हुए सूर्यके समान आभावाली थी ॥६५॥

भगवान् नेमिनाथ इन सोलह शुभ स्वप्नोंको माताको दिखला कर, इन्द्रोंके आसनोंको कम्पाते हुए, स्वर्गके अग्रभाग अर्थात् जयन्तविमानसे अवतरित हो और श्वेत हाथीका रूप धारण कर श्रावण शुक्ल सप्तमीके दिन माताके मुखचन्द्रसे गर्भमें प्रवेश किया ॥६६-६७॥ तदनन्तर प्रातःकाल होते ही वह रानी प्रातः कृत्य सम्पन्न करके शृंगार कर अपने पतिके पास गई और

कैलासकूटगौरद्विपेन्द्रसन्दर्शनेन तनयस्ते ।
उत्पत्स्यते महात्मा द्विरदेन्द्रविडम्बिगतिलीलः ॥६९॥

वृषभादलङ्करिष्यति भामिनि वृषभेक्षणाद्वृषस्कन्धः ।
गोमण्डलमिव वृषभः सकलजगन्मण्डलमिहैकः ॥७०॥

भविताऽत्र पुरुषसिंहो वनराजनिरीक्षणाद्वनजनेत्रे ।
हरिरिव परैरधृष्यस्तपोवनाऽधीश्वरो धीरः ॥७१॥

पयसा प्रसूतमात्रः पयोऽम्बुधेः सुतनु मेरुगिरिशिखरे ।
अभिषेक्ष्यते सुरेन्द्रैः श्र्यभिषेकविलोकनात्कान्ते ॥७२॥

दामद्वयोपलब्धेरनन्तविज्ञानदर्शनो भविता ।
लोकत्रितयनिरन्तरसंव्यापियशः सुरभिगन्धे ॥७३॥

प्रह्लादयिष्यति जगत् प्रिये दयाज्योत्स्नया जिनशशाङ्कः ।
शशलाञ्छनसमवदनः शशलक्ष्मनिरीक्षणात्सकलम् ॥७४॥

स्वमहिम्नाऽहितदर्पान् रसानिवाहस्करो विशोषयिता ।
अज्ञानमन्दतमसां भास्करदृष्टेश्च नाशयिता ॥७५॥

अनुभूय विषयसौख्यं पुनरन्ते दिव्यमव्ययममेयम् ।
निर्वृत्तिसुखमनुभविता सुखायमानानिमिषयुग्मात् ॥७६॥

अलकेशमन्दिरोपममस्मद्वेश्मापि निधिभिरापूर्णम् ।
हर्षापूर्णं च जगद् भविता वरपूर्णकुम्भाभ्याम् ॥७७॥

सरसः सरोजनेत्रे प्रशस्तशुभलक्षणावकीर्णतनुः ।
दयितस्तेऽत्र भविष्यति नाशयिता लोभतृष्णायाः ॥७८॥

उससे स्वप्नोंका फल पूछने लगी। तब राजाने इस प्रकार उत्तर दिया कि–हे देवि! कैलाशके शिखरके समान गौरवर्ण गजेन्द्रको देखनेसे तुम्हें एक महात्मा होगा जो हाथीके समान ही धीर गम्भीर होगा ॥६८-६९॥ हे भामिनि, वृषभके देखनेसे वह उन्नत-स्कन्धवाला तुम्हारा पुत्र अकेला ही सारे भूमण्डलको वृषभ अर्थात् धर्मसे सुशोभित करेगा जैसे उत्तम बैल गोमण्डलको सुशोभित कर देता है ॥७०॥ हे कमलनेत्रे! सिंहके देखनेसे तुम्हारा पुत्र पुरुषोंमें सिंहके समान होगा। वह सिंहके समान ही किसीसे न डरेगा। तथा तपोवनका स्वामी और धीर होगा ॥७१॥ हे सुतनु, हे कान्ते! लक्ष्मीका अभिषेक देखनेसे तुम्हारे पुत्रको उत्पन्न होते ही सभी इन्द्र सुमेरुपर्वतपर ले जाकर क्षीर-सागरके जलसे अभिषेक करेंगे ॥७२॥ हे सुरभिगन्धे, दो मालाओं-के देखनेसे वह अनन्तदर्शन और अनन्तज्ञानवाला होगा और तीनों लोकोंमें उसका यश निरन्तर व्याप्त होता रहेगा ॥७३॥ और हे प्रिये! पूर्ण चन्द्रमाके देखनेसे चन्द्रमाके समान मुखवाला वह जिन-चन्द्र अपनी दयारूपी ज्योत्स्नासे सारे संसारको प्रसन्न करेगा ॥७४॥ सूर्यके देखनेसे, वह पुत्र, सूर्य जैसे पानीको सोख लेता है, उसी तरह अपनी महिमासे शत्रुओंके दर्पको नष्ट कर देगा तथा अज्ञानरूपी अन्धकारको नष्ट कर देगा ॥७५॥ और कल्लोल करती दो मछलियोंके देखनेसे वह पुत्र विषय-सुखोंको अनुभव कर अन्तमें दिव्य, अविनाशीक, अमेय मोक्ष सुखका अनुभव करेगा ॥७६॥ तथा उत्तम दो पूर्ण कलशोंको देखनेसे हमारा घर भी कुबेरके मन्दिरके समान ही निधियोंसे पूर्ण होगा और सारा संसार भी हर्षसे पूर्ण होगा ॥७७॥ हे कमलनेत्रे! सरोवरके देखने-से तुम्हारे पुत्रका शरीर उत्तम शुभ लक्षणोंसे व्याप्त होगा और वह लोभ-तृष्णाका नाश करनेवाला होगा ॥७८॥ तथा समुद्रके

जलधेर्जलधिगभीरो नानानीत्यापगाशतसमृद्धम् ।
अल्पाम्बुपाततृषितानुपलम्भयिता श्रुतसमुद्रम् ॥७९॥

प्रौढा(बद्धा)ञ्जलिमणिमुकुटैर्देवेन्द्रैरादरेण परिवीतम् ।
सिंहासनमारोढा सिंहासनदर्शनात्स्वप्ने ॥८०॥

भौमे विमानदृष्टेर्विमाननाथाऽर्च्यचारुचरणयुग्मः ।
अवचुच्युवे विमानो विमानमुख्यादिहानुपमः ॥८१॥

भवपञ्जरस्य भेत्ता भविता भवनोपलम्भतो भद्रे ।
ज्ञानत्रयेण सार्द्धं जनितात्र जनितोत्सवे जगति ॥८२॥

नानाप्रकारभासुररत्नमहाराशिदर्शनादार्ये ।
श्रायिष्यते शरण्यः सरलनिर्मलगुणसमूहेन ॥८३॥

दीप्ताऽपधूमवह्नेर्विलोकनाल्लोकलोचनो भगवान् ।
धक्ष्यति स कर्मकक्ष मंक्षुतयात्र योगदहनेन ॥८४॥

वरकनककुण्डलोपलचञ्चलप्रभाविद्युदावलिकलिताः ।
प्राकृतनरेश्वरा इव सुन्दरि सेन्द्राः सुराः सदसि ॥८५॥

विनयावनतमौलिकोटीमिलदासनद्युतिवितानमुखाः ।
परिवारतां प्रतिदिनं यन्माहात्म्यात्प्रयास्यन्ति ॥८६॥ युग्मम् ।

शिथिलावलम्बिशिरसः ललितकलापावगलितमन्दाराः ।
अतिसम्भ्रमेण गुञ्जन्नूपुररसनावलीवलयाः ॥८७॥

त्वद्वचनवियोगेच्छाः प्रसाधनादिक्रियासु ते नियतम् ।
परिचारिकाः प्रसादादिन्द्राण्यो यस्य भवितारः ॥८८॥युग्मम् ।

देखनेसे वह समुद्रके समान गम्भीर एवं नाना नीतिरूपी सैकड़ों सरिताओंसे समृद्ध तथा अल्पज्ञानरूपी जलके पानसे प्यासे लोगों-को श्रुत समुद्रको प्राप्त करानेवाला होगा ॥७९॥ स्वप्नमें सिंहासन-के देखनेसे वह पुत्र ऐसे सिंहासन पर आरोहण करनेवाला होगा जिसे अपने मणिमुकुटों पर अञ्जलि बाँधे इन्द्रादि देव आदरसे घेरे रहेंगे ॥८०॥ तथा विमानके देखनेसे वह मानरहित अनुपम पुत्र इस पृथ्वीमें मुख्य विमान अर्थात् जयन्त स्वर्गसे अवतरित होगा, जिसके चरणोंकी पूजा इन्द्र करेंगे ॥८१॥ और हे भद्रे ! भवनको देखनेसे वह भवबन्धनका काटनेवाला होगा तथा संसारमें आनन्द पैदा कर ज्ञानत्रयके साथ उत्पन्न होगा ॥८२॥ तथा हे आर्ये ! नाना प्रकारकी कान्तिमान् रत्नोंकी महाराशि देखनेसे वह सरल और निर्मल गुणोंके समूह-द्वारा सबको शरण देनेवाला होगा ॥८३॥ और धूमरहित जलती हुई अग्निको देखनेसे संसार-के लोचनस्वरूप वे भगवान् शीघ्र ही योगरूपी अग्निसे समस्त कर्मोंको नष्ट कर देंगे ॥८४॥ हे सुन्दरि ! जिसके माहात्म्यसे इन्द्रों सहित समस्त देव, जिनका मुख उत्तम सोनेके कुण्डलोंमें लगे मणियोंकी चंचल प्रभारूपी विद्युत् रेखासे शोभित है, तथा जो विनयसे झुके मुकुटोंके अग्रभाग और भगवान्के सिंहासनकी कान्तिके मिलनेसे प्रकाशित है, साधारण राजाओंके समान ही प्रतिदिन सभामें परिवारके जैसे बने रहेंगे ॥८५-८६॥ तथा जिसके पुण्य प्रसादसे वे इन्द्राणियाँ, जिनके अत्यन्त वेगसे चलनेके कारण, ढीले बँधे हुए शिरके बालोंकी सजावटसे मन्दार-पुष्प गिर रहे हैं, तथा जिनके मणिके बने बिछुए, करधौनी और हाथके कंकण मधुर ध्वनि कर रहे हैं, तथा जो तुम्हारी आज्ञासे ही विश्राम लेना चाहेंगी—तुम्हारे स्नान शृंगार आदि कार्योंको ठीक रूपसे करनेवाली दासियाँ होंगी ॥८७-८८॥ और विशेष

किं बहुना स्वप्नविधेः फलमिदमेतस्य ननु सुपर्याप्तम् ।
तस्यावां यास्यावो यद्गरिमाणं त्रिलोकगुरोः ॥८९॥

षाण्मासिकधनवृष्टेः प्रागेवोत्पत्तिरनुमिताऽस्माभिः ।
आस्माकीने वंशे त्रिजगन्नाथस्य हि जिनस्य ॥९०॥

इत्युक्तं स्वप्नफलं पत्या संश्रुत्य संश्रितप्रतिका ।
अङ्कागतमिव तनयं मत्वेति च सा संजहर्षे ॥९१॥

वैश्रवणोऽपि च तस्मिन् समये शक्राज्ञया समागत्य ।
स्रग्वसनालङ्कारैर्दिव्यैरानर्च जिनपितरौ ॥९२॥

प्रतिदिनमर्द्धचतुर्थां हिरण्यकोटिर्ववर्ष वसुधाराः ।
आजन्मनश्च भर्त्तुर्भगवद्गुरुमन्दिरे धनदः ॥९३॥

त्रिदशाऽप्सरोनियोजितनानाविधसम्पदोश्च व्यतीयुः ।
जिनगुर्वोर्नवमासाः सुरेन्द्रशच्योरिव सुखेन ॥९४॥

भगवांस्ततः प्रजज्ञे देववधूहस्तपद्मषट्चरणः ।
वैशाखशुक्लपक्षे त्रयोदशदिने जगज्ज्वलयन् ॥९५॥

सर्वे समेत्य तूर्णं नानाविधयानवाहनाऽनीकाः ।
नीता महाविभूत्या जिनेन्द्रमिन्द्रा गिरीन्द्राग्रे ॥९६॥

विधिना समभ्यषिञ्चन् क्षीरोदधिवारिपूर्णसत्कुम्भैः ।
नानाचित्रैः स्तोत्रैः प्रतुष्टुवुश्चापि परितुष्टाः ॥९७॥

आनीय जिनं पश्चादानन्दकनाटकं समाक्रीड्य ।
भगवत्पितरौ चेष्टान् स्वानावासान्ययुर्देवाः ॥९८॥

देवाप्सरःसमूहैररिष्टनेम्यङ्कगीतकैर्भगवान् ।
रेमेऽभिदीयमानो भोगैर्धनदोपनीतैश्च ॥९९॥

क्या कहूँ इन स्वप्नोंका इतना ही विशेष फल है कि हम दोनों उस तीन लोकके गुरु होनेकी (माता-पिता होनेकी) गरिमा (महत्त्व) को प्राप्त होंगे ॥८९॥ हम लोगोंने छः माहतक धन-वृष्टि होनेसे पहले ही अनुमान कर लिया था कि हमारे वंशमें त्रिलोकीनाथ तीर्थंकरका जन्म होगा ॥९०॥

इस प्रकार पतिसे कहे गये स्वप्नके फलको सुनकर वह व्रत-नियम पालनेवाली रानी पुत्रको गोदमें आये हुएके समान मानकर अत्यन्त प्रसन्न हुई ॥९१॥

उस समय इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने आकर जिन-भगवान्‌के माता-पिताकी दिव्यमाला, वस्त्र और भूषणोंसे पूजा की। कुबेरने भगवान्‌के जन्मतक उनके माता-पिताके घर प्रतिदिन साढ़े तीन करोड़ सुवर्णकी वृष्टि की ॥९२-९३॥ इस प्रकार देवों और देवाङ्गनाओंसे दी गई नाना प्रकारकी सामग्री भोगते हुए, इन्द्र और इन्द्राणीके समान, भगवान्‌के माता-पिताके नवमास सुख-पूर्वक बीत गये। ॥९४॥

तत्पश्चात् संसारको कम्पित करते हुए, वैशाख शुक्ल त्रयोदशीके दिन देवाङ्गनाओंके करकमलोंके भ्रमरके समान वे भगवान् जन्मे ॥९५॥ तब शीघ्र ही नाना प्रकारके यान वाहन और सेना लेकर सभी इन्द्र आये और जिनेन्द्रको बड़े उत्सवके साथ सुमेरुपर्वतपर ले गये ॥९६॥ वहाँ उन लोगोंने क्षीरसागरके जलसे भरे हुए उत्तम कलशोंसे भगवान्‌का विधिपूर्वक अभिषेक किया और प्रसन्न होकर नाना प्रकारके स्तोत्रोंसे इनकी स्तुति की। ॥९७॥ फिर भगवान्‌को माता-पिताके पास ले आये और आनन्द नामके नाटकको खेल अपने इष्ट स्थानोंको चले गये ॥९८॥ तत्प-श्चात् वे भगवान् अरिष्टनेमि शब्दसे युक्त लोरी गीत गानेवाले देवाङ्गनाओंसे तथा कुबेरके द्वारा लाये गये नाना साधनोंसे, क्रीड़ा करने लगे ॥९९॥

अथ मागधोऽपि मरणं श्रुत्वा भ्रातुर्दशार्हसङ्घाय[1] ।
क्रुद्धोऽभ्ययात्ससैन्यो यदवोऽप्यर्थं समामन्त्र्य ॥१००॥
उत्थाप्य तदा मथुरां वीरपुरं चापि शौरिनगरं च ।
अपरार्णवोपकण्ठं दुर्गं निशि सेर्ष्यया प्रययुः ॥१०१॥
अनुमार्गमेव तेषां प्रजग्मिवानन्तरं जरासन्धः ।
चितकां प्रकृत्य रुदतीं यादवपूर्वाभिसम्बन्धात् ॥१०२॥
स्थविरीभूय च करुणं विलपन्तं वीक्ष्य देवतां काञ्चित् ।
वृष्णिविनाशं श्रुत्वा तस्याः श्रद्धाय चाववृते ॥१०३॥
कृष्णोऽपि दर्भशय्यां शयितो नियमाऽन्वितोऽष्टमम्भक्तम् ।
स्थानेप्सया तु चक्रे समुद्रतीरे ससीरधरः ॥१०४॥
तेनाऽमरेन्द्रवचनान्निवर्तयामास सागरं सद्यः ।
देवो गौतमनामा प्रघूर्णितोत्तुङ्गभङ्गधरम् ॥१०५॥
चक्रे च कृष्णपुण्यैर्भगवद्भक्त्या च धनपतिर्नगरम् ।
नवयोजनविस्तीर्णां द्वारवतीं द्वादशायामम् ॥१०६॥
सहसैवं सामुद्रात्समुद्गता दैत्यराजनगरीव ।
सुतरां रराज गगनादवतीर्णा सालकेवास्मिन् ॥१०७॥
तत्रेष्टविषयभोगैर्दिव्यैररमन्त यादवा हृष्टाः ।
क्लमभयरसानभिज्ञा दिवीव देवाः सुरतसक्ताः ॥१०८॥
वणिजः कदाचिदुदधौ दिङ्मूढाः केचिदागतास्तत्र ।
आदाय रुचिररूपाण्यनन्यलभ्यानि रत्नानि ॥१०९॥
प्रादिशत ते व्रजित्वा राजगृहं तान्युपायनं राज्ञे ।
दृष्ट्वा विस्मितहृदयो नरलोकसुदुर्लभानि नृपः ॥११०॥
कुत्यान्यमूनि दिव्यान्यतुल्यसाराणि चारुरत्नानि ।
इति पप्रच्छ विशस्तांस्तेऽपि तदैवं समाचख्युः ॥१११॥

---

१. दशार्हेति यदूनां पूर्वजः—अत्र यदुसंघ इत्यर्थः ।

इधर मगधराज जरासन्ध, अपने भाईका मरण सुनकर यादवोंके ऊपर बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने सेनाके साथ चढ़ाई कर दी। तब यादव भी अपने हितकी बात सोचकर, रात्रिमें ही मथुरा, वीरपुर और शौरिनगर छोड़ बदला लेनेकी भावनासे पश्चिम समुद्रके पास एक दुर्गमें चले गये ॥१००-१०१॥ तब जरासन्ध मार्गमें उनका पीछा करते हुए चला पर उसने बीचमें ही, चिता बनाकर रोती हुई किसी देवीको देखा जो बुढ़ियाका रूप बनाकर यादवोंके प्रति विशेष स्नेह होनेसे करुण विलाप कर रही थी। जरासन्ध उससे यादवोंका विनाश सुनकर और उसके वचनोंपर विश्वासकर लौट आया ॥१०२-१०३॥

इधर कृष्णने भी समुद्रके किनारे स्थान पानेकी इच्छासे अपने भाई बलरामके साथ व्रत करते हुए, कुशकी शय्या पर सोकर अष्टम भक्त व्रत किया ॥१०४॥ तब इन्द्रकी आज्ञासे गौतम नामके देवने ऊँची उठती तरंगोंवाले समुद्रको शीघ्र ही हटा दिया ॥१०५॥ और कुबेरने कृष्णके पुण्योदय और भगवान्‌की भक्तिसे नव योजन चौड़ी तथा बारह योजन लम्बी द्वारिका नगरीका निर्माण कर दिया ॥१०६॥ इस प्रकार समुद्रसे सहसा निकली हुई वह नगरी ऐसी मालूम होती थी जैसे राक्षसोंकी राजधानी हो, अथवा मानो स्वर्गसे अलकापुरी ही अवतीर्ण हुई हो ॥१०७॥ वहाँ यादवगण क्लेश एवं भय रहित हो मनवाञ्छित दिव्य विषय-भोगोंको भोगने लगे ॥१०८॥

एक समय समुद्रमें भूले-भटके कुछ वणिक् द्वारकापुरी आये और वहाँसे सुन्दर एवं अन्यत्र दुर्लभ रत्नोंको ले जाकर राजगृहमें राजा (जरासन्ध) के लिए भेंट-स्वरूप दिया। तब राजा इस लोकमें अत्यन्त दुर्लभ रत्नोंको देख बड़ा विस्मित हुआ और पूछने लगा कि इन अनुपम दिव्य एवं मनोहर रत्नोंको तुम लोगोंने

नरदेव देवलोकप्रतिनिधिरूर्जस्वला दशार्हाणाम् ।
नगरी न नाम भूमावपरा पूरस्ति तत्सदृशी ॥११२॥

यस्याश्चलोर्मितरलो भ्रमन्महाग्राहसंकुलो जलधिः ।
परिखीकृतः स्वरत्नप्रभापरिक्षेपजलपुष्पः ॥११३॥

प्रासादशिखरनद्धप्रोद्दीधितिदीप्तरत्नभासाभिः ।
अज्ञातभाविशेषौ चन्द्रादित्यौ सदा यस्याम् ॥११४॥

कान्ताभिरभिरमन्ते यादवा यस्यां हि सौधहर्म्येषु ।
अविभाव्यमानशोभाः सिताभ्रगर्भाऽमरद्वन्द्वे ॥११५॥

सर्वातिरिक्ततेजा शरद्विवस्वानिव च सुदुष्प्रेक्ष्यः ।
परिघगुरुबाहुयुगलो व्यूढोरस्को गिरिप्रांशुः ॥११६॥

मत्तद्विपेन्द्रगामी शरवच्छातोदरो महासत्त्वः ।
योऽरिष्ववज्ञभावादायुधयोग्येषु नाद्रियते ॥११७॥

यदुवंशवर्द्धमानो जनार्दनो निःसपत्नमिष्टतमान् ।
भोगानुपभुञ्जानो यामधितिष्ठत्यतीतभयः ॥११८॥ त्रिकम् ।

तस्याः कुबेररचिताऽनेकसुरत्नावभासितगृहायाः ।
आनीतान्यस्माभिर्नृपेन्द्र रत्नान्यनर्घ्याणि ॥११९॥

इति यदुवंशख्यातिं श्रुत्वाऽमर्षाग्नितप्तताम्राक्षः ।
विससर्ज मन्त्रिवचनाज्ञाम्ना जितसेनकं दूतम् ॥१२०॥

कहाँ पाया है। तब उन लोगोंने इस प्रकार कहा कि हे नरदेव ! दूसरे स्वर्गलोकके समान यादवोंका एक समृद्ध नगर है। उस सरीखा नगर तो पृथिवीमें और कोई नहीं है ॥१०९-११२॥ इसकी खाईके रूपमें, अनेक मगर-मच्छसे व्याप्त, चंचल तरंगोंवाला समुद्र है तथा वहाँ समुद्रके रत्नोंकी प्रभासे मिला हुआ जल ही पुष्पोंका काम देता है ॥११३॥ जिस नगरीमें महलोंके शिखरमें लगे हुए उन्नत कान्तिवाले चमकीले रत्नकी किरणोंमें और चन्द्र एवं सूर्यके प्रकाशमें कोई विशेषता नहीं मालूम होती ॥११४॥

उस नगरीके महलोंमें यादवगण अपनी पत्नियोंके साथ सदा अभिरमण करते हैं, उन्हें स्वच्छ आकाशमें चलनेवाले सूर्य और चन्द्रमामें कोई अन्तर नहीं मालूम पड़ता है अर्थात् उन्हें रात्रि दिनका कोई भेद नहीं मालूम होता है ॥११५॥ उस नगरीमें यदु-वंशमें उत्पन्न कृष्ण, शत्रुरहित निर्भय होकर, मनवांछित भोगोंको भोगता हुआ रहता है। वह महातेजस्वी है तथा शरत् कालीन सूर्यके समान तीक्ष्ण होनेसे उसपर दृष्टि नहीं ठहरती है; उसके बाहु अति लम्बे एवं विशाल हैं, उसका वक्षःस्थल भी विशाल है। वह पर्वतके समान उन्नत तथा गजके समान मत्तगतिवाला है; बाणके समान कृशोदर, एवं महाशक्तिशाली वह कृष्ण तिरस्कार भावसे आयुध चलानेमें क्षम शत्रुओंकी भी परवाह नहीं करता ॥११६-११८॥

हे राजन् ! हमलोग उस नगरीसे ही ये अनमोल रत्न लाये हैं जहाँ कि कुबेरके द्वारा बनाये गये एवं अनेक अच्छे रत्नोंसे प्रका-शित गृह हैं ॥११९॥

इस प्रकार यदुवंशकी ख्याति सुनकर उसके नेत्र क्रोधरूपी अग्निसे लाल हो गये और उसने मन्त्रियोंकी सलाहसे अजितसेन नामके दूतको यादवोंके पास भेजा ॥१२०॥ दूत कर्मकी सभी

सोऽपि क्रमेण गत्वा द्वारवतीमाप सर्वविदितार्थः ।
उद्यानसुरभिपवनैरपनीताऽध्वश्रमः शिशिरैः ॥१२१॥

ध्यानमिव पुण्यकर्मा पुरमुरुवेश्मावलीं विसृतदृष्टिः ।
प्रविवेश नगरनारीविलोचनातिथ्यमुपगच्छन् ॥१२२॥

आसाद्य राजभवनं महाप्रतीहारचोदितागमनः ।
समगाहत राजसभां विचित्रवेषैर्नृपैः पूर्णाम् ॥१२३॥

अध्यास्य यथोद्दिष्टं ततो मुहूर्त्तात्प्रवक्तुमारभत ।
इत्थं हिताय भवतां प्रशास्ति मगधेश्वरः प्रणयात् ॥१२४॥

यच्छङ्कया प्रविष्टा यूयमिहाऽम्भोधिसंकटं दुर्गम् ।
एकोऽपि तेन तावत्कृतापकारो न हि भवत्सु ॥१२५॥

युष्मद्गुणित्ववेदी प्रणाममात्रप्रसादनीयोऽसौ ।
जामातृसगर्भादेः वधाभियातोऽपि यदि नाम ॥१२६॥

यद्यपि कृताऽपकारा यूयं न नृपोऽभिलक्ष्येत्प्रणतिम् ।
प्रणतिप्रसादसुमुखाः कृताऽपराधेष्वपि हि सन्तः ॥१२७॥

यदि न प्रणाममतयो दुर्गाऽवष्टम्भकारणाद्यूयम् ।
स्वभुजाऽवलेपमानी सहेत कथमुन्नतानन्यान् ॥१२८॥

तच्छीघ्रमेव गत्वा प्रणिपातपुरःसराः प्रसादयत ।
यदि वंशव्युच्छित्तिं नेच्छत भवतां जरासन्धम् ॥१२९॥

इति दूतवाक्यमेते निशम्य भिन्नभ्रुवोऽधिकं प्रोष्याः[1] ।
क्रोधाभिताम्रनयनाः कृष्णप्रमुखाः प्रतिजगर्जुः ॥१३०॥

---

१. चिरकालेन प्रवसिता इत्यर्थः ।

कलाओंमें प्रवीण यह दूत भी अनुक्रमसे जाकर द्वारिकापुरी पहुँचा। उसके रास्तेकी थकान ठंडी एवं बगीचोंकी सुगन्धित वायुने दूर कर दिया ॥१२१॥ विस्मृत दृष्टि वाला वह दूत—जिसे नगरकी नारियाँ देख रही थीं उस बड़े-बड़े महलोंवाली नगरीमें ठीक वैसे ही प्रविष्ट हुआ जैसे कि एक पुण्यात्मा ध्यानमें प्रवेश करता है ॥१२२॥ राजभवनमें पहुँचकर उस दूतने अपने आनेकी सूचना द्वारपाल द्वारा भेज दी और अनेक प्रकारकी वेशभूषा धारण किये हुए राजाओंसे भरी राजसभामें प्रविष्ट हुआ ॥१२३॥ अपने लिए बतलाये गये आसन पर बैठकर थोड़ी देर बाद उसने इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया कि—मगधेश्वर जरासन्ध ने आप लोगोंके लिए एक हितकी बात कहला भेजी है ॥१२४॥ वह यह कि जिसके भयसे आप लोग समुद्रके इस कष्टप्रद दुर्गमें आकर रह रहे हैं, उसने तो आपलोगोंका एक भी अपकार नहीं किया है ॥१२५॥ यद्यपि आपलोगोंने ही उसके जामाता तथा भाई आदिको मारकर उसपर ही एक प्रकारसे चढ़ाई की है फिर भी वह आपलोगोंके गुणोंको जानता है, इसलिए आपलोग उसे प्रणाम मात्रसे प्रसन्न कर सकते हैं। वह राजा आप लोगोंके प्रणामको न टालेगा क्योंकि सज्जन लोग अपकार करनेवालोंपर प्रणाममात्रसे ही प्रसन्न हो जाते हैं ॥१२६-१२७॥ दुर्गमें रहनेके कारण यदि आपलोग, उसके सामने झुकना नहीं चाहते तो अपनी भुजाओंपर गर्व करनेवाला वह राजा दूसरे घमण्डियोंको कैसे सह सकता है ॥१२८॥ इसलिए यदि आपलोग जरासन्धसे अपने वंशका विनाश नहीं चाहते तो शीघ्र ही जाकर उसे प्रणामकर प्रसन्न कर लीजिए ॥१२९॥

दूतके इन वचनोंको सुनकर उन सबने अपनी भौंहे चढ़ा लीं और वहाँ बहुत समयसे बसे हुए वे कृष्ण आदि यादव क्रोध-

आयात्वसौ निनङ्क्षुः सङ्ग्रामोत्कण्ठिता वयं सुचिरात् ।
इति तैस्तदा विसृष्टो गत्वा स्वनृपाय तथाऽवोचत् ॥१३१॥

प्रोत्थाय सहोत्पातैः स्वदूतवचनेन मागधः क्रुद्धः ।
तस्थौ च कुरुक्षेत्रे भूचालस्पर्धया चम्वा ॥१३२॥

यदुसर्ववाहिनीभिर्विधूतधूलीविलक्षिताऽगमनः ।
अभ्येत्य तदा तूर्णं तत्रैवाऽधोक्षजोऽप्यस्थात् ॥१३३॥

सन्नह्य गरुडचक्रव्यूहविभक्ते ततः समागाताम् ।
शरवर्षपातपरुषे यदुमगधेन्द्रध्वजिन्यौ ते ॥१३४॥

तत्रासिभिः प्रदीप्तैः क्रोधोद्रेकैरिवान्तनिःकृष्टैः ।
आकृष्टधनुर्मुक्तैरमोघलक्ष्यैः शरैश्चापि ॥१३५॥

गुरुभिर्विधूतभुक्तैः परिघैः परमर्ममर्दिभिश्चोग्रैः ।
प्रहताः प्राणवियोगं प्रापुर्वीराः परस्परतः ॥१३६॥

रिपुभिर्निशातकुन्तैस्तुरङ्गमारोहिभिर्घनं तुन्नाः ।
द्विपरोहिणो निपेतुर्गतासवो वाजिनश्चान्ये ॥१३७॥

नाराचवर्षवृष्ट्या मदप्रसेकविवासितकपोलाः ।
अचलव्रतमनुतस्थुर्भूयांसो वारणा व्यसवः ॥१३८॥

चक्रैर्निकृन्तचक्राः शत्रुशरापातनिहतयन्तृहयाः ।
परिघप्रघातभग्नाः रथाश्च नैके व्यशीर्यन्त ॥१३९॥

एवं प्रवर्तमाने महत्यृधे विशिखसंवृताऽकाशे ।
पतितेषु बहुषु युध्वा स्वकपुत्रयोद्धावनीन्द्रेषु ॥१४०॥

से लाल नेत्र कर इस प्रकार गर्जना करने लगे कि 'आवे, वह अपने विनाशको चाहनेवाला। हमलोग तो बहुत समयसे युद्धके लिए उत्कण्ठित ही हैं।' इस प्रकार उनसे विदा लेकर उस दूतने, अपने राजाके पास जाकर सब समाचार कह दिये। तब अपने दूतसे यह सब सुन मगधराज जरासन्ध बहुत क्रुद्ध हुआ और अनेक उत्पात होनेपर भी तैयारी कर भूकम्प पैदा करनेवाली सेनाके साथ कुरुक्षेत्रके मैदानमें आ गया ॥१३०-१३२॥ कृष्ण भी यादवोंकी समस्त सेनाओंसे धूलिको उड़ाते तथा अपने आगमनको बतलाते हुए, वहाँ शीघ्र ही आकर जम गये ॥१३३॥

तब यादवों और मगधराजकी सेनाएँ तैयारीके साथ गरुड-व्यूह और चक्रव्यूहकी रचना कर युद्ध क्षेत्रमें आ गईं और बाणों-की वर्षा करने लगीं ॥१३४॥ वहाँ क्रोधसे निकले हुए भीतरी पापके समान चमकती तलवारोंसे तथा धनुषको खींचकर छोड़े गये और अचूक निशानेवाले बाणोंसे, और फेंककर प्रयोग किये गये, दूसरोंके हृदयको नष्ट करनेवाले तीक्ष्ण बड़े-बड़े भालों (गुप्तियों) से, आपसमें लड़ते हुए वीर लोग मारे जाने लगे। घुड़सवार शत्रुओंने तीक्ष्ण भालोंसे मारकर हाथियोंके सवारोंको मार डाला तथा बहुतसे घुड़सवार भी प्राणहीन हो गिर गये ॥१३५-१३७॥ वहाँ बाणोंकी खूब वृष्टि होनेसे, मद जलको कपोलों-से बहाते हुए बहुतसे हाथी प्राणरहित हो निश्चल भावसे पड़े रहे ॥१३८॥ बहुतसे रथ गदाकी मारसे नष्ट हो गये थे, दूसरे रथोंके चक्रोंसे फँसकर उनके चक्र नष्ट हो गये। तथा शत्रुके बाणोंसे उनके सारथी एवं घोड़े मार डाले गये ॥१३९॥ इस प्रकार जब कि महायुद्ध चल रहा था, और बाणोंसे आकाश ढँक रहा था तथा युद्ध करके अपने पुत्र, योद्धा और राजा लोग मर रहे थे, तब अचूक अस्त्र चलानेवाला वह जरासन्ध मत्त हाथीके

मत्तेभमस्तकस्थो व्यर्थास्त्रोऽभ्येत्य विज्वलच्चक्रम् ।
व्यमुचद्विवृद्धमन्युर्मगधेन्द्रो माधवायैव ॥१४१॥
सह भगवतैव सहसा प्रदक्षिणीकृत्य केशवं तदपि ।
मागधपुण्यक्षयतो दक्षिणहस्ते च सन्तस्थे ॥१४२॥
चक्रेण तेन शत्रोः शिरोधरं च युधि चकर्त चक्रधरः ।
जनताऽनन्दनिनादैः सहास्य देह्य[1]त्पपातोर्ध्वम् ॥१४३॥
जातेऽथ कृष्णविजये यदवः सर्वे समेत्य चिक्रीडुः ।
आनन्दितास्तु यस्मिन्नानन्दपुरं बभूवाऽत्र ॥१४४॥
कृत्वाऽथ चक्रमहिमामाश्राम्य च मागधादिकान्देवान् ।
स्वपुरीं विवेश विष्णुर्विजित्य देशान्द्विचतुर[2]ब्दैः ॥१४५॥
पुनरर्द्धचक्रितायामभिषिक्तो देवमानवेन्द्रैः ।
षोडशसहस्रसङ्ख्याभिः सह देवीभिरभिरेमे ॥१४६॥
शार्ङ्गं धनुश्च दिव्यं सुदर्शनं चक्रमरिदुराधर्षम् ।
शक्तिश्चाऽमोघमुखी तथैव सौनन्दकं खड्गम् ॥१४७॥
शंखश्च पाञ्चजन्यो रिपुभयदा कौमुदीगदा चोग्रा ।
कौस्तुभमणिना रत्नान्यमूनि सप्ताभवञ्छौरेः ॥१४८॥
अपराजितहलमभूत्सगदं रत्नावतंसिका माला ।
मुसलं चामोघमुखं रत्नान्येतानि लाङ्गलिनः ॥१४९॥
सम्पन्नपूर्णविभवो विख्याततपराक्रमः परमलक्ष्मीः ।
अन्यैरलङ्घिताऽज्ञः परिपूर्णमनोरथोत्साहः ॥१५०॥
प्रणतैः प्रसेव्यमानः परिषदि रेमे जनार्दनः सततम् ।
षोडशसहस्रसङ्ख्यैर्नृपैस्तदर्धैश्च गणदेवैः ॥१५१॥

इत्यरिष्टनेमिचरिते पुराणसङ्ग्रहे आर्याबद्धे विष्णुविजयो नाम
तृतीयः सर्गः समाप्तः ॥३॥

---

१ देही = देहवान् = आत्मा इत्यर्थः । २ अष्टवर्षैरित्यर्थः

मस्तक पर बैठकर युद्धक्षेत्रमें आया और कृष्ण पर अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसके ऊपर जलते हुए चक्रको चला दिया ॥१४०-१४१॥ वह चक्र भी सहसा भगवान् नेमिनाथके साथ कृष्णकी प्रदक्षिणा कर जरासन्धके पुण्य क्षीण हो जानेसे, कृष्णके दाहिने हाथमें आकर ठहर गया ॥१४२॥ तब युद्धक्षेत्रमें ही चक्रधारी कृष्णने उस चक्रसे शत्रुकी गर्दन काट ली और उसके प्राण जनताकी आनन्द-ध्वनिके साथ-साथ ऊपर उड़ गये ॥१४३॥ कृष्णकी विजय होनेपर सभी यदु लोग मिलकर क्रीड़ा करने लगे और जहाँ उन लोगोंने आनन्द मनाया था, उस स्थानका नाम आनन्द-पुर हो गया ॥१४४॥

तदनन्तर कृष्णने चक्रकी पूजा की, और मागध आदि देवोंको वशमें कर तथा आठ वर्षों तक देशोंको जीत, तत्पश्चात् लौटकर अपने नगरमें प्रवेश किया ॥१४५॥ फिर देवेन्द्रों और नरेन्द्रोंने मिलकर उनका अर्धचक्रवर्ती पदपर अभिषेक किया। तत्पश्चात् वे सोलह हजार रानियोंके साथ सुखसे रहने लगे॥१४६॥ उनके पास दिव्य शार्ङ्ग नामका धनुष था, शत्रुओंको डरानेवाला सुदर्शन चक्र था, न चूकनेवाली शक्ति थी, सौनन्दक नामकी तलवार थी, एवं पाञ्चजन्य नामका शंख, शत्रुओंको भय देनेवाली कौमोदकी नामकी गदा तथा कौस्तुभ मणिको मिलाकर सात रत्न थे। बलरामके भी, अपराजित नामका हल, गदा, रत्नावतंसिका माला, तथा न चूकने-वाला मूसल, ये चार रत्न थे ॥१४७-१४९॥ वे कृष्ण सोलह हजार विनीत राजाओंसे तथा आठ हजार गणदेवोंसे सतत सेवित हो राज्य-सभाके बीच अच्छी तरह रहने लगे। वे पूर्ण वैभवसे सम्पन्न थे, उनका पराक्रम विख्यात था, उत्तम लक्ष्मी थी, सारे मनोरथ और उत्साह पूरे हो गये थे तथा उनकी आज्ञा सबको शिरोधार्य थी ॥१५०-१५१॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह के आर्याबद्ध अरिष्टनेमिचरितमें
विष्णुविजय नामक तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।

चतुर्थः सर्गः

भगवानापूर्णवयाः प्रपूर्णविम्बः शशीव संराजन् ।
सम्पूर्णमदावस्थः करीव वाऽनन्यतुल्यवपुः ॥१॥

अन्येद्युरलङ्कारैः स्फुरन्मयूखैर्विभूषितो दिव्यैः ।
व्यालोलतडिन्मालाविराजितो वारिवाह इव ॥२॥

अभिगम्य कुसुमचित्रां सम्भ्रान्तैश्चलितहारवक्षोभिः ।
प्रत्युत्थितः सलीलं बद्धाञ्जलिमौलिभिः सख्यैः ॥३॥

सिंहासने न्यषीदद्धरिणा सार्द्धं सभागृहं सहसा ।
सम्पूरयन् स्वभासा भासा विज्ञापयन् राज्ञाम् ॥४॥

तत्रेश्वरो मुहूर्त्तं मुमुदे शार्ङ्गायुधेन सङ्गूढः ।
स्थानपतितैर्विचित्रैः कथाविशेषैः सदस्यानाम् ॥५॥ पञ्चकम् ।

बलवतामेकगणनाप्रस्तावे तत्र केचिदवनीशाः ।
प्रशशंसुरुदितसत्त्वं पार्थमवन्ध्याश्रमस्त्रविदः ॥६॥

अपरे युधिष्ठिरं वै वृकोदरं केचिदुद्धवप्रभृतीन् ।
हलिनोऽलं बलवतां पुरःसरं केचिदस्तौषुः ॥७॥

अपरे तदोचुरेवं कोऽन्यो बलवान् सतीह गोविन्दे ।
कौमार एव योऽयं धृतवान् धरणीधरं तरसा ॥८॥

यं सर्वक्षितिपालाः स्ववीर्यविख्यापने ह्यसंदिग्धाः ।
स्थानान्मनागपि पुरा नालं ननु चलयितुं सबलाः ॥९॥

तस्मादवार्यवीर्यो क्षितिपो कोऽन्यो भवेदिह च भूमौ ।
नारायणान्नरपतेर्दिवीव देवेन्द्रसमभासः ॥१०॥ त्रिकम् ।

चतुर्थ सर्ग

भगवान् नेमिनाथ पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान पूर्ण युवावस्था-से तथा अनुपम शरीरसे शोभित हो रहे थे मानो पूर्णमदसे भरा हाथी ही हो। एक दिन वे भगवान् जैसे चञ्चल विद्युन्मालासे मेघ अच्छा लगता है उसी तरह कान्तियुक्त दिव्य अलंकारोंसे विभूषित हो कुसुमचित्रा नामकी सभामें आये। वहाँ चञ्चल हारसे युक्त वक्षःस्थलवाले सभी कुलीन मित्रोंने हाथ जोड़ मुकुट झुकाकर प्रसन्नतासे स्वागत किया ॥१-३॥ वे सहसा अपनी कान्ति से सभागृहको पूरित करते हुए तथा राजाओंको सूचित करते हुए कृष्णके साथ सिंहासनपर बैठ गये ॥४॥ वहाँ वे भगवान् कृष्णसे सटकर बैठ उस समय सभासदोंसे कही गई विचित्र प्रकारकी कथाओंको थोड़ी देर सुनकर प्रसन्न हुए ॥५॥

वहाँ जब बलवानोंमें कौन अद्वितीय है इस बातका प्रस्ताव आया तो कुछ शस्त्रज्ञ राजाओंने, उन्नत बलवाले तथा अचूक अस्त्र चलनेवाले अर्जुनकी प्रशंसा की ॥६॥ कुछ लोगोंने युधि-ष्ठिरकी, कुछने भीमकी तथा कुछने उद्धव आदिकी तथा कुछने बलरामको ही बलवानोंमें अग्रणी कहकर प्रशंसा की ॥७॥ तद्-नन्तर कुछने इस प्रकार कहा कि कृष्णके रहते हुए और कौन बलवान् है जिसने कुमारकालमें ही जल्दीसे पर्वत उठा लिया हो ॥८॥ इसके पहले वे सारे राजा जिन्हें अपने अपनी ताक़तपर पूरा भरोसा था, अपनी सेनासहित भी, उस पर्वतको स्थानसे जरा भी न हिला सके थे। इसलिए इन्द्रके समान कान्तिवाले, नारायण, कृष्णसे बढ़कर कौन महापराक्रमी राजा इस पृथिवीपर होगा ॥९-१०॥

अभिहितमथ च सभायां हलिना सलीलमेवं समुद्दिश्य ।
नेमिस्वाम्यधिकबलो न नाम भुवनत्रयेऽस्तीति ॥११॥

तच्छ्रुत्वा हरिरभणीद्भगवन्तं सस्मितं समभिवीक्ष्य ।
युष्मद्बलप्रवेकं द्रक्ष्यामोऽत्र मल्लयुद्धेन ॥१२॥ युग्मम् ।

सान्तर्हासं भगवानवोचदम्भोदनादधीरगिरा ।
विष्णुं विलोक्य विजयी सलीलमीषत्प्रचलिताभ्रूः ॥१३॥

एतावतैव भवतो विभोत्स्यते बाहुवीर्यभूय[1]स्त्वम् ।
युद्धेन किम्ममेदं पादाङ्गुष्ठं प्रचालयेति ॥१४॥

सामर्षमतः शार्ङ्गी स्वसर्वशक्त्याऽपि भगवतोऽङ्गुष्ठम् ।
न शशाक तदोद्धर्तुं ततश्च बिभयाम्बभूव विभोः ॥१५॥

तस्मिन् क्षणे सुरेन्द्रः समेत्य पादार्चनं प्रवृत्येशः ।
क्षितिपेन्द्रमाप्रहृत्य च जगाम नाकं सपरिवारः ॥१६॥

पुनरन्यदा जिनेन्द्रो वसन्तमासे सुरम्यमुद्यानम् ।
विज्ञापितः प्रियाभिः शौरेः कौतूहलादगमत् ॥१७॥

प्रविकसितचूतसुरभिः प्रवाहितान्वियमागतेन च शनैः ।
उद्यानविलोललतानृत्याचार्येण दक्षिणतः ॥१८॥

किसलयविभेदशीकरशिशिरेण मनःशरीररम्येण ।
तस्मिन् ददृशे भगवान् स्मराग्निविध्मायिना मरुता ॥१९॥युग्मम् ।

देव्यः काश्चन नाथं फुल्लकुसुमावलीनरवितभृङ्गैः ।
सालतमालविटपकैः बालव्यजनैरिव विविज्युः ॥२०॥

चक्रेऽवतंसरचनां सुष्ठुराम्रमञ्जरीविडम्बिन्या ।
अपराऽरुणमञ्जर्या अशोकतरोः शोकहीनस्य ॥२१॥

---

१ प्राचुर्यमित्यर्थः

तब बलरामने सभामें हँसकर यों ही कह दिया कि नेमि-भगवान्‌से अधिक बलवान् इस संसारमें और कोई नहीं है ॥११॥ यह सुनकर कृष्णने हँसकर भगवान्‌की ओर देखा और कहा कि हमलोग आपकी ताकत मल्लयुद्धमें देखना चाहते हैं ॥१२॥ तब वे विजयी भगवान् मनमें हँसते हुए मेघगर्जनके समान गंभीर वाणीसे पृथिवीको थोड़ा कँपाते हुए, विनोदपूर्वक कृष्णको देख बोले कि—॥१३॥ मल्लयुद्ध करनेसे क्या! आपके बाहुबलका पराक्रम इतनेसे ही मालूम हो जायगा कि आप मेरे इस पैरके अंगूठेको ही थोड़ा चलाइये। इसपर कृष्ण क्रुद्ध हो गये और अपनी सारी शक्तिसे भी अंगूठेको यहाँ-वहाँ न चला सके। तद्-नन्तर कृष्णको भगवान्‌से कुछ डर हो गया ॥१४-१५॥ तब उसी समय इन्द्रने आकर भगवान्‌के चरणोंकी पूजा की और राजाओं-को डांटकर देवों सहित स्वर्ग चला गया ॥१६॥

फिर एक समय वसन्तके महीनेमें वे भगवान् कृष्णकी रानियोंकी प्रेरणासे कुतूहलवश एक सुन्दर बगीचेमें गये ॥१७॥ भगवान्‌ने उस बगीचेमें देखा कि दक्षिण दिशासे धीरे-धीरे आने-वाले, कलियोंको विकसित करनेवाले एवं जलकणोंसे शीतल तथा मन और शरीरको अच्छे लगनेवाले तथा कामाग्निको प्रज्व-लित करनेवाले नृत्याचार्य वायुने विकसित आम्रकी मौरोंकी सुगन्धि फैला रखी है और उद्यानकी लताओंको चंचल कर दिया है ॥१८-१९॥ वहाँ कुछ रानियाँ चमरके बीजनेके समान ही साल और तमाल वृक्षोंकी डालियोंसे—जिनमें फूले हुए फूलोंपर ध्वनि करते हुए भौंरे बैठे हैं—भगवान्‌को हवा करने लगीं ॥२०॥ किसी रानीने आमकी मौरोंको मिलाकर अशोकवृक्षके लाल फूलोंके गुच्छेसे उन प्रसन्नचित्त (शोकहीन) भगवान्‌के कर्णभूषणकी रचना अच्छी तरह कर दी ॥२१॥ किसी रानीने भगवान्‌के सिर-

चिक्षेप कर्णिकारस्तबकं नवमल्लिकाकुसुमविद्धम् ।
मौलिमिव शिरसि काचिन्मुक्ताफलशोभितं भर्त्तुः ॥२२॥

काचिच्चकार कुरबककुसुमान्यात्मवरपाणिमुक्तानि ।
भगवच्छिरोरुहालिप्रतिगृह्याऽत्यन्तसुभगानि ॥२३॥

गुणवन्त्यमूनि भर्त्तुः स्थानभ्रष्टान्यपीति सुजना इव ।
काचिदतिमुक्तकुसुमान्युपनीयापयन्नाथम् ॥२४॥

एवं वसन्तनृपतिः स्वयमिव साक्षात्स्वदृष्टिसञ्चारः ।
पश्यन्नुपवनशोभां दामोदरवामवनिताभिः ॥२५॥

प्रविवृत्य वनोद्देशं तिलाखिलां विलोक्य पुष्करिणीम् ।
तत्रेश्वरोऽतिरम्यां चिक्रीडिषुभिर्व्यगाहिष्ट ॥२६॥ युग्मम् ।

नानाक्रीडनयन्त्रैः करिमकराश्वादिरुचिररूपधरैः ।
सोपान्तखचितभास्वन्मणिप्ररोहोत्थसुरपाङ्कैः ॥२७॥

व्यूढाभिविविधरूपप्रणालिकोद्वान्तसलिलधाराभिः ।
अन्योऽन्यमपाघ्नत्यो देव्योऽदीव्यंस्ततो बहुशः ॥२८॥ युग्मम् ॥

जलदेवनावसाने जिनेन साज्ञापिता कटाक्षेण ।
निवसिततन्त्रकवसनेनाद्रांम्बरपीलनायात्र ॥२९॥

जाम्बवती च बभाषे तमेवमाकुञ्चितभ्रु वीक्ष्येशम् ।
कृत्रिमकोपज्वलिता लीलापाङ्गेन सविलासम् ॥३०॥

यो भोगिभोगरत्नप्रभापरिष्वक्तमौलिमणितेजाः ।
अपरेण दुरारोहां शय्यामारुह्य हरिवाहाम् ॥३१॥

पूरयति पाञ्चजन्यं सकलजगद्व्यापि मन्द्रनिर्घोषम् ।
आकृषति दिव्यचापं शार्ङ्गमशेषाऽवनिनाथः ॥३२॥

---

१ माधवीलता इत्यर्थः । २ इन्द्रधनुर्भिः । ३ नूतनवस्त्रेण इत्यर्थः ।

पर, मोतियोंसे शोभित मुकुटके समान ही, नवीन मल्लिकाके फूलसे युक्त कनेरके गुच्छेको रख दिया ॥२२॥ किसीने अत्यन्त सुन्दर कुरबकके फूलोंको लेकर एवं अपने सुन्दर हाथोंसे रखकर भगवान्के बालोंकी शोभा कर दी ॥२३॥ जैसे अपने स्वामीसे त्यक्त गुणवान् व्यक्तियोंको सज्जन लोग आश्रय देते हैं उसी तरह अपने स्वामी—माधवीलतासे—स्थानभ्रष्ट मोंगरा (माधवी) के सुन्दर फूलोंको धागेमें पिरोकर तथा भगवान्को भेंट कर कोई रानी लजाने लगी ॥२४॥ इस प्रकार कृष्णकी रानियोंके साथ उपवनकी शोभाको देखते हुए, वे भगवान् ऐसे मालूम पड़ते थे मानो स्वयं वसन्त राजा साक्षात् अपनी दृष्टि फैला रहा हो। तदनन्तर उस उद्यानमें विहार कर भगवान् नेमिनाथने वहाँ तिलाखिला नामकी एक सुन्दर बावड़ी देखी और क्रीड़ा करनेकी इच्छुक रानियोंके साथ उसमें प्रवेश किथा ॥२५-२६॥ वहाँ वे रानियाँ, हाथी, मगर, घोड़े आदि मनोहर रूपधारी नाना प्रकारके क्रीड़ा-यन्त्रोंसे, तथा किनारेमें लगे हुए चमकते हुए विविध मणियोंकी किरणोंसे उत्पन्न (कल्पित) इन्द्रधनुषसे विभक्त अतएव नाना रंगकी नालियोंसे निकलती हुई जलधारासे आपसमें ताड़ित करती हुई, अनेक प्रकारसे खेलने लगीं ॥२७-२८॥

जलक्रीड़ाके बाद भगवान् नेमिनाथने नये कपड़े पहनकर अपने गीले कपड़े निचोड़नेके लिए आखोंके इशारेसे कृष्णकी रानी जाम्बवतीसे कहा। तब बनावटी क्रोधसे लाल हो वह रानी, चंचल कटाक्षोंसे भगवान्को देखकर टेढ़ी भौंह कर हाव-भावके साथ बोली—कि मैंने उस राजा कृष्णकी भी धोती इस प्रकार कभी नहीं धोई तब क्या आप जैसोंकी धोतीको निचोड़ूँगी। वह कृष्ण सम्पूर्ण पृथिवीका राजा है तथा सर्पमणिकी कान्तिसे व्याप्त मुकुटके मणियोंसे तेजस्वी है। उसने दुःसाध्य सिंहवाहिनी

तस्यापि नाहमखिलत्रिलोकविख्यातविमलसत्कीर्तेः ।
शौरेः कदाचिदपि वा निवसनमीदृक्षमास्पृक्षम् ॥३३॥

अद्य किल नाम भवतः कस्यापि निपीलयामि जलसारिम् ।
इति तच्छ्रुत्वा देव्यो मामैवं नाथमित्यूचुः ॥३४॥

एतावदेव भर्त्तुर्ननु माहात्म्यं तवेति नाथोऽपि ।
विनिवृत्य राजभवनं विशेषसामर्षशीघ्रगतिः ॥३५॥

आरुह्य भोगिशय्यामारोपयदत्र वैष्णवं चापम् ।
दध्मे च महाशंखं प्रक्षुभिताम्भोनिधिध्वानम् ॥३६॥

स्तम्भान्वभञ्जुरुच्चैर्मतङ्गजास्तद्रवेण चोद्दृप्ताः ।
सञ्चेलुः सौधानां तदा समुत्तुङ्गशृङ्गाणि ॥३७॥

सम्भ्रान्तजनसमूहाः किमित्यसम्भावितोग्रघूर्णरवा ।
क्षुभिता बभूव नगरी लोकप्रलये जनितशङ्का ॥३८॥

विष्णोः सभा च सहसा संचुक्षुभे कुसुमचित्रास्तिमिता ।
केनापि मन्यमाना जलनिधिवेलावलयभङ्गम् ॥३९॥

आज्ञाय पाञ्चजन्यध्वनिं तदाऽभ्येत्य केशवः शीघ्रम् ।
दृष्ट्वा भुजङ्गशय्यां विसिष्मे तमलं प्रकुर्वाणम् ॥४०॥

उपलभ्य वृष्णिधीराः कृच्छ्राच्छान्तं युधेन निर्वर्त्यम् ।
तदमानुषं प्रहृष्टा ह्यवज्ञया कर्मकृतमीशा ॥४१॥

देवी प्रचोदनादिदमकरोद्भर्तेति विदितसम्बन्धाः ।
सर्वेऽपि मन्त्रयित्वा चक्रायुधकं तदा सम्यक् ॥४२॥

वरपरिणयाय भर्त्तुः प्रयेतिरे तनययोग्रसेनस्य ।
बध्वा तु राजिमत्या त्रैलोक्याऽनन्यसुन्दर्या ॥४३॥

शय्यापर चढ़कर ऐसा पाञ्चजन्य शंख बजाया, जिसकी गम्भीर-ध्वनि सकल संसारमें व्याप्त हो गई, तथा शार्ङ्ग नामके दिव्य-धनुषको जिसने चढ़ाया है एवं उसकी कीर्ति सम्पूर्ण लोकमें फैल रही है। उसके इन वचनोंको सुनकर दूसरी रानियोंने उससे कहा कि इस प्रकारकी बात भगवान्से मत कहो ॥२९-३४॥

तब भगवान्ने यह कहा कि अच्छा तुम्हारे पतिकी इतनी भर ही बड़ाई है। और विशेष क्रोधके साथ शीघ्रतासे अपने महलमें लौट आये ॥३५॥ और उन्होंने नागशय्यापर चढ़कर कृष्णके धनुषको चढ़ा दिया, तथा क्षुभित समुद्रकी गर्जनाके समान महाशंख बजाया। उस शंखकी ध्वनिसे चौंके हुए हाथियोंने महलके बड़े-बड़े खम्भे तोड़ दिये तथा अनेकों भवनोंके ऊँचे-ऊँचे शिखर हिलने लगे। नगरवासी जन चौंककर 'यह क्या? यह क्या?' इस तरह खूब चिल्लाते हुए भागने लगे और समस्त नगरी लोक-प्रलयकी आशंकासे घबड़ा गई ॥३६-३८॥ कृष्णकी सभा कुसुम-चित्रा भी एकदम चौंककर घबड़ा गई और यह मानने लगी कि किसीने समुद्रके बाँधको ही तोड़ दिया है ॥३९॥

तब कृष्णने पाञ्चजन्य शंखकी ध्वनिको पहचाना और वहाँ शीघ्र आकर भगवान्को नागशय्यापर सुशोभित होते देख बड़ा आश्चर्य किया। तब यादवोंने यह जानकर कि युद्धसे निबटने लायक, पर किसी तरह शान्त हुए, इस अमानुषीय कर्मको भग-वान्ने तिरस्कार-बुद्धिसे किया है, बड़ी प्रसन्नता प्रकट की ॥४०-४१॥ उन लोगोंने मालूम किया कि जाम्बवतीकी प्रेरणासे ही भगवान्ने ऐसा किया है और कृष्णकी सलाहसे भगवान्का विवाह राजा उग्रसेनकी तीन लोकमें अतिसुन्दरी पुत्री राजिमतीके साथ करनेके लिए प्रयत्न करने लगे ॥४२-४३॥

एक दिन वे अनुपम भगवान् कुबेरके द्वारा लाये गये आभू-

अपरेद्युरुदितकेतुः प्रवल्गदुच्चैस्तुरङ्गसंयुक्तम् ।
स्थानरचितानि भास्वन्मणिप्रभोद्द्योतितवपुष्कम् ॥४४॥

आदित्यरथप्रतिमं रथमप्रतिमो जिनः समारुह्य ।
यक्षपतिनोपनीतैर्विभूषितो भूषणैः सुतराम् ॥४५॥

निर्गत्य सानुयात्रं राजन्यैरनुगतो रुचिरवेषैः ।
नगरवधूजननेत्रभ्रमरावलिपीयमानवपुः ॥४६॥ त्रिकम् ।

दृष्ट्वा मृगान्निरुद्धांस्त्रासावेशप्रकम्पितशरीरान् ।
प्रोद्विग्नदीननयनान्नानाजातीयकानीशः ॥४७॥

त्रिज्ञानधरो ज्ञात्वा कारणमुत्पन्नधर्मसम्बोधिः ।
हलधरचक्रधरादीन् प्रकाशनार्थं स्वजनवर्गान् ॥४८॥

समपृच्छदानृशंस्यात्स्यन्दनमास्थाप्य मधुरनिर्घोषम् ।
केन न्वमी अनाथाः वन्याः परिरोधिताः किमिति ॥४९॥ त्रिकम् ।

विनयाद्विनम्रवदनः सारथिरगदीद्भवद्विवाहार्थम् ।
आनीता भर्त्तुरिमे शासनतो च वासुदेवस्य ॥५०॥

श्रुतसूतोक्तिरीशः प्रादुरभूत्सर्वभोगनिर्वेदः ।
विषयाणां चिन्तयतस्तदैव परिपाककाटुक्यम् ॥५१॥

प्रोचे च कुमुदगौरैस्तत्समयाऽभ्यागतैः कृताञ्जलिभिः ।
लोकान्तिकैस्त्रिलोकेट् प्रणयेश्वर धर्मतीर्थमिति ॥५२॥

एवं मृगाऽवलोकादागतनिर्वेदधीर्विवेश पुरम् ।
परिदूयते हि हृदयं परदुःखसमीक्षणेन सताम् ॥५३॥
तत्समये देवेन्द्राः स्वासनसंस्पन्दनात्परिज्ञाय ।
आगम्य विविधवाहा दिदीक्षिषामीश्वरस्याशु ॥५४॥

संस्नाप्य पयोऽम्बुनिधेरम्भोभिर्दिव्यमाल्यपरिधानैः ।
वरभूषणैश्च रुचिरैर्भगवन्तं भूषयामासुः ॥५५॥

षणोंको पहिन हिनहिनाते हुए ऊँचे घोड़ोंसे युक्त तथा स्थान-स्थानपर लगाये गये चमकीले मणियोंकी प्रभासे जगमग होते हुए सूर्यरथके समान रथमें चढ़कर तथा सुन्दर वेशधारी राजकुमारोंके साथ व अपने परिचारक गणोंको ले बाहर निकले। उनके शरीरकी शोभा देख नगरकी नारियोंके नेत्र प्रसन्न हो रहे थे ॥४४–४६॥

रास्तेमें उनने भयके आवेशसे कम्पते हुए, घबड़ाहटसे कातर दृष्टिवाले, अनेक जातिके मृग-पशुओंको देखा ॥४७॥ और त्रिज्ञान-धारी उन भगवान्‌को स्वयं ही उस सबका कारण मालूम होनेसे वैराग्य हो गया। फिर इस बातको बलराम, कृष्ण आदि अपने बन्धुवर्गमें प्रकट करनेके लिए, अपने गंभीर ध्वनि वाले रथको रोककर पूछने लगे कि किसने निर्दय भावसे इस अनाथ जंगली पशुओंको रोक रखा और किस लिए रोका है। ॥४८–४९॥ तब विनम्रतासे विनीत वचन बोलने वाले सारथिने कहा कि आपके विवाहके लिए ही कृष्णकी आज्ञासे ये पशु यहाँ लाये गये हैं ॥५०॥

सारथिके इन वचनोंको सुनकर भगवान् नेमिनाथको उसी समय इन्द्रिय-विषयोंके कटु फलको सोचते हुए समस्त भोगोंसे वैराग्य हो गया ॥५१॥ उसी समय कुमुदके समान श्वेत वर्ण वाले लौकान्तिक देव भगवान्‌के पास हाथ जोड़कर आये और उन्होंने प्रार्थना की कि हे त्रिलोकेश भगवन्, आप धर्मतीर्थका प्रवर्तन कीजिये ॥५२॥ उस प्रकार मृग-पशुओंको देख, विरक्त-चित्त हो भगवान् नगरमें आये। सच है कि सज्जनोंका हृदय दूसरोंके दुख देखनेसे दुखी होता है ॥५३॥

उस समय देवेन्द्रोंने अपने आसन कम्पन होनेसे भगवान्‌की दीक्षा लेनेकी इच्छा जानी और नाना प्रकारकी सवारियोंमें चढ़कर शीघ्र ही वहाँ आये ॥५४॥ और उन्होंने क्षीरसागरसे जल लाकर भगवान्‌का अभिषेक करा, उन्हें दिव्य माला, वस्त्र, मनोहर

आपृष्टसकलबन्धुं पुनरिन्द्राः भुवनबन्धुमानिन्युः ।
ऊर्ध्वोर्जयन्तमचिरादुत्तरकुर्वाख्यशिविकास्थम् ॥५६॥

पञ्चग्राहं भगवान् लुञ्चित्वा तत्र मूर्धजान् रुचिरान् ।
राजसहस्रेण समं जगृहे दैगम्बरीं दीक्षाम् ॥५७॥

रत्नमयपटलिकायां प्रतिगृह्य शिरोरुहाँस्तदेशस्य ।
निदधाति स्म बिडोजाः क्षीराम्भोधौ सुरभिगन्धीन् ॥५८॥

ज्ञानचतुष्टययुक्तो विमुक्तबाह्यान्तरोभयग्रन्थः ।
पश्यन्मनांसि जगृहे सम्पूर्णो निर्धन इवेन्दुः ॥५९॥

श्रावणशुक्लचतुर्थ्यां पूर्वाह्णे षष्ठभक्तनियमेन ।
सम्यग्गृहीतदीक्षं प्रपूज्य देवाः प्रभुं प्रययुः ॥६०॥

भर्त्रे प्रदाय भक्त्या वरदत्तः पारणां तु परमान्नम्[1] ।
प्रापद्वसुधाराद्यां सुरपूजां द्वारकापुर्याम् ॥६१॥

सप्ताऽष्टकेषु तपसा महता रात्रिन्दिवेषु यातेषु ।
आश्वयुजशितप्रतिपदि पूर्वाह्णे षष्ठभक्तेन ॥६२॥

क्षपकश्रेण्यारूढो निराकुलं शुक्लमीश्वरो ध्यायन् ।
दुरितारिमरणकरणैरपूर्वकरणादियोगास्त्रैः ॥६३॥

विनिहत्य मोहमखिलं ज्ञानदृगावरणविघ्नकरणं तु ।
लोकालोकविभासनमलब्ध वरकेवलज्ञानम् ॥६४॥

इन्द्रास्तदेत्य सर्वे स्वसर्वसेनाभिरादृताश्चक्रुः ।
भगवत्क्रमारविन्दस्पर्शपवित्राणि मुकुटानि ॥६५॥

छत्रत्रयस्मरद्वयसिंहासनकुसुमवर्षतूर्याणि ।
दिव्यरवोऽशोकतरुद्युतिवलय इतीश ऋद्धिरभूत् ॥६६॥

---

१. क्षीरान्नमित्यर्थः

आभूषण पहनाये ॥५५॥ फिर उन जगद्बन्धु भगवान्‌को–जिनने कि अपने समस्त परिवारसे दीक्षा लेनेकी आज्ञा ले ली थी–उत्तर-कुरु नामकी पालकीपर बैठाकर शीघ्र ही गिरनार पर्वतपर ले आये ॥५६॥ वहाँपर भगवान्‌ने पञ्चमुष्टिसे अपने केश लोंच कर हज़ार राजाओंके साथ दिगम्बरी दीक्षा ले ली ॥५७॥ तब इन्द्रने रत्नोंकी पिटारीमें भगवान्‌के सुगन्धित बालोंको रखकर क्षीरसागर-में क्षेप दिया ॥५८॥ चार ज्ञानसे संयुक्त तथा बाह्य और अन्तरङ्ग इन दोनों परिग्रहोंसे रहित वे भगवान् , मेघरहित सम्पूर्ण चन्द्रमाके समान सभी लोगोंका मन आकर्षित कर रहे थे ॥५९॥ श्रावण शुक्ल चतुर्थीके दिन पूर्वाह्णके समय भगवान्‌ने षष्ठोपवास कर दीक्षा ले ली। देवगण भी उनकी पूजा कर अपने-अपने स्थानको चले गये ॥६०॥

द्वारिकापुरीमें भगवान्‌को वरदत्त सेठने भक्तिवश पारणामें क्षीरान्न (खीर) दिया जिससे उसके घरमें देवोंने सम्मान स्वरूप धनवृष्टि आदि पञ्चाश्चर्य किये ॥६१॥ तदनन्तर दिन-रात महान् तप करते हुए ५६ दिन बीत जानेपर वे भगवान् आश्विन शुक्ल प्रतिपदाके दिन दोपहरके समय षष्ठोपवास करनेके बाद क्षपक श्रेणीमें आरूढ हुए और आकुलता रहित हो उन्होंने शुक्ल-ध्यान का चिन्तवन किया तथा पापोंको नष्ट करने वाले अपूर्व करण आदि योगास्त्रोंसे सम्पूर्ण मोहनीय, ज्ञानावरणीय, दर्शना-वरणीय, अन्तराय कर्मोंको नाशकर लोक अलोक प्रकाशन करने-वाला श्रेष्ठ केवलज्ञान प्राप्त किया ॥६२–६४॥

तब सभी इन्द्रोंने अपनी समस्त सेनाके साथ आकर भगवान्‌-की पूजा की और उनके चरण-कमलोंके स्पर्शसे अपने मुकुटोंको पवित्र किया ॥६५॥ उस समय भगवान्‌के तीन छत्र, दो चामर, एक सिंहासन, पुष्पवृष्टि, दुन्दुभि, दिव्य ध्वनि, अशोकतरु और

विष्णुरपि वीतशत्रुं हस्ते कृततीर्थनाथलक्ष्मीकम् ।
प्रणिपत्य देवराजैः [1]सत्रा तत्पारिषद्योऽभूत् ॥६७॥
तस्मै त्रिलोकसदसे निर्वाणपथैकचारुनिश्रेणीम् ।
भगवांस्तदा बभाषे स सर्वसाधारणीं वाणीम् ॥६८॥
गणिनो बभूवुरेकादश वरदत्तादयो जिनेशस्य ।
संयमिनोऽपि च बहवो गृहधर्मरताश्रयाश्चासन् ॥६९॥
सार्द्धं बभूव भक्त्या षट्कसहस्रेण राजपुत्रीणाम् ।
राजीमतिः प्रव्रजिता जातार्यिकाऽग्रेसरी गणिनी ॥७०॥
सम्पच्चतुर्विकल्पाऽप्यभवत्प्रथमासने त्रिलोकगुरोः ।
भव्यान् बुबोधयिषया व्यजिहीर्षदथेश्वरो देशान् ॥७१॥
चक्रं पुरः प्रतस्थे द्वितय इव भास्करः सुधर्ममयम् ।
इन्द्रध्वजश्च सूच्चैरिन्द्रालयरोहिरुचिराग्रः ॥७२॥
छत्रत्रयं च शुशुभे स्वयं धृतं व्योम्नि भुवननाथस्य ।
दध्राते च तदानीं सुचामरे दिक्स्त्रियावभितः ॥७३॥
हेमारविन्दमूर्धसु पदविन्यासं गजेन्द्रगतिलीलः ।
कुर्वन्स्वपादविनतान् बहूंश्च निस्तारयन्व्यहरत् ॥७४॥
विनिवृत्याऽन्यतरेद्युः सुरासुरेन्द्रर्षिसर्वसमुदायैः ।
रैवतकाद्रावस्थात्प्रसेव्यमानो जिनो मुदितैः ॥७५॥
श्रुत्वा च जिनागमनं कृष्णः सकलसुतबन्धुजनसहितः ।
अभिगम्य समवशरणे न्यविक्षत भगवन्तमभिनम्य ॥७६॥

इत्यरिष्टनेमिनाथचरिते पुराणसंग्रहे आर्याबद्धे केवलज्ञानोत्पत्तिर्नाम चतुर्थः सर्गः समाप्तः ।

---

१ साकम्, सह इत्यर्थः ।

भामण्डल ये आठ प्रातिहार्य प्रकट हुए थे ॥६६॥ कृष्ण भी, शत्रु-रहित एवं तीर्थंकर विभूतिको प्राप्त उन भगवान्‌को नमस्कार कर इन्द्रके साथ ही समवशरणका सदस्य हो गया अर्थात् वहाँ बैठ गया ॥६७॥ भगवान्‌ने उस तीन लोककी सभाके लिए-मोक्षमार्ग-की एक सुन्दर सीढ़ीके समान-सबको समझमें आने वाली वाणीसे उपदेश दिया ॥६८॥ उनके वरदत्त आदि ११ गणधर थे तथा बहुत-से मुनि और श्रावक थे ॥६९॥ राजीमतीने भी भक्तिपूर्वक छह हजार राजकन्याओंके साथ दीक्षा ले ली और आर्यिकाओंकी प्रमुख गणिनी हो गई ॥७०॥ त्रिलोकगुरु भगवान्‌को प्रथम ही चार प्रकारकी सम्पत्ति अर्थात् अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख एवं अनन्त वीर्य प्रकट हो गये थे फिर उनने भव्य प्राणियोंको उपदेश देनेकी इच्छासे नाना देशोंमें विहार किया ॥७१॥

उनके आगे आगे, दूसरे सूर्यके समान प्रकाशमान धर्मचक्र चल रहा था। ऊँची एक इन्द्रध्वजा भी थी जिसका मनोहर ऊपरी हिस्सा गगनको छू रहा था। भगवान्‌के ऊपर आकाशमें अपने आप लटकतेके समान छत्रत्रय शोभित हो रहा था। तथा दो दिग्वधुओंने उनके दोनों ओर दो चामर धारण कर लिये थे ॥७२-७३॥ गजेन्द्रके समान गतिवाले वे भगवान् सुवर्ण-कमलोंपर पैर रखते हुए चल रहे थे तथा अपने चरणोंमें नत अनेक पुरुषोंको संसारसे तारते हुए विहार करने लगे ॥७४॥ फिर एक समय लौट कर देवेन्द्र असुरेन्द्र और ऋषि-समुदायोंसे सेव्यमान वे भगवान् गिरनार पर्वतपर ठहरे ॥७५॥ भगवान्‌के आगमन को सुन कर कृष्ण अपने सकल बन्धु-बान्धवोंके साथ समवशरणमें आये और भगवान्‌को नमस्कार कर बैठ गये ॥७६॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रह के आर्या बद्ध अरिष्टनेमिनाथ चरितका केवलज्ञानोत्पति नामका चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ।

———

पञ्चमः सर्गः

अथ देवकी जिनेन्द्रं प्रपच्छ भर्तरद्य मया त्रिरघहम् ।
मुनियुग्मं प्रविष्टं संयमिसङ्घाटकं दृष्टम् ॥१॥

बहुकृत्वो यतयः किं श्राणार्थै[१] मम गृहाणि निविशन्ते ।
वो वाति सरूपतया त इवादृक्षत मया त्रिरपि ॥२॥

स्नेहश्च तेषु मेऽभूत्किं भगवन्नस्ति पूर्वजन्मसम्बन्धः ।
अस्तीति सूरिरवदन्ननु तनयास्ते षडप्येते ॥३॥

भद्रिलपुरे प्रवृद्धा गृहीतदीक्षाः सहैव मत्तस्ते ।
अन्तेऽपि च मोक्ष्यन्ते दीक्षित्वाऽच्युतमाप्स्यसि त्वमपि ॥४॥

तदनन्तरं गणेशो विचोदितः सत्यभामया प्रोचे ।
तस्याः पुराणजन्मान्येवं विनयावनतगात्र्याः ॥५॥

अत्रैव भद्रिलपुरे मरीचिनाम्नो द्विजस्य कपिलायाम् ।
मुण्डशालायनोऽभूत्पुत्रो विख्यातकाव्यचणः ॥६॥

कमलश्रीरमणोऽस्मिन् मेघरथः सत्यकं नृपोऽमात्यम् ।
सन्देहिकयाऽप्राक्षीत्परजन्म किमस्ति नास्तीति ॥७॥

तेनाऽभ्यधायि विद्वान् विप्रो मुण्डकशालायनोऽस्तीह ।
विस्तीर्णशास्त्रचक्षुस्तमेव चाहूय पृच्छामः ॥८॥

राज्ञा तदेति विप्रः प्रत्याहूतो दिदेश कुदानानि ।
लोभातिकामयुक्त्या परलोकसुखप्रदानीति ॥९॥

---

१. यवाग्वर्थमित्यर्थः ।

पञ्चम सर्ग

अथानन्तर उस सभामें देवकीने जिनेन्द्र भगवान्‌से पूछा कि हे स्वामिन् ! आज मैंने संघमें चलने वाले, पापनाशकारी मुनियोंके जोड़ेको तीन बार घरमें आया हुआ देखा है। क्या मेरे घरमें लपसी (आहार)के लिए वे ही मुनि बहुत बार आ सकते हैं या नहीं ? अथवा मैंने हो उन मुनियोंको समान रूप होनेसे, तीनों बार एक सा ही समझ लिया है। उनमें मेरा पुत्र-जैसा स्नेह हो रहा है, तो क्या भगवन् ! उनसे मेरा कोई पूर्वजन्मका सम्बन्ध है ? तब गणधरने उत्तर दिया कि हाँ ये छहों मुनि तेरे ही पुत्र हैं ॥१-३॥ भद्रिलपुरमें उनका लालन-पोषण हुआ है और उन सबने एक साथ ही मुझसे दीक्षा ले ली है अन्त में वे सभी मोक्ष जावेंगे। और तुम भी दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग जाओगी ॥४॥

तदनन्तर सत्यभामाने गणधरसे अपने पूर्वभव पूछे और उनने भी उस विनयावनत रानीके पूर्वभव इस प्रकार कहे ॥५॥ इसी भारतवर्षके भद्रिलपुर नगरमें मरीचि नामके ब्राह्मणको उसकी कपिला नामकी पत्नीसे मुण्डशालायन नामका पुत्र हुआ, जो कि काव्यशास्त्रका विख्यात पण्डित था। वहाँका राजा मेघरथ था तथा उसकी रानी कमलश्री थी। एक बार उस राजाने मनमें सन्देह होनेसे अपने मंत्री सत्यकसे पूछा कि परलोक है कि नहीं ? तब उसने उत्तर दिया कि हमारे शहरमें मुण्डशालायन नामका एक विद्वान् रहता है वह अनेक शास्त्रोंको जाननेवाला है, अच्छा हो हम उसे ही बुलाकर पूछें। तब राजाने उसे बुलाकर पूछा पर उस लोभी ब्राह्मणने कुदानों— गौ, भू, कन्या—को ही परलोकमें सुख देने

प्रेतसुखकाङ्क्षयाऽसौ श्रद्धाय नृपोऽददाद् द्विजगणाय ।
गोभूहिरण्यकन्यास्तद्दीक्षया सर्वलोकोऽपि ॥१०॥

प्रज्ञाप्य नवमतीर्थे व्युच्छिदे लुब्धबुद्धिरन्यायम् ।
तत्पापफलोत्कर्षात्सप्तमनरके द्विजो जज्ञे ॥११॥

पर्य्यायिनरकतिर्यग्गतिष्वसावन्ततो मनुष्यभवे ।
गन्धवत्याश्च तीरे महागिरौ गन्धमादनके ॥१२॥

म्लेच्छः पर्वतकोऽभूद्वल्लरीवल्लभोऽन्यदा तस्मिन् ।
श्रीधरधर्मौ यातौ प्रतिलभ्य सचारणावचले ॥१३॥

ताभ्यां निशम्य जगृहे प्रोषधनियमं स तेन मृत्वान्ते ।
विद्याधरक्षितिधरे महाबलस्यालकापुर्याम् ॥१४॥

ज्योतिर्मालागर्भे शतबलिनोऽभून्नभश्चरो भ्राता ।
हरिवाहनः कनीयान्नृपतिश्च कदाचिदात्मसुतौ ॥१५॥

राज्ये नियुज्य धर्मं श्रुत्वा श्रीधरमुनेश्चरणमूले ।
निर्बन्धात्प्राव्राजीत्परमगतिं चापि पुनरापत् ॥१६॥ युग्मम् ।

हरिवाहनोऽपि पश्चाद् भ्रात्रा विद्रावितो विरोधवता ।
भगलीदेशजशैले स्थितः सनाम्न्यम्बुदावर्त्ते ॥१७॥

भूत्वाऽम्बरचारणयोः श्रीवर्माऽनन्तवीर्ययोः शिष्यः ।
आराध्य चामरोऽभूदीशानेऽन्ते ततो मुक्त्वा ॥१८॥ युग्मम् ।

इह चैव राजताद्रौ रथनूपुरचक्रवालनगरेऽभूत् ।
नृपतिः सुकेतुनाम्ना स्वयम्प्रभा तस्य खलु कान्ता ॥१९॥

जाताऽसि तयोस्तनया सम्भिन्ननिमित्तवादिनिर्देशात् ।
आनीय विष्णवे त्वं दत्ता मथुरां परमभूत्या ॥२०॥

वाला बतलाया। उसपर उस राजाने परलोक में सुखकी अभिलाषासे ब्राह्मणोंके लिए श्रद्धा पूर्वक गौ, भू, हिरण्य और कन्या आदि दानमें दिये। सब लोगोंने भी उसका अनुकरण किया ॥६-१०॥ इस प्रकार उस लोभी ब्राह्मणने नवमें तीर्थकालके विच्छेदके समय कुदानोंका उपदेश दिया, और उस पाप फलके कारण सातवें नरकमें गया ॥११॥

तदनन्तर वहाँसे निकल कर अनेक बार नरक तिर्यञ्च गतियोंमें घूम फिर वह मनुष्य भवमें आया और गन्धवती नदीके किनारे गन्धमादन पर्वतपर पर्वतक नामका भील हुआ। उसकी स्त्रीका नाम बल्लरी था। एक समय वहाँ श्रीधर और धर्म नामके दो चारण मुनि आये, उनसे उसने धर्मोपदेश सुन कर प्रोषध व्रत धारण किया और अन्तमें मरण कर विजयार्ध पर्वतकी अलका नगरीमें राजा महाबल और रानी ज्योतिर्मालासे हरिवाहन नामका छोटा पुत्र हुआ। उसके बड़े भाईका नाम शतबली था। एक समय राजाने श्रीधर मुनिके पास धर्मोपदेश सुनकर विरक्त हो अपने दोनों पुत्रोंको राज्य देकर, दीक्षा ले ली और अन्तमें मोक्ष प्राप्त किया ॥१२-१६॥

एक समय हरिवाहनको उसके भाईने झगड़ा कर निकाल दिया। इस लिए वह भगली देशके अम्बुदावर्त पर्वतपर श्रीवर्मा और अनन्तवीर्य नामके दो गगनचारी मुनियोंका शिष्य हो गया। और तपस्या कर ईशान स्वर्गमें देव हुआ। अन्तमें वहाँसे च्युत होकर वह इसी विजयार्ध पर्वतके रथनूपुरचक्रवाल नगरमें राजा सुकेतु और स्वयम्प्रभा रानीसे उनकी पुत्री तुम्हीं सत्यभामा हुई हो। तुम्हारे पिताने संभिन्न नामके ज्योतिषीकी सलाहसे तुम्हें मथुरा लाकर बड़े उत्सवके साथ कृष्णके साथ विवाह दिया ॥१७-२०॥ अब तुम इस जन्ममें तपस्या कर फिर देव होओगी

तपसा देवो भूत्वाऽऽगत्य नृपः संश्च सेत्स्यतीत्यन्ते ।
रुक्मिण्याः पूर्वभवांश्च विज्ञापितस्तथैव गणी ॥२१॥

अस्मिन्भारतवास्ये लक्ष्मीग्रामे द्विजस्य मगधेषु ।
लक्ष्मीमतीति भार्या चाभिरूपा सोमदेवस्य ॥२२॥

वरदर्पणे स्ववक्त्रं पश्यन्ती साऽन्यदा यतिं दृष्ट्वा ।
तपसा कृशीकृताऽङ्गं समाधिगुप्तं स्वमानेन ॥२३॥
विचिकित्सया प्रविष्टं भिक्षार्थं गर्हयाम्बभूवैनम् ।
तेनोत्सर्पदुदुम्बरकुष्ठा मृत्वा प्रविश्याऽग्निम् ॥२४॥ युग्मम् ।

सा छागेन च जाता पुनः [1]खरी लवणभारतो मृत्वा ।
राजगृहे खेलाऽख्यस्योत्पेदे शूकरी पश्चात् ॥२५॥
मण्डूकग्रामेऽभून्मण्डूक्यां त्रिपदमत्स्यबन्धस्य ।
दुहिता पूतिकगन्धा त्यक्ता मात्रा स्वपापेन ॥२६॥
आदाय पितामह्या प्रवर्द्धिता [2]निष्कुटेऽन्यदा तु तरोः ।
लब्ध्वा समाधिगुप्तं जालेनाच्छादयत्कृपया ॥२७॥
यतिना पुनः प्रभाते कारुण्याद् बोधिता पूर्वभवान् ।
अवधिज्ञानिनमेनं वन्दित्वाऽऽदत्तगृहधर्मम् ॥२८॥

गत्वा सोपारपुरीमार्याः प्रतिलभ्य नृपगृहं ताभिः ।
आचाम्लवर्द्धमानं कुर्वाणा प्रोषधं प्रययौ ॥२९॥

वन्दित्वा सिद्धशिलां नीलगुहामध्यतिष्ठदत्रैषा ।
जिनदत्ताऽख्येन पुनः संन्यासं कारिता मृत्वा ॥३०॥

जाताऽच्युतेन्द्रमहिषी सुवल्लभा गगनवल्लभा नाम्ना ।
पञ्चोत्तरपञ्चाशत्पल्योपमजीविता तस्मात् ॥३१॥

---

१. गर्दभी । २. गृहोद्याने ।

और वहाँसे अवतरित हो राजा होकर अन्तमें मोक्ष जाओगी। इसके बाद रुक्मिणीने भी अपने पूर्व-भव पूछे। तब गणधरने इस इस प्रकार कहा कि ॥२१॥

इसी भारतवर्षमें मगध देशके लक्ष्मीग्राममें सोमदेव नामक ब्राह्मण रहता था और लक्ष्मीमती उसकी सुन्दरी पत्नी थी ॥२२॥ एक समय वह अपने चेहरेको दर्पणमें देख रही थी कि उसी समय भिक्षाके लिए, तपसे अत्यन्त दुबले-पतले समाधिगुप्त नामके एक मुनि वहाँ आये पर इसने अपने (रूपके) अभिमानके कारण घृणापूर्वक तिरस्कार कर दिया। इससे उसे निरन्तर बढ़ने वाला उदुम्बर कोढ़ हो गया। जिसके सन्तापसे वह अग्निमें जलकर मर गई ॥२३–२४॥ और आर्तध्यानके कारण गदही हुई। फिर नमकके अधिक बोझ लादनेसे मरकर राजगृहमें खेल'नामक मनुष्यके यहाँ शूकरी हुई। फिर वहाँसे मरकर मण्डूक ग्राममें त्रिपद नामके मछुएकी पत्नी मण्डूकीसे पूतिगन्धा नामकी पुत्री हुई। पर पापके फलस्वरूप उसकी माताने उसे छोड़ दिया परन्तु उसकी दादीने उसका पालन किया। एक समय वृक्षोंके बगीचेमें (रात्रिमें) समाधिगुप्त मुनिको देख (ठंढसे बचानेके लिए) दया भावसे उन्हें जालसे ढँक दिया ॥२५–२७॥ फिर सुबह मुनिराजने उसे दया भावसे उसके पूर्व भव कहे। जिन्हें सुनकर उसने उन अवधिज्ञानी मुनिकी स्तुतिकर श्रावकके व्रतोंको धारण कर लिया ॥२८॥ एक समय वह सोपारक नगरीमें गई वहाँ उसका आर्यिकाओंसे समागम हुआ। उनके साथ आचाम्लवर्धन नामके प्रोषधव्रतको करती हुई राजगृह गई। वहाँ सिद्धशिलाकी वन्दना कर नीलगुफाके अन्दर बैठी और जिनदत्ता आर्यिकाकी सहायतासे संन्यास धारण कर मरी जिससे अच्युत स्वर्गमें इन्द्रकी गगनवल्लभा नामकी प्रधान इन्द्राणी हुई। वहाँ उसकी पचपन पल्यकी आयु थी ॥२९–३१॥

अवतीर्य भीष्मनृपतेः श्रीमत्यां रुक्मिणोऽभवो भगिनी ।
इह रुक्मिणीति विदिता कुण्डिननगरे विदर्भेषु ॥३२॥

तव चाशयं विदित्वा विवाहसमये तदेत्य गोविन्दः ।
त्वद्भ्रातरञ्च जित्वा त्वामानैषीत्परा भद्रे ॥३३॥

तपसा विबुधत्वमितो भवे तृतीये गमिष्यसि श्रेयः ।
जम्बावत्या जन्मान्यूचे पृष्टस्तथैव गणी ॥३४॥

अस्मिन् जम्बूद्वीपे पूर्वविदेहेषु पुष्कलावत्याम् ।
गृहपो देविलनामा बभूव पुरि वीतशोकायाम् ॥३५॥

तज्जाया देवमती तद्दुहिताऽऽसीद्यशस्वती नाम्ना ।
दत्ता सुमित्रनाम्ने गृहपतिपुत्राय तत्रैव ॥३६॥

तस्मिन्मृते कदाचित्यतिः प्रवासेन दुःखितामेनाम् ।
जिनदेवः सम्यक्त्वं जैनः प्रज्ञापयामास ॥३७॥

साऽश्रद्धाय सुतत्वं लौकिकदानोपवासनियमेन ।
मृत्वा नन्दननाम्नो भार्याऽऽसीन्नन्दने मेरौ ॥३८॥

[१]वैयन्तरोपभोगं चतुराशीतिकसहस्रमब्धीनाम् ।
उपभुज्य ततश्च्युत्वा चिरकालं संसृतौ सृत्वा ॥३९॥

जम्बूद्वीपैरावतविजयपुरे बन्धुषेणभूपस्य ।
उदपादि बन्धुमत्यां बन्धुयशा अनुमता दुहिता ॥४०॥

तत्र जिनदेवदुहितुः श्रीमत्याः प्रोषधं नमस्कारम् ।
प्रतिपद्य च मृत्वाऽन्ते स्वयम्प्रभाऽभूद्धनदपत्नी ॥४१॥

जम्बूपूर्वविदेहे दिवोऽवतीर्णाऽत्र पुण्डरीकिण्याम् ।
तनया तु वज्रमुष्टेर्बभूव सुमतिः सुभद्रायाम् ॥४२॥

---

१. व्यन्तरसम्बन्धिनमित्यर्थः ।

फिर वहाँसे अवतरित हो विदर्भदेशके कुण्डिनपुर नगरमें राजा भीष्म और रानी श्रीमतीसे रुक्मीकी बहिन तुम—रुक्मिणी नामसे विख्यात हुई हो। कृष्ण तुम्हारे आशय—प्रेम को जानकर विवाहके समय आकर और तुम्हारे भाईको जीतकर हे भद्रे ! तुम्हें ले गया। अब तुम तपकर देव होओगी और यहाँसे तीसरे भवमें मोक्ष जाओगी। इसके बाद जाम्बवतीने भी अपने पूर्व जन्म पूछे और गणधरने इस प्रकार कहा ॥३२-३४।

इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती देशमें वीतशोका नामकी नगरी थी। वहाँ देविल नामका एक गृहस्थ था। उसकी पत्नीका नाम देवमती तथा पुत्रीका नाम यशस्वती था। उसने कन्याका विवाह सुमित्र नामके किसी गृहपतिके पुत्रसे कर दिया। थोड़े दिनों बाद उसका पति परदेश गया और वहीं मर गया जिससे उसे बड़ा दुख हुआ। तब जिनदेव नामके किसी जैन मुनिने उसे सम्य-क्त्वका उपदेश दिया, पर वह उत्तम जैनतत्त्वोंपर श्रद्धा न कर लोकिक (बाहिरी) दान उपवास आदि करने लगी। अन्तमें मरकर मेरुपर्वतके नन्दन वनमें नन्दन नामक यक्षकी यखिणी हुई ॥३५-३८॥ वहाँ उसने चौरासी हजार सागर तक व्यन्तर देवोंके भोग कर वहाँसे च्युत हो संसारमें चिरकाल तक भ्रमण किया ॥३९॥

इसके बाद जम्बूद्वीपमें ऐरावत क्षेत्रके विजय पुर नगरमें राजा बन्धुषेण और रानी बन्धुमतीसे उनकी बन्धुयशा नामसे प्यारी पुत्री हुई। वहाँ उसने जिनदेवकी पुत्री श्रीमतीसे पञ्चनमस्कार मंत्र और प्रोषधव्रत ग्रहण किये और अन्तमें प्राण त्याग कर कुबेरकी पत्नी स्वयम्प्रभा हुई। ४०-४१॥ फिर स्वर्गसे अवतीर्ण हो इसी जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें पुण्डरीकिणी नगरीमें राजा वज्रमुष्टि और रानी सुभद्रासे सुमति नामकी पुत्री हुई। एक दिन उसने सेठके

गृही व्रतानि जगृहे श्रेष्ठिगृहे सा सुदर्शनार्यायाः ।
रत्नावलिं चरित्वा विधिवत्प्राणान्प्रहायाऽन्ते ॥४३॥
सप्तदशपल्यजीवो ब्रह्मेन्द्राङ्गना दिवि बभूव ।
अन्ते ततोऽवतीर्णा रजताऽद्रेर्दक्षिणश्रेण्याम् ॥४४॥
जाम्बवनगरे नृपतेर्जम्बूसेनाप्रियस्य तन्नाम्नः ।
जाम्बवतीति दुहिता त्वमभूः खचरेषु विख्याता ॥४५॥
नारदवचनाद् गत्वा प्रतिलभ्य च तार्क्ष्यवाहिनीं विद्याम् ।
चक्री त्वामुपयेमे त्वत्पितरं युधि पराजित्य ॥४६॥
तपसा तृतीयजन्मनि तथैव मोक्षं गमिष्यसि त्वमिति ।
पृष्टः सुसीमया तद्भवावलिं गणधरः प्रोचे ॥४७॥
आसीद्विदेहवर्षे धातक्याः पूर्वमेरुपौरस्त्ये ।
पुरि रत्नसञ्चयायां विषयेऽपि च मंगलावत्याम् ॥४८॥
राजाऽत्र विश्वसेनो युधि च स वै कदाचिदाहतो महति ।
क्षितिपेन पद्मसेनेनाऽयोध्यानगरनाथेन ॥४९॥
तस्याऽमात्यः सुमतिस्तद्देवी श्रावकोऽन्वशाद्धर्मम् ।
साऽणुव्रता स्वमोहादप्रतिपद्यैव सम्यक्त्वम् ॥५०॥
पतिविप्रवासशोकाद्बभूव व्यन्तरी ज्वलनवेगा ।
मृत्वा विजयद्वारे वरपत्नी विजयदेवस्य ॥५१॥
भुक्त्वोपभोगमस्मिन्वर्षाणां दशसहस्रमभ्रामीत् ।
संसारे चिरकालं ततोऽवतीर्णा पुनश्चैव ॥५२॥
जम्बूपूर्वविदेहे सीताप्राग्कूले[1] तटश्रिते रम्ये ।
राष्ट्रे धक्षिलनाम्नः शालिग्रामे च गृहपस्य ॥५३॥
अजनिष्ट देवसेनागर्भे यक्षप्रसादतो लब्धा ।
नाम्नापि यक्षदेवी यक्षीवाक्ष्णोः प्रिया तनया ॥५४॥

---

१. दक्षिणे तटे इति हरिवंशपुराणम् ।

घरमें सुदर्शना नामकी आर्यिकासे श्रावकोंके व्रत लिये। तथा रत्नावली व्रतको विधिपूर्वक पालकर अन्तमें मरकर ब्रह्म स्वर्गमें इन्द्रकी इन्द्राणी हुई। वहाँ उसकी सत्तरह पल्यकी आयु थी। फिर वहाँसे भी अवतरित हो विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें जाम्बव नगरके राजा जाम्बव और रानी जम्बुसेनासे तुम जाम्ब-वती नामकी पुत्री विद्याधरोंमें विख्यात हुई हो ॥४२-४५॥ और कृष्णने नारदकी प्रेरणासे तथा गरुडवाहिनी विद्याके बलसे तुम्हारे पिताको युद्धमें जीत कर तुमसे विवाह किया। तुम भी तप कर अबसे तीसरे भवमें मोक्ष जाओगी। इसके बाद सुसीमाने भी अपने पूर्व भव पूछे, तब उसे भी गणधरने इस प्रकार कहा ॥४६-४७॥

धातकीखण्ड द्वीपमें पूर्व मेरुके पूर्व विदेह क्षेत्रमें मंगलावती देशकी रत्नसंचया नगरीमें विश्वसेन नामका राजा रहता था। उसे किसी समय अयोध्या नगरके राजा पद्मसेनने हरा दिया (इससे उसकी रानीको बहुत दुख हुआ)। तब उसके मंत्री सुमति नामके जैन श्रावकने उसे धर्मोपदेश दिया। पर वह मोहनीय कर्मके उदयसे सम्यक्त्वको बिना धारण किये ही अणुव्रतोंको पालन कर अपने पतिके शोकसे मरकर ज्वलनवेगा नामकी व्यन्तरी हुई। जो कि जम्बूद्वीपके विजय द्वारके अधिष्ठाता विजय देवीकी पत्नी थी ॥४८-५१॥ वहाँ दश हजार वर्षों तक सुखोपभोग कर संसारमें बहुत समय तक भटकती फिरी, फिर वहाँसे आकर जम्बूद्वीपके पूर्व विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके पूर्व तट पर, रम्य नामक देशके शालिग्राममें यक्षिल नामके गृहस्थकी पत्नी देवसेनाके गर्भसे पुत्री हुई। वह यक्षके प्रसादसे हुई थी तथा यक्षीके समान आखोंको प्रिय थी, इस लिए उनका नाम यक्षी रखा गया ॥५२-५४॥

एक समय वह अपने देवताको पूजनेके लिए यक्ष मन्दिरमें

यक्षाऽऽलयेऽन्यदा सा स्वदेवतापूजनार्थमत्र गता ।
शुश्राव सूरिमिष्टं वरधर्मं धर्मसेनाऽख्यम् ॥५५॥
आहारदानमस्मै भक्तियुता सन्ददौ समभ्यर्च्य ।
जातुचिदथ सा प्रययौ क्रीडितुमचले सह सखीभिः ॥५६॥
विमलगिरौ नाम्न्यऽस्मिन्नकालवर्षार्दितां गुहां महतीम् ।
शीघ्रं प्रविश्य हरिणा ग्रस्ता प्रजहौ प्रियान्प्राणाम् ॥५७॥
भूत्वाऽतो हरिवर्षे द्विपल्यतुल्योपभोगमुपभुज्य ।
जाता ज्योतिर्लोके दिग्व्यापिमनोहरज्योतिः ॥५८॥
भुक्त्वाऽर्धपल्यभोगं तत्रान्ते प्रच्युता ततश्चापि ।
जम्बूद्वीपविदेहे पौरस्त्ये पुष्कलावत्याम् ॥५९॥
नृपतेरशोकनाम्नो श्रीमत्यामजनि वीतशोकेशः ।
श्रीकान्तेति च दुहिता श्रीरपरेवाऽतिरूपयुता ॥६०॥
जिनदत्ताऽऽर्यापार्श्वे धर्मं श्रुत्वाऽन्यदा विनिष्क्रान्ता ।
[1]कनकावलिं चरित्वा महेन्द्रस्याभवत्कान्ता ॥६१॥
एकादशाङ्गसौख्यं भुक्त्वा पल्योपमान्यतोऽप्यन्ते ।
अवतीर्णा गिरिनगरे सुज्येष्ठायां सुराष्ट्रेषु ॥६२॥
त्वं राष्ट्रवर्द्धनस्य क्षितिपालस्याङ्गजा सुसीमाऽऽसीः ।
त्वं व्रतभक्तं भुक्त्वा सहाशिषा त्वत्पितुः क्रोधात् ॥६३॥
हरये समाचचक्षे त्वत्सौन्दर्यं च नारदाच्छ्रुत्वा ।
तच्छौरिरेत्य जनकं तव जित्वा त्वामुपायंस्त ॥६४॥
मुक्तिस्तथैव ते स्याल्लक्ष्मणया पृष्टो गणधरश्चोचे ।
तत्पूर्वभवांश्च पूर्वविदेहेस्थकच्छकावत्याम् ॥६५॥
सीतोत्तरकूलस्थेऽरिष्टपुरे वासवोपमो राजा ।
नाम्नाऽपि वासवोऽभूत्सुमतिस्तस्याऽग्रवनिताऽऽसीत् ॥६६॥

---

१. रत्नावलिं इति हरिवंशपुराणे ।

गई थी। वहाँ उसे धर्मसेन नामके मुनिराज मिले जिनसे उसने उत्तम धर्मोपदेश सुने। फिर उनकी पूजा कर बड़ी भक्तिके साथ उन्हें आहारदान दिया। किसी समय वह अपनी सखियोंके साथ क्रीड़ा करनेके लिए विमलगिरि पर्वतपर गई पर वहाँ अकाल वृष्टिसे पीडित होकर बड़ी गुफामें घुस गई जहाँ आकर एक सिंहने उसे शीघ्र ही खा लिया जिससे उसने अपने प्रिय प्राणोंको त्यागा ॥५५-५७॥ फिर वहाँसे वह हरि क्षेत्रमें उत्पन्न हुई। वहाँ दो पल्य तक भोगोपभोग भोग च्युत हुई और चारों ओर मनोहर प्रकाश फैलाती हुई ज्योतिषी देवोंमें देवी हुई। वहाँ अर्धपल्य प्रमाण भोगोंको भोगकर वहाँसे च्युत हुई और यहाँ जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमें पुष्कलावती देशके वीतशोका नगरीके राजा अशोक और रानी श्रीमतीसे श्रीकान्ता नामकी पुत्री हुई जो कि दूसरी लक्ष्मीके समान ही अतिरूपवती थी ॥५८-६०॥ एक समय उसने जिनदत्ता आर्यिकाके पास धर्मोपदेश सुनकर दीक्षा ले ली और कनकावलि तप करने लगी और अन्तमें मरकर महेन्द्र स्वर्गमें इन्द्राणी हुई ॥६१॥ वहाँ ग्यारह पल्य तक शरीर सुख भोग वहाँसे भी अन्तमें अवतरित हो सुराष्ट्र देशके गिरिनगरमें राजा राष्ट्रवर्धन और रानी सुज्येष्ठाकी पुत्री तुम सुसीमा नामसे हुई हो। एक समय तुम व्रतकी पारणाकर आशीर्वाद पाकर बैठी थी कि तुम्हारे पितासे क्रुद्ध हो नारदने तुम्हारे सौन्दर्यकी चर्चा कृष्णसे की। यह सुनकर कृष्ण वहाँ आये और तुम्हारे पिताको जीतकर उन्होंने तुमसे विवाह कर लिया ॥६२-६४॥ तुम्हारी भी उसी तरहसे (तीसरे भवमें) मुक्ति होगी। इसके बाद लक्ष्मणाने अपने पूर्व भव पूछे, तब गणधरने उत्तर दिया—

पूर्व विदेहके कच्छकावती देशमें सीतोदा नदीके उत्तर तटमें अरिष्टपुर नामके नगरमें इन्द्रके समान वासव नामका राजा

सान्तःपुरः कदाचिन्नरपतिरभिवन्दितुं सशिष्यगणम् ।
सूरिं सागरसेनं ययौ सहस्राऽम्रवनसंस्थम् ॥६७॥

तस्मान्निशम्य धर्मं निर्विण्णः प्राव्राजीत् तमभिषिच्य ।
वसुषेणमात्मसूनुं न देव्यदीक्षिष्ट तत्स्नेहात् ॥६८॥

अन्तःपुरं प्रविष्टां सोमश्रियमेकदाऽऽर्यिकां देवी ।
दानेन पूजयित्वा तस्याः शुश्राव धर्मवचः ॥६९॥

स्वसुतनृपविप्रयोगान्ममार साऽत्यन्तशोकदुःखेन ।
भूत्वा पुनः [1]पुलन्दी लब्ध्वाऽम्बरचारणं तस्मिन् ॥७०॥

पप्रच्छ नन्दिभद्रं स्वपूर्वजन्माऽगदीच्च सोऽपि यतिः ।
अवधिज्ञानेनाऽस्यै वासवनृपतेः प्रिया त्वमिति ॥७१॥

दिवसत्रितयानशना मृत्वा स्मृतपूर्वजातिकाम्यत्वात् ।
सुरस्य मेघमालिनी नारदस्याऽभवच्च देवी[2] ॥७२॥

च्युत्वा ततोऽत्र भरते प्राच्यश्रेण्यां नभश्चरावासे ।
चन्दनपुरे महेन्द्रानुन्धर्योः कनकमालाऽभूत् ॥७३॥

कृत्वा स्वयंवरे सा महेन्द्रनगराधिपं प्रकटकीर्त्तिम् ।
हरिवाहनं खगेन्द्रं तस्याऽभूद्वल्लभा सुतराम् ॥७४॥

अर्हद्गृहमहिमार्थं गताऽन्यदा सिद्धकूटमत्रैषा ।
चारणमुनेः स्वजातीः श्रुत्वा मुक्तावलीमार्याम् ॥७५॥

उपवासमुपोष्यासीत्सनत्कुमारेन्द्रवल्लभा देवी ।
नवपल्यान्युपभोगं भुक्त्वा तस्मात्समवतीर्य ॥७६॥

सोपारपुरे त्वमभूः कुरुमत्यां श्लक्ष्णरोमनृपदुहिता ।
खचरो निवर्त्तमानोऽनलवेगो दक्षिणाम्बुनिधेः ॥७७॥

---

१. शबरी । २. अष्टमे कल्पे इन्द्रस्य नर्तकी इति उत्तरपुराणे ।

रहता था। उसकी पट्टरानीका नाम सुमति था ॥६५-६६॥ एक समय राजा अपने रनिवासके साथ सहस्राम्रवनमें अपने शिष्यों सहित विराजित सागरसेन मुनिके पास गया और उनसे धर्मोपदेश सुनकर विरक्त हो गया तथा अपने पुत्र वसुषेणका राज्याभिषेक कर दीक्षा ले ली, पर रानीने अपने पुत्रके स्नेहसे दीक्षा नहीं ली। एक दिन रनिवासमें सोमश्री नामकी आर्यिका आई। उसे रानीने आहार दान दे पूजा की और उससे धर्मोपदेश सुना ॥६७-६९॥ (पर वह आर्यिका न हो सकी) तथा अपने पुत्र और पतिके वियोगसे वह अत्यन्त दुःखके साथ मरी और भीलनी हुई। एक समय उसने नन्दिभद्र नामके चारण मुनिको पा उनसे अपने पूर्वजन्मकी बात पूछी। तब उन मुनिराजने अवधिज्ञानके बलसे उसे कहा कि तुम राजा वासवकी रानी थीं ॥७०-७१॥ यह सुनते ही उसे जातिस्मरण हो आया और तीन दिनका उपवास कर मरण किया और नारद देवकी मेघमालिनी नामकी देवी हुई ॥७२॥ वहाँसे च्युत होकर इसी भरत क्षेत्रके विजयार्ध पर्वतकी पूर्वश्रेणीमें चन्दनपुरके राजा महेन्द्र और अनुन्धरी रानीसे कनकमाला नामकी पुत्री हुई ॥७३॥ फिर उसने स्वयंवरमें महेन्द्र नगरके विख्यातकीर्ति राजा हरिवाहन विद्याधरको वरण कर उसकी रानी हुई ॥७४॥

एक समय वह जिन-चैत्यालयोंकी पूजा करनेको सिद्धकूट पर्वत पर गई। वहाँ चारणमुनिसे अपने पूर्व जन्मोंको सुन, श्रेष्ठ मुक्तावली तपको करके अन्तमें उपवाससे मरणकर सनत्कुमार स्वर्गमें इन्द्रकी इन्द्राणी हुई और नव पल्यतक उपभोगोंको भोग फिर वहाँसे च्युत होकर सोपारपुर नगरमें राजा श्लक्ष्णरोम और रानी कुरुमतीसे तुम लक्ष्मणा नामकी पुत्री हुई हो। एक समय दक्षिण समुद्रसे लौटते हुए अनलवेग नामके विद्याधरने तुम्हें

त्वां दृष्ट्वा संचर्य्यौ हरये श्रुत्वा तदैत्य कृष्णोऽपि ।
दुष्प्रसहद्रुमसेनौ त्वत्सहजावाहवे जित्वा ॥७८॥

त्वां व्यवहृत्य च ज्येष्ठां सुलक्ष्मणां हलधरस्तथैवेति ।
तव मुक्तिः गान्धार्या भवान् गणी सोऽभ्यधात्पृष्टः ॥७९॥

इह कोशलेष्वयोध्यानगरीशो रुद्रधामभूपस्य ।
विनयश्रीरिति देवी देववधूतुल्यलावण्या ॥८०॥

सिद्धार्थवनोद्याने सनृपा सा श्रीधराय दानमददात् ।
तत्पुण्यफलाज्जज्ञे कालं कृत्वा कुरुष्वन्ते ॥८१॥

उपभुज्य भोगमतुलं तस्मात्पल्योपमत्रयं भुक्त्वा ।
अजनि शशिनोग्रपत्नी पल्याष्टकभागतुल्यायुः ॥८२॥

तस्मादिहावरूढा भारतरजताऽचलोत्तरश्रेण्याम् ।
विद्युद्वेगस्याऽसीत्सुता गगनवल्लभे नगरे ॥८३॥

विद्युन्मत्या गर्भेऽमितवाहनगामिनः प्रिया भगिनी ।
कन्या खलु विनयश्रीर्विनयश्रीर्विग्रहवतीव ॥८४॥ युग्मम् ।

नित्यालोकपुरीशे महेन्द्रविक्रमवियच्चरेन्द्राय ।
प्रददेऽन्यदा स मेरौ चारणयुगलं समुल्लभ्य ॥८५॥

तत्क्रममूले धर्मं श्रुत्वा हरिवाहनं स्वकान्तसुतम् ।
अभिषिच्य प्राव्राजीद्विहाय विनयश्रियं वीरः ॥८६॥

साप्युपवासं कृत्वा नाम्ना सर्वर्तुकं समाराध्य ।
शक्रस्य वल्लभाऽभूत्पल्योपमपञ्चकस्थितिका ॥८७॥

देख कृष्णके पास आकर कहा। कृष्णने भी तुम्हारे दुष्प्रसह एवं द्रुमसेन नामके भाइयोंको युद्धमें हराकर तुमसे विवाह किया और तुम्हारी बड़ी बहिन सुलक्षणासे बलरामने विवाह किया। तेरी भी मुक्ति उसी तरह (तीसरे भवमें) होगी। इसके बाद गान्धारीसे भी अपने भव पूछे जानेपर गणधरने कहा ॥७५-७९॥

इसी जम्बूद्वीपके कोशल देशमें अयोध्याका राजा रुद्रधाम था जिसके देवाङ्गनाओंके समान सुन्दरी विनयश्री नामकी रानी थी। एक समय उस रानीने राजाके साथ सिद्धार्थ वनमें जाकर श्रीधर नामके मुनिको आहार-दान दिया। उस पुण्यके बलसे, मृत्युके बाद वह उत्तरकुरुमें पैदा हुई ॥८०-८१॥ वहाँ तीन पल्य पर्यन्त अतुलनीय भोगोंको भोगकर अन्तमें मरकर ज्योतिषी देवोंके इन्द्र चन्द्रकी प्रधान देवी हुई जहाँ उसकी आयु पल्यके आठवें भाग थी ॥८२॥ फिर वहाँसे अवतीर्ण हुई और उस समय भारतवर्षके विजयार्ध पर्वतकी उत्तरश्रेणीमें गगनवल्लभ नगरका विद्युद्वेग नाम का राजा था और विद्युन्मति उसकी रानी थी। उनके अमितवाहनकी प्यारी बहिनके रूपमें विनयश्री नामकी पुत्री हुई जो कि विनयलक्ष्मीका साक्षात् अवतार थी ॥८३-८४॥ फिर उसका विवाह नित्यालोकपुरके राजा महेन्द्रविक्रम विद्याधरसे कर दिया गया। एक समय राजा महेन्द्रविक्रमको, मेरु पर्वतपर दो चारण मुनि मिले। उनके चरणोंमें बैठकर धर्मोपदेश सुननेसे उसे वैराग्य हो गया। फिर उस वीरने अपने पुत्र हरिवाहनका राज्याभिषेक कर तथा विनयश्रीको त्याग दीक्षा ले ली। विनयश्री भी सर्वतोभद्र नामक उपवास करके अन्तमें समाधिमरण पूर्वक मरी और सौधर्म इन्द्रकी इन्द्राणी हुई जहाँ उसकी आयु पाँच पल्यकी थी ॥८५-८७॥ इसके बाद वहाँसे अवतरित हो वह गान्धार देशके

अवरुह्य ततस्तस्माद्गान्धारेषु पुरि पुष्कलावत्याम् ।
इन्द्रगिरिमेरुमत्यो राज्ञोश्च त्वमसि तनयाऽऽर्ये ॥८८॥

सुमुखाय दीयमानां नारदवचनेन हयपुरीशाय ।
भ्रात्रा प्राहिमगिरिणा हत्वा त्वां चानयद्विष्णुः ॥८९॥

ते मुक्तिरपि तथैव च गौर्य्या पृष्टो गणधरः प्रोचे ।
पूर्वभवानथ तस्या भरतेऽस्मिन्कुरुषु गजपुर्याम् ॥९०॥

धनदेवस्येभ्यस्य च त्वासीत् यशस्वती युवतिष्वग्र्या ।
हर्म्ये स्थिताऽन्यदा सा चारणयुगलं समालोक्य ॥९१॥

सस्मार स्वकजातीर्घातक्या पूर्वमन्दराऽपरतः ।
आनन्दोऽभूच्छ्रेष्ठी विदेहविषये त्वशोकपुरे ॥९२॥

तस्याऽहं नन्दयशा भार्या सम्प्रियतमाऽन्यदा तेन ।
दानमवाप सुपूजां दत्वाऽमितसागराख्यमुनिपतये ॥९३॥

पीत्वाऽम्बरपानीयं सविषं मृत्वा सभर्तृकाऽभूवम् ।
देवकुरुष्ववतीर्णा तस्मादीशानकल्पेशः ॥९४॥

अभ्यन्तरसांसदिकी देव्यभवं प्रच्युता ततश्चान्ते ।
अत्राऽऽसमिति ज्ञात्वा सिद्धार्थवनेऽन्यदा साधुम् ॥९५॥

नत्वा सुभद्रसंज्ञं प्रोषधनियमं ततः समादाय ।
मृत्वाऽभ्यन्तरसंसद्यभवद्देवी दिवि मघोनः ॥९६॥

पल्योपमानि पञ्च प्रभुज्य भोगांस्ततश्च्युत्वा ।
वत्सेषु च कौशाम्ब्या सुभद्रनाम्नः सुमित्रायाम् ॥९७॥

श्रेष्ठिन्यामजनि सुता धर्ममतिर्नाम साऽन्यदा सुगुणाम् ।
जिनमतिमुपलभ्याऽऽर्या जिनगुणमुपवासमाधत्ते ॥९८॥ युग्मम् ।

पुष्कलावती नामके नगरमें राजा इन्द्रगिरि और रानी मेरुमतीसे- हे कल्याणि ! तुम्हीं पुत्री हुई हो। तुम्हारे भाई प्राहिमगिरिने तुम्हें हयपुरके राजा सुमुखको देना चाहा था, पर कृष्ण नारदके कहनेसे, युद्धमें उसे मारकर तुम्हें ले आया ॥८८-८९॥ तुम्हारी भी मुक्ति उसी तरह (तीसरे भवमें) होगी। तब गौरीने भी गण-धरसे अपने पूर्व भव पूछे। गणधरने भी उत्तर दिया कि-

इसी भरत क्षेत्रके उत्तरकुरु देशमें गजपुर नामका नगर था। ॥९०॥ वहाँ धनदेव नामका एक सेठ था और उसकी यशस्विनी नामकी श्रेष्ठ पत्नी थी। एक दिन वह महलकी छतपर बैठी थी कि उसने आकाशसे जाते दो चारण मुनियोंको देखा। इससे उसे जातिस्मरण हो आया कि मैं धातकी खण्ड द्वीपके पूर्वमन्दिरके पश्चिम विदेह क्षेत्रमें अशोकपुरके सेठ आनन्दकी नन्दयशा नामकी अत्यन्त प्यारी पत्नी थी। एक दिन मैंने अपने पतिके साथ अमितसागर मुनिको दान देकर (देवकृत) सम्मान पाया था ॥९१-९३॥ एक दिन मैंने और मेरे पतिने विषमिश्रित वर्षाके पानीको पी लिया जिससे मरकर देवकुरुमें अवतीर्ण हुई और वहाँ मरकर ईशान स्वर्गके इन्द्रकी आभ्यन्तर सभाकी देवी हुई और वहाँसे च्युत होकर यहाँ मैं यशस्विनी हुई हूँ। यह जाननेके बाद उसने एक समय सिद्धार्थवनमें सुभद्र नामके मुनिकी वन्दना कर उनसे प्रोषध व्रत ले लिये और वहाँसे मरण कर स्वर्गमें फिरसे इन्द्रकी भीतरी परिषद्‌की देवी हुई ॥९४-९६॥ वहीं पाँच पल्यकी आयुतक भोगोंको भोग वहाँसे च्युत हुई। और वत्स देशकी कौशाम्बो नामकी नगरीमें सुभद्र सेठ और सुमित्रा सेठानी-से धर्ममती नामकी पुत्री हुई। एक समय उसे गुणवती जिनमति नामकी आर्यिका मिलीं उनसे (धर्मोपदेश सुनकर) जिनेन्द्रगुण-सम्पत्ति नामका व्रत धारण कर लिया ॥९७-९८॥ फिर चार

आराध्य महाशुक्रे भूत्वामरनाथवल्लभा सौख्यम् ।
पल्योपमानि बुभुजे विंशतिमेकादिकान्तं च ॥९९॥

अवपत्य ततस्त्वमभूश्चन्द्रमतेर्गर्भजा सुतनु गौरी ।
इह मेरुचन्द्रनृपतेस्तनया पुरि वीतशोकायाम् ॥१००॥

विजयपुरेशाय पुनर्विजयानन्दाय दीयमानां त्वाम् ।
शौरिर्विगृह्य विदितां बलेन परिणीतवान् भद्रे ॥१०१॥

त्वमिति तथैव च सेत्स्यसि पद्मावत्या पृष्टो गणनाथः ।
तत्पूर्वभवानूचे देशेऽस्मिन्भारते वास्ये ॥१०२॥

नृपतिरवन्तिष्वासीदिहोज्जयिन्यां प्रियः स विजयायाः ।
अपराजित इति नाम्ना विनयश्रीस्तस्य तनयाऽसीत् ॥१०३॥

हरिषेणाय प्रददे नृपाय सा हास्तिशीर्षनगरीशे ।
वरदत्ताय च दानं मुनयेऽदात् साऽन्यदा सपतिः ॥१०४॥

पत्या सह गर्भगृहे मृत्वाऽगुरुधूपकेन हैमवते ।
भूत्वोपभुज्य भोगान् पल्यमतश्चावतीर्याऽन्ते ॥१०५॥

चन्द्रप्रभेति देवी शशिनोऽभूदर्द्धपल्यतुल्याऽऽयुः ।
तस्मादप्यवतीर्णा भरतेऽस्मिन्नेव मगधेषु ॥१०६॥

शाल्मलिखण्डे ग्रामे जयदेवनृपाधिपस्य तनयाऽभूत् ।
गर्भे च देविलायाः कनीयसी पद्मदेवस्य ॥१०७॥

नाम्नाऽपि पद्मदेवी वरधर्माचार्यमेकदा नत्वा ।
अज्ञातफलाभक्षणमेषा व्रतमाददे तस्मात् ॥१०८॥ युग्मम् ।

व्याधाधिपोऽन्यदा तं ग्राममञ्च स्कन्दचण्डवाणाख्यः ।
बद्धां रतेच्छयैनां भार्यात्वायोपदुद्राव ॥१०९॥

आराधनाओंका आराधन कर मृत्युके बाद महाशुक्र स्वर्गमें इन्द्रकी इन्द्राणी हुई और वहाँ इक्कीस पल्योंतक सुख भोग किया ॥९९॥

वहाँसे च्युत होकर तुम यहाँ वीतशोकानगरीमें राजा मेरुचन्द्र और रानी चन्द्रमतिसे गौरी नामकी पुत्री हुई हो ॥१००॥ हे भद्रे ! तुम्हारे माता-पिता विजयपुरके राजा विजयानन्दसे तुम्हारा विवाह कर रहे थे। पर जब यह बात कृष्णको मालूम हुई तो उसने युद्ध कर बलपूर्वक तुमसे विवाह किया ॥१०१॥ तुम भी उसी तरह मुक्ति पाओगी। इसके बाद पद्मावतीने अपने पूर्वभव पूछे तो उन्होंने कहा–

इसी भारतवर्षमें अवन्ति देशकी उज्जयिनी नगरीमें अपराजित नामका राजा था। उसकी रानी विजयासे विनयश्री नामकी एक पुत्री थी ॥१०२–१०३॥ राजाने हस्तिशीर्ष नगरके राजा हरिषेणसे अपनी पुत्री विवाह दी। एक समय विनयश्रीने अपने पतिके साथ वरदत्त नामके मुनिको आहारदान दिया ॥१०४॥ किसी दिन वह भीतरी कमरेमें अपने पतिके साथ सो रही थी कि अगुरुधूपके धुँएसे दोनोंकी मृत्यु हो गई और वह हैमवत क्षेत्रमें उत्पन्न हुई। वहाँ एक पल्य वर्षोंतक भोग भोगकर वहाँसे भी मरण कर ज्योतिषी देवोंमें चन्द्रमाकी चन्द्रप्रभा नामकी रानी हुई जहाँ उसकी अर्धपल्यकी आयु थी। वहाँसे च्युत हो इसी भरत क्षेत्रके मगध देशमें शाल्मलिखण्ड ग्राममें जयदेव गृहस्थ और उसकी पत्नीसे पद्मदेवकी छोटी बहिन पद्मदेवी नामकी पुत्री हुई। उसने एक दिन वरधर्म नामके मुनिको नमस्कार कर बिन जाने फलोंको कभी न खानेका व्रत ले लिया ॥१०५–१०८॥

एक समय चण्डबाण नामके एक भीलने उस ग्रामपर चढ़ाई कर दी और पद्मदेवीको कैद कर लिया तथा काम सेवन करनेकी इच्छासे अपनी पत्नी बनानेके लिए उसे तंग करने लगा

नैयेव शीलमेषा प्रपालयन्ती तमन्यदा रक्षः ।
प्रहितो राजगृहेशा सिंहरथेनाऽवधीदुग्रः ॥११०॥

तद्विगते विभ्रमन्ते जनाः सकिम्पाकतरुफलान्यद्यर्[1] ।
दिङ्मूढाः खलु पद्मा व्रतिनी नाश्रुतेऽध्वनि किमपि ॥१११॥

प्रत्याख्याय च तस्मिन् हैमवते पल्यजीविता जाता ।
संसेव्य तत्र सौख्यान्यन्ते मुक्त्वा ततश्चापि ॥११२॥ युग्मम् ।

देवी स्वयम्प्रभस्य स्वयम्प्रभा व्यन्तराऽमरेशस्य ।
द्वीपे स्वयम्प्रभगिरावभूत्स्वयम्भूरमणसंज्ञे ॥११३॥

मुक्त्वाऽतोऽस्मिन्भरते श्रीधरनृपतेर्जयन्तनगरेशः ।
श्रीमत्यां विमलश्रीः सदृशी विमलाङ्गजा जज्ञे ॥११४॥

मलयेषु भद्रिलपुरे नृपाय साऽदायि मेघनिनदाय ।
प्रथितमसूत च सूनुं भूमितले मेघघोषाऽऽख्यम् ॥११५॥

पद्मावल्यायांऽन्ते पत्यौ सा स्वर्गते विनिष्क्रम्य ।
आचाम्लवर्धमानं समुपोष्यान्ते समाराध्य ॥११६॥

कल्पे तु सहस्रारे देवेन्द्रस्याऽग्रगामिनी भूत्वा ।
त्रिगुण[2]नवकानि पल्यान्याशीदमराङ्गनासौख्यम् ॥११७॥

आसीस्ततोऽवतीर्णाऽरिष्टपुरे त्वं हिरण्यनाभस्य ।
श्रीमत्यां कान्तसुता सुन्दरि पद्मावती प्रथिता ॥११८॥

शार्ङ्गिणमुपलब्धवती स्वयंवरे त्वं च सेत्स्यसीति ।
तथैव कथितेऽष्टावपि देव्यः परितुष्टुवुर्गणिनम् ॥११९॥

अन्येऽपि तदा यदवः स्वपूर्वजातीर्निशम्य सम्यक्त्वम् ।
गृहिधर्मं च गृहीत्वा नुनुवुर्गणिनं शिरोऽञ्जलयः ॥१२०॥

---

१. खादित्वा इत्यर्थः । २. नवपञ्चकपल्यानि इति हरिवंशपुराणे ।

॥१०९॥ परन्तु वह अपने शीलव्रतको पालन करती हुई उसकी पत्नी न बनी। किसी समय राजगृहके राजा सिंहरथने अपने बलवान् सैनिकको भेजकर उस भीलको मरवा डाला ॥११०॥ उसके मर जानेपर उसके अधीन लोग विषैले वृक्षोंके फल खाकर रास्ता भूल, भटकने लगे पर (अनजान फल न खानेका) व्रत धारण करनेवाली पद्मदेवीने रास्तेमें कुछ भी नहीं खाया ॥१११॥ इस प्रकार त्यागसे शरीर छोड़ हैमवत क्षेत्रमें भोगभूमिया हुई और एक पल्य तक जीवित रह अनेक सुखोंको भोगा। फिर वहाँसे मरकर स्वयम्भूरमण द्वीपके स्वयम्भूरमण पर्वतपर व्यन्तरोंके इन्द्रकी स्वयम्प्रभा नामकी देवी हुई ॥११२-११३॥ फिर वहाँसे च्युत होकर इसी भरत क्षेत्रके जयन्त नगरमें राजा श्रीधर और रानी श्रीमतीसे विमल शोभावाली विमला नामकी पुत्री हुई ॥११४॥ उसका विवाह मलयदेशमें भद्रिलपुरके राजा मेघनादसे कर दिया गया। उससे जगत्में प्रसिद्ध मेघघोष नामका पुत्र उत्पन्न हुआ ॥११५॥ कुछ दिनोंके बाद विमलश्रीके पतिका स्वर्गवास हो गया इससे उसने पद्मावती आर्यिकाके समीप दीक्षा लेकर आचाम्लवर्धन नामक तपको करके अन्तमें आराधनाओंको आराधन कर सहस्रार स्वर्गके इन्द्रकी इन्द्राणी हुई। और वहाँ उसने सत्ताईस पल्यकी आयु तक देवाङ्गनाओंके सुख भोगे ॥११६-११७॥ वहाँसे च्युत होकर अरिष्टपुरके राजा हिरण्यनाभ और रानी श्रीमतीसे हे सुन्दरि! तुम पद्मावती नामकी सुन्दर पुत्री हुई हो और स्वयंवरमें तुमने कृष्णको वरण किया। तुम्हारा भी मोक्षगमन उसी प्रकार होगा। ऐसा कहनेपर वे आठों ही देवियाँ प्रसन्न हो गणधरकी स्तुति करने लगीं ॥११८-११९॥

उस समय अन्य यादवोंने भी अपने पूर्व-जन्मके वृत्तान्त सुने और कुछने सम्यक्त्व धारण किया एवं कुछने श्रावक-व्रत

सर्वेऽपि ततः सभ्या वन्दित्वेशं स्वमन्दिराण्यगमन् ।
भव्यहिताय च भगवान्सगणो व्यहरत्पुनर्देशान् ॥१२१॥

पूर्ववदागत्य जिनं रैवतकाद्रौ सुरेन्द्रसन्मध्ये ।
उपविष्टमन्यदैवं प्रणम्य पप्रच्छ बलदेवः ॥१२२॥

वैश्रवणनिर्मितेयं द्वारवती कृष्णबाहुपरिपाल्या ।
अविनाशेवास्माकं भगवन्नन्तः कदा न्वस्याः ॥१२३॥

इति चोदितोऽथ नाथः प्राभाषत वारुणीनिमित्तेन ।
द्वीपायनेन दग्धा निरीक्ष्यते पूद्वादशाब्दे ॥१२४॥

कौशाम्बाऽख्याटव्यां जरेण प्रणश्यते हरिश्चान्ते ।
स्वाभ्रीं गतिं प्रविष्टः पुनश्च भवितेह तीर्थंकरः ॥१२५॥

सिद्धार्थबोधितस्त्वं भ्रातृवियोगोत्थशोकमुज्झित्वा ।
षष्टिद्वयमब्धीनां प्रव्रज्योग्रं तपः कृत्वा ॥१२६॥

दशसागरोपमायुर्भवितासि ब्रह्मकल्पराजान्ते ।
उत्सर्पिण्यां मुक्तस्ततोऽवतीर्णो भविष्यसि च ॥१२७॥

एवं जिनगणिवागमृतं पीत्वा शेषः[1] प्रणम्य भगवन्तम् ।
सभ्रातृदारसैन्यो निवृत्य नगरीं च समवीक्षत् ॥१२८॥

गणिनामेकादशकं नेमेश्च चतुः शतं तु पूर्वविदाम् ।
पञ्चदशकं यतीनां शतमवधिज्ञानिनामासीत् ॥१२९॥

विपुलमतिज्ञानवतां प्रज्वलितब्रह्मवर्चस्वानां च ।
शतमेव नवकमासीत्केवलिनां च पञ्चदशकं तत् ॥१३०॥

---

१. बलदेवः ।

धारण किये। तथा हाथ जोड़ गणधरको नमस्कार किया ॥१२०॥ समवसरणमें उपस्थित अन्य सबलोग भी भगवान्को प्रणाम कर अपने अपने निवासस्थान गये और भगवान् भी संघसहित भव्य प्राणियोंके कल्याण करनेके लिए फिरसे अनेक देशोंमें भ्रमण करने लगे ॥१२१॥

एक समय भगवान् पहलेके समान ही गिरनार पर्वतपर आकर देवताओंके बीच (समवसरणमें) विराजमान थे। वहाँ बलदेवने भगवान्को प्रणामकर पूछा ॥१२२॥ कि हे भगवन्, कुबेरके द्वारा बनाई गई, तथा कृष्णकी भुजाओंसे परिपालित और हमलोगोंको अविनाश स्वरूप मालूम होनेवाली यह द्वारिका पुरी कब नष्ट होगी ? ॥१२३॥ इस प्रश्नपर भगवान्ने कहा कि तुम, आजसे बारहवें वर्षमें शराब पीकर मत्त यादवोंसे क्रोधित हुए द्वैपायन मुनिके द्वारा इस नगरीको भस्म हुई देखोगे ॥१२४॥ और कृष्ण कौशाम्वनामके वनमें जरत्कुमारके द्वारा मारे जायेंगे तथा मरकर नरकगति जायंगे और फिर भावी तीर्थंकर होंगे ॥१२५॥ और तुम सिद्धार्थ नामक देवसे संबोधित हो भाईके वियोगसे उत्पन्न शोकको छोड़ोगे और दीक्षा लेकर बासठ सागर-तक उग्र तप करोगे ॥१२६॥ एवं अन्तमें ब्रह्म स्वर्गके इन्द्र होवोगे जहाँ तुम्हारी आयु दश सागरकी होगी। फिर वहाँसे च्युत हो अगली उत्सर्पिणीमें मोक्ष जाओगे ॥१२७॥ इस तरह जिन भगवान् और उनके गणधरके वचनामृतको सुनकर बलरामने भगवान्को प्रणाम किया और अपने भाइयों, पत्नियों और सेनाके साथ लौटकर अपने नगरकी देखभाल करने लगा ॥१२८॥

भगवान् नेमिनाथके संघमें ग्यारह गणधर थे तथा पूर्वाङ्ग-वेत्ता चार सौ थे, पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी मुनि थे, विपुलमतिज्ञान-के धारी तथा ब्रह्मतेजसे प्रकाशित मुनि नौ सौ थे तथा केवलियोंकी

एकादशकं तु शतं(११००)वैक्रियशक्त्या समन्वितयतीनाम् ।
अष्टौ शतान्यभूवन् प्रवादिदर्पच्छिदामीशः ॥१३१॥
आसीच्च शिक्षकाणामेकादशकं सहस्रमष्टशतम्(११८००) ।
अष्टादशकसहस्रा(१८०००)यतिपरिषदियन्तु संख्यातः ॥१३२॥
चत्वारिंशद्गुणितं सहस्रमेकं(४००००)बभूव चार्याणाम् ।
एकं लक्षं(१०००००)गृहिणामुपासिकानां त्रिसंगुणं लक्षम्
(३०००००) ॥१३३॥

भव्यांस्ततो जिनेन्द्रः सकलं देशं विबोधयन्धर्मम् ।
सङ्घेन विहृत्याऽन्ते स्मारोहत्यूर्जयन्तगिरिम् ॥१३४॥

आषाढशुक्लपक्षे सप्तम्यां दशधनुःसमुत्तुङ्गः ।
षट्त्रिंशता यतीनां पञ्चशतेनापि साहस्रम् ॥१३५॥

त्रीण्यपि निरुध्य योगान् न योगितामेत्य पूर्वशर्वर्याम् ।
परिनिर्वृते जिनेन्द्रे विनाश्य कर्माण्यशेषाणि ॥१३६॥

देवेन्द्रास्तत्समये समेत्य सर्वेऽपि जिनतनोः पूजाम् ।
अत्यादृताः प्रचक्रुर्नानाविधगन्धमाल्याभिः ॥१३७॥

अग्नीन्द्रमौलिमणिजज्वलनेन तनुं तदा दग्ध्वा ।
गन्धोदकाऽक्षतैस्ते पुनश्च निर्वापयामासुः ॥१३८॥

कुलिशेन सहस्राक्षो लक्षणपङ्क्तिं लिलेख तत्रेशः ।
भव्यहिताय शिलायामद्यापि च शोभते पूता ॥१३९॥
देवाश्चतुर्निकायाः सेन्द्राः कृत्वाऽन्तिमां जिनस्यैवम् ।
महिमां पवित्रहृदया जग्मुः सर्वे स्वलोकेभ्यः ॥१४०॥

स्वर्गाऽवतरणजन्मप्रव्रजनज्ञानलब्धिनिवृत्तिषु ।
नक्षत्रमभूच्चित्रा कल्याणकमङ्गलेष्वीशः ॥१४१॥
कौमारेऽपि त्रिशतीर्दिव्यैर्भोगैर्जिनः परिरराम ।
वर्षाणां सप्तशतीं न्यूनां विजहार केवली भूत्वा ॥१४२॥

संख्या पन्द्रह थी, विक्रियाऋद्धि-धारी मुनि ग्यारह सौ थे और प्रतिवादियोंके दर्पको नष्ट करनेवाले वादी मुनि आठ सौ, तथा शिक्षक मुनि ग्यारह सौ आठ थे। मुनियोंकी सभामें अठारह हजार मुनि थे तथा आर्यिकाएँ चालीस हजार, और श्रावक एक लाख तथा श्राविकाएँ तीन लाख थीं ॥१२९-१३३॥

वे जिनेन्द्र भगवान् इस तरह भव्य जीवोंको सकलधर्म अर्थात् मुनिधर्म और देशधर्म अर्थात् श्रावक धर्मका उपदेश देते हुए संघके साथ विहार करते थे। और अन्तमें गिरनार पर्वतपर आकर विराजमान हुए ॥१३४॥ वहाँ आषाढ़ शुक्ल सप्तमीके दिन पाँच सौ छत्तीस मुनियोंके साथ मन वचन और काय इन तीन योगोंका निरोधकर रात्रिके पूर्व प्रहरमें ही अयोगिपद अर्थात् मोक्षपद प्राप्त किया। सम्पूर्ण कर्मोंका विनाशकर जिनेन्द्र भगवान्के मोक्ष चले जानेपर वहाँ उस समय सभी इन्द्रोंने आकर अति आदर भावसे नाना प्रकारकी सुगन्धित माला आदिसे भगवान्के शरीरकी पूजा की ॥१३५-१३७॥ अग्निकुमार देवोंके इन्द्रने अपने मुकुट मणिसे उत्पन्न अग्निसे भगवान्के शरीरका अग्नि-संस्कार किया, फिर इन्द्र उसे सुगन्धित जल और अक्षत आदिके साथ (क्षीर सागरके जलमें) समर्पित कर आये ॥१३८॥ इन्द्रने भव्य जीवोंके हितके लिए वहाँ शिलापर अपने वज्रसे भगवान्के लक्षण (चिह्न) की रेखा बना दी। वह पवित्र रेखा आज भी सुशोभित हो रही है ॥१३९॥ इस प्रकार इन्द्रों सहित चारों निकायोंके देव भगवान्के अन्तिम कल्याणककी पूजासे अपने हृदयोंको पवित्रकर स्वर्गलोक चले गये ॥१४०॥ भगवान्के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और मोक्ष इन पाँचों मङ्गल कल्याणोंमें चित्रा नामका नक्षत्र था। उन्होंने कुमारावस्थामें तीन सौ वर्ष तक दिव्य भोग भोगे और कुछ कम सात सौ वर्ष केवली होकर बिताये

वर्षाणां सप्तशतं त्र्यशीतिगुणितं सहस्रमेकं च ।
पञ्चाशदपि च तीर्थं नाथस्याऽभूदविच्छिन्नम् ॥१४३॥

भिन्नाऽञ्जनपुञ्जाभं प्रणीतनिर्वाणसत्पथमथैनम् ।
त्रैलोक्याऽर्चितचरणं नमामि नेमीश्वरं शिरसा ॥१४४॥

एवं मया महात्मा नामावलिकानिबन्धनेन नुतः ।
द्वाविंशो मे दिशतामर्हद्देवः शिवावासम् ॥१४५॥

चरितमिदं श्रवणीयं यो हि समासेन बद्धमार्याभिः ।
श्रावयते च शृणोति च लब्ध्वेव स लप्स्यते सिद्धिम् ॥१४६॥

इत्यरिष्टनेमिचरिते पुराणसंग्रहे भगवन्निर्वाणगमनो नाम
पञ्चमः सर्गः समाप्तः ॥५॥

और एक हजार सात सौ तेरासी वर्षोंतक भगवान्के तीर्थकाल का विच्छेद रहा ॥१४१-१४३॥

मैं उन नेमिनाथ भगवान्को शिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ जिनने कि कर्ममलके समूहको नष्ट कर दिया है, जो निर्वाणरूपी सत्पथके प्रणेता हैं तथा जिनके चरणोंकी तीनों लोक पूजा करता है ॥१४४॥ इस प्रकार मैंने उन महात्माकी नामावली पूर्वक स्तुति की वे बाईसवें तीर्थंकर अर्हन्तदेव मुझे मोक्षनिवास देवें ॥१४५॥ जो कभी संक्षेपसे आर्याछन्दमें रचित इस सुनने योग्य चरितको सुनता और सुनाता है, वह शीघ्र ही मोक्षपद पाता है ॥१४६॥

इस प्रकार पुराणसार संग्रहके नेमिचरितमें भगवान्का निर्वाण-गमन नामक पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

श्रीपार्श्वनाथचरितम्

प्रथमः सर्गः

देवासुरनरैर्वन्द्यं केवलज्ञानसम्पदम् ।
जिनेन्द्रं पार्श्वनामानं वन्दे मोक्षसुखप्रदम् ॥ १ ॥

सुधर्मस्वामिना प्रोक्तं जम्बूनाम्ने महात्मने ।
चरितं पार्श्वनाथस्य भक्त्या वक्ष्ये समासतः ॥ २ ॥

श्रद्धया पापनाशार्थमारभ्य दशमाद् भवात् ।
पुराणं स्फुटशब्दार्थैः कथितं श्रूयतां बुधैः ॥ ३ ॥

द्वीपेऽस्मिन्भारते राष्ट्रे सुरम्ये पौदनापुरे ।
राजाऽरविन्दनामाऽभूदरविन्ददलेक्षणः ॥ ४ ॥

स दीप्त्या भानुवत् कान्त्या चन्द्रवद् गिरिराजवत् ।
स्थैर्येण कामवद्रत्या बुद्ध्या च गुरुसन्निभः ॥ ५ ॥

रूपलावण्यसौभाग्यकलागुणविभूषिता ।
श्यामला तस्य विख्याता कान्ताऽभूद्रतिसन्निभा ॥ ६ ॥

ब्राह्मणो विश्वभूत्याख्यः पुरोधास्तस्य भूपतेः ।
अनुन्दरीत्यभूदस्य ब्राह्मणी चित्तहारिणी ॥ ७ ॥

कमठो मरुभूतिश्च पुत्रावास्तां तयोर्मतौ ।
मरुभूतेरभूज्जाया चारुरूपा वसुन्धरा ॥ ८ ॥

वारुणी कमठस्याऽभूद्भार्या द्विजकुलोद्भवा ।
तेषां काले गते सम्यक्सुखेन सुकृताच्चिरम् ॥ ९ ॥

श्रीपार्श्वनाथचरित

प्रथम सर्ग

मैं पार्श्वनाथ जिनेन्द्रको नमस्कार करता हूँ। वे अनेक देवोंसे वन्दनीय, केवलज्ञान-सम्पन्न तथा मोक्ष-सुखको देनेवाले हैं ॥ १ ॥ गणधर सुधर्मस्वामीने महात्मा जम्बू स्वामीसे भगवान् पार्श्वनाथ-का चरित कहा था। भक्तिवश मैं उसे संक्षेपमें कहता हूँ ॥ २ ॥ दशवें भवसे प्रारम्भ कर इस पुराणको स्फुट शब्दोंमें, पापोंकी शान्तिके लिए ही श्रद्धावश मैंने कहा है। बुद्धिमान लोग इसे सुनें ॥ ३ ॥

इसी जम्बू द्वीपमें भरत क्षेत्रके सुरम्य नामके देशमें पौदनापुर नामका नगर है। वहाँ कमलोंके समान नेत्रवाला अरविन्द नामका राजा था ॥ ४ ॥ वह अपनी प्रभासे सूर्यके समान, कान्तिसे चन्द्रमाके समान, स्थिरतासे मेरु पर्वतके समान, स्नेहसे कामके समान तथा बुद्धिसे बृहस्पतिके समान था ॥ ५ ॥ उसके श्यामला नामसे प्रसिद्ध रानी थी, जो रूप, लावण्य, सौभाग्य, कला तथा गुणोंसे ऐसी मालूम पड़ती थी जैसे रति हो ॥ ६ ॥

उस राजाका विश्वभूति नामका ब्राह्मण पुरोहित था, जिसको चित्त हरनेवाली ब्राह्मणी पत्नीका नाम अनुन्दरी था। उन दोनोंके कमठ और मरुभूमि नामके दो पुत्र थे। मरुभूमिको सुन्दर रूप-वती वसुन्धरा नामकी पत्नी थी तथा कमठको ब्राह्मण कुलमें उत्पन्न वारुणी नामकी पत्नी थी। उन सबका समय पूर्व पुण्यके कारण बहुत समयतक अच्छी तरह सुखसे व्यतीत हुआ ॥७–९॥ विश्व-

मृत्वा सुपुत्रयोः श्रेष्ठं महीपालाऽनुमोदनात् ।
विश्वभूतिः स्वसन्ताने मरुभूतिमतिष्ठिपत् ॥१०॥

वित्त[1]धान्यधनैश्वर्यरूपबुद्धिसमन्वितः ।
वल्लभो भूमिपालस्य मरुभूतिरभूत्सदा ॥११॥

आज्ञप्तुं वज्रधीराऽख्यं नृपं राज्ञा गते सह ।
मरुभूतौ पुरीतोऽन्यविषयं कमठोऽपि च ॥१२॥

पश्चान्निवार्यमाणोऽपि निर्लज्जो बान्धवैः खलु ।
रेमे च वसुन्धरया सार्धं कामेन मोहितः ॥१३॥

युद्धे जित्वाऽरविन्दश्च वज्रधीरं नृपं पुनः ।
आगत्य दुष्टतां श्रुत्वा चुक्रोध कमठस्य सः ॥१४॥

वसुन्धरादुराचाराद्राज्ञा निष्कासितः पुनः ।
तापसानामसौ दीक्षां जगृहे जन्मवर्द्धनीम् ॥१५॥

राज्ञा निवार्यमाणोऽपि मरुभूतिः स्वकर्मणा ।
ज्येष्ठं द्रष्टुं प्रयाति स्म मार्गयंस्तत्प्रदेशकम् ॥१६॥

मरुभूतेर्वरस्नेहात्क्षन्तव्यमिति पादयोः ।
प्रणतस्योत्तमाऽङ्गेऽसौ कमठः क्षिप्तवाञ्छिलाम् ॥१७॥

आर्त्तध्यानेन मृत्वाऽसौ सल्लक्याख्यवने गजः ।
वज्रघोषोऽभवन्नाम्ना बहुकुञ्जरनायकः ॥१८॥

जटानां छेदनं कृत्वा द्रावितस्तापसैश्च सः ।
स्तेनो भूत्वा सह व्याधैर्भ्रान्त्वा युद्धे ममार च ॥१९॥

तस्मिन्नेव वने जातः सर्पः कुक्कुटनामकः ।
कमठोऽनुन्दरी चापि वानरी पापतोऽभवत् ॥२०॥

---

१. 'वित्तं भोगप्रत्यययोः' इति साधुः ।

भूतिने राजाकी सलाहसे, अपनी मृत्युके बाद अपने दोनों पुत्रोंमेंसे योग्य पुत्र मरुभूतिको अपने पदपर रख दिया ॥१०॥ वह मरुभूति भोग, धन-धान्य, ऐश्वर्य, रूप तथा बुद्धिसे राजाको सदा प्यारा था ॥११॥

एक समय, वज्रधीर नामके राजाको दण्ड देनेके लिए, मरुभूति अपने राजाके साथ नगरीसे बाहर दूसरे देश गया हुआ था कि उसके भाई निर्लज्ज कमठने कामके वशीभूत हो, अपने मित्रोंके द्वारा रोके जानेपर भी अपने छोटे भाई मरुभूतिकी पत्नी वसुन्धराके साथ काम सेवन किया ॥१२-१३॥ इधर जब राजा अरविन्द अपने शत्रु वज्रधीर नामक राजाको युद्धमें जीतकर लौटा तो वह कमठकी दुष्टताको सुन उसपर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और वसुन्धराके साथ दुराचार करनेके कारण उसे राज्यसे निकाल दिया। तब उसने संसारको बढ़ानेवाली, पाखण्डी साधुओंकी दीक्षा ले ली ॥१४-१५॥

एक समय मरुभूति, राजासे रोके जानेपर भी अपने कर्मोदयके वशीभूत हो, अपने बड़े भाईको देखनेकी इच्छासे उस स्थानको ढूँढ़ता हुआ वहाँ पहुँचा ॥१६॥ पर ज्यों ही वह बड़े स्नेहके साथ 'क्षमा कीजिए' ऐसा कहता हुआ भाईके पैरोंमें झुका त्यों ही कमठने उसके सिरपर एक चट्टान दे मारी। इससे मरुभूति आर्तध्यानसे मरा और सल्लकी नामके वनमें अनेकों हाथियोंका मुखिया वज्रघोष नामका हाथी हुआ ॥१७-१८॥ कमठके इस निर्दय व्यवहारसे वहाँके तपस्वियोंने उसकी जटाओंको मुड़ाकर आश्रमसे निकाल दिया। वह भी चोर बनकर व्याधों (भीलों) के साथ चोरी करता फिरा और युद्धमें मारा गया ॥१९॥ तथा उसी सल्लकी वनमें कुक्कुट जातिका सर्प हुआ और मरुभूति एवं कमठकी माता अनुन्दरी पापकर्मसे वहाँ ही वानरी हुई ॥२०॥

स्वयम्प्रभगुरोः पार्श्वे ह्यरविन्दनृपोऽपि च ।
सोपानं स्वर्गमोक्षस्य धर्मं जीवहितं सताम् ॥२१॥

श्रुत्वा नरेन्द्रसंज्ञाय राज्यं दत्त्वा स्वसूनवे ।
दीक्षित्वा त्ववधिज्ञानं सम्प्राप तपसः फलात् ॥२२॥

दर्शनज्ञानचारित्र्यं तपोभिः सह सन्ततम् ।
चरित्वा सुचिरं धीमानरविन्दमहामुनिः ॥२३॥

सम्मेदं वन्दितुं सार्धं सार्थेन गतवानसौ ।
सल्लक्याख्यमहाटव्यां सार्थोऽपि व्यमुचन्महान् ॥२४॥

दृष्ट्वा सः कुञ्जरः सार्थमश्वगोगर्दभान् नरान् ।
खाद्यान् हत्वा बहून् सार्थं द्रावयामास सर्वतः ॥२५॥

उपसर्गान्तकं दृष्ट्वा यावन्नाशं प्रयाति सः ।
आहारं च शरीरं च तावत्त्यक्त्वा मुनीश्वरः ॥२६॥

कायोत्सर्गः स्थितः सम्यक् धर्मध्यानपरायणः ।
महाधैर्यं गजो दृष्ट्वा पुण्याज्जातिस्मरोऽभवत् ॥२७॥ युग्मम् ।

कृपया वज्रघोषस्य धर्मं चक्षौ मुनीश्वरः ।
उत्कृष्टश्रावको जातः श्रुत्वा धर्मं सुखाकरम् ॥२८॥

पापात्तिर्यग्गतिं प्राप्य रोधैश्च क्षुत्तृपाभयैः ।
दुःखमुग्रं चिरं कालमज्ञानेनास्रवानहम् ॥२९॥

इति मत्वाऽभवत्त्रस्तः सर्वं देशव्रतैः सह ।
सम्यक्त्वं प्रोपधैः सम्यक् चचार सुचिरं गजः ॥३०॥

प्रासुकाशनपानाभ्यां कृशाङ्गः कुञ्जरोत्तमः ।
वेगवत्यास्तटे पङ्कमुत्तरीतुं न शक्तवान् ॥३१॥

इधर राजा अरविन्दने भी, स्वयंप्रभ मुनिराजके पास स्वर्ग और मोक्षकी सीढ़ीके समान, एवं प्राणियोंके हितकारी सत्पुरुषोंके धर्मको सुनकर तथा अपने नरेन्द्र नामके पुत्रको राज्य दे, जिन-दीक्षा ले ली और तपस्याके फलसे उसे अवधिज्ञान प्राप्त हुआ ॥२१-२२॥ वे बुद्धिमान् महामुनि अरविन्द तपके साथ सम्य-ग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका निरन्तर बहुत समयतक आराधन करते रहे ॥२३॥ फिर एक समय संघके साथ सम्मेद-शिखरकी वन्दना करने चले। रास्तेमें सल्लकी नामके घोर जंगलमें उनका संघसे साथ छूट गया। वहाँ उस वज्रघोष नामके हाथीने संघको देखकर उसके घोड़े, बैलों तथा गदहोंको मार डाला तथा बहुत-सी खाद्य-सामग्री नष्ट कर दी। इससे संघ यहाँ-वहाँ बिखर गया ॥२४-२५॥ उन मुनिराजने इस प्रकारके घोर उपसर्गको देखकर प्रतिज्ञा की कि जबतक उसका अन्त नहीं होता तबतक आहार व शरीरसे ममत्वका त्याग है। और कायोत्सर्ग धारण-कर धर्मध्यानमें अच्छी तरह लवलीन हो गये। तब उस हाथीको उन महाधीर मुनिको देखकर पुण्य कर्मके उदयसे जातिस्मरण हो गया ॥२६-२७॥ उन मुनिराजने वज्रघोषपर दयाकर धर्मो-पदेश दिया। और वह भी सुखदायक धर्मश्रवण कर उत्कृष्ट श्रावक बन गया ॥२८॥ तथा सोचने लगा कि मैंने पापके कारण यह तिर्यञ्च गति पाई है जहाँ अज्ञानवश भूख, प्यास और भयकी बाधाओंसे चिरकालतक बहुत दुःख भोगे हैं ॥२९॥ यह समझकर वह संसारसे भयभीत हो गया और श्रावकके सभी व्रतोंके साथ सम्यग्दर्शन धारण कर प्रोषधोपवास करता हुआ वह हाथी विच-रण करने लगा ॥३०॥

एक समय प्रासुक भोजन पानसे क्षीण शरीर वह हाथी पानी पीनेके लिए वेगवती नदीके किनारे गया पर वहाँ ही कीचड़में

क्षीणवेषं तकं दृष्ट्वा सर्पः कुक्कुटसंज्ञकः ।
जघान पूर्ववैरेण रुषा तमपि वानरी ॥३२॥

कृत्वा सल्लेखनां नागो धर्मध्यानपरायणः ।
इन्द्रचापस्य भिन्नाभाः निरभ्रे गगने यथा ॥३३॥

सम्भवन्ति तथा सद्यः सम्भूयाऽवधिना सह ।
स्वयम्प्रभविमानेऽभूत्सहस्रारे सुरोत्तमः ॥३४॥

मूत्रादिहीनसद्देहो निर्मलाऽम्बरभूषणः ।
नित्ययौवनसम्पन्नो नीरोगत्वेन संयुतः ॥३५॥

सम्यक्त्वं चेन्द्रियैरिष्टसौख्यान्यनुभवन् सदा ।
हीनोऽवमृत्युना रेमे पुण्यैः पूर्वभवार्जितैः ॥३६॥

दश[1]सप्ताऽर्णवं कालं शशिप्रभसुरेश्वरः ।
तत्राऽष्टभिर्गुणैर्युक्तो देवीभिर्बुभुजे सुखम् ॥३७॥

पञ्चमे नरके भूत्वा कुक्कुटोरगकोऽपि च ।
दश सप्ताऽर्णवं कालं दुःखं तु बुभुजे महत् ॥३८॥

भग्नः पिष्टो हतो दग्धो नारकैश्च विपाटितः ।
ताडितच्छिन्नभिन्नश्च प्रापद् दुःखं सदाऽघतः ॥३९॥

सर्पशार्दूलसिंहाद्यैर्भक्षणात्कुट्टनात् वनैः ।
उल्मुकैस्ताडनाद् घोरदन्तानां दारणात्तथा ॥४०॥

शिरसः क्रकचैश्छेदात्तीव्रमुत्पाटनात्पुनः ।
जिह्वायाः सन्ततं दुःखं बुभुजेऽर्जितपापतः ॥४१॥

---

१. षोडशाब्धि इति उत्तरपुराणे ।

फँस गया और उसमेंसे निकल न सका ॥३१॥ क्षीणवेष उस हाथीको देखकर कुक्कुट नामके सर्पने पूर्व वैरके कारण क्रोध-पूर्वक उसे काट लिया और वानरीने उस सर्पको काट दिया॥३२॥ तब धर्मध्यानमें लवलीन हो उस हाथीने सल्लेखनापूर्वक मरण किया और जिस प्रकार मेघरहित आकाशमें इन्द्रधनुषके नाना रंग सहसा प्रकट हो जाते हैं उसी तरह अवधिज्ञानसे संयुक्त हो वह सहस्रार स्वर्गके स्वयम्प्रभ विमानमें उत्तम देव हुआ। वहाँ उसकी देह मूत्रादिसे रहित थी तथा वह स्वच्छ आभूषण पहने हुए था। उसका शरीर सदा यौवनयुक्त एवं नीरोग था। इन्द्रियोंसे इष्ट सुखोंका अनुभव करता हुआ वह सम्यक्त्वसम्पन्न जीव अकाल मृत्युसे रहित था तथा पूर्व जन्ममें अर्जित पुण्यके कारण सुखपूर्वक रमण करने लगा ॥३३–३६॥ अणिमा आदि आठ गुणोंसे युक्त यह शशिप्रभ नामका देव, देवियोंके साथ सुख भोगता हुआ सत्तरह सागर तक वहाँ निवास किया ॥३७॥

कुक्कुट नामका सर्प भी वहाँसे मरकर पाँचवें नरकमें गया और वहाँ सत्तरह सागर तक अनेक प्रकारके दुःख भोगता रहा ॥३८॥ वहाँ नारकी लोग उसके अङ्ग-भङ्ग करते, उसे पीस डालते, मार डालते, जला देते एवं फाड़ डालते थे। इस तरह अपने पापकर्मके उदयसे वह निरन्तर मारा पीटा तथा छिन्न-भिन्न होता हुआ अनेक दुःख पाने लगा ॥३९॥ वहाँ उसे सर्प, शार्दूल और सिंह आदि खा जाते थे तथा घनोंसे कूटा जाता था, जलती हुई लकड़ी (लूकाठों) से मारा जाता था तथा बड़े-बड़े दाँतोंके बीच उसके टुकड़े-टुकड़े किये जाते ते। आरेसे उसका सिर छेदा जाता था तथा जीभ उखाड़ ली जाती थी; इसलिए पूर्व संचित पापोंसे उसने निरन्तर अनेक दुःख भोगे ॥४०–४१॥

उधर वह शशिप्रभ देव, सहस्रार स्वर्गसे च्युत हो, पुष्करार्ध

पुष्करद्वीपपूर्वस्मिन्विदेहे रजताऽचले ।
विषये मङ्गलावत्यां तिलोत्तमपुरं त्वभूत् ॥४२॥

विद्युद्वेगोऽभवत्खेन्द्रः खेचरी तस्य विश्रुता ।
विद्युद्वेगा सहस्राराच्च्युत्वा देवः शशिप्रभः ॥४३॥

रश्मिवेगोऽभवत्पुत्रस्तयोर्विख्यातसद्गुणः ।
रूपलावण्यकान्तित्वकलागुणसमन्वितः ॥४४॥

वायुवेगेति च ख्याता तस्य देवी तया सह ।
भोगाननुबभूवेष्टान् सुरवद् देवकन्यया ॥४५॥

यशोधरगुरोः पार्श्वे विद्युद्वेगमहीपतौ ।
श्रुत्वा धर्मं सुनिर्वेदाद्राज्यं दत्त्वा स्वसूनवे ॥४६॥

निष्क्रान्ते रश्मिवेगोऽपि भुक्त्वा राज्यश्रियं चिरम् ।
श्रेष्ठं गुणधरं नाम्ना श्रित्वाऽऽचार्यं तपोऽधिकम् ॥४७॥

अर्चयित्वा वरं धर्मं श्रुत्वा निर्वेदमागतः ।
दत्त्वा सुताय राज्यं स्वं निष्क्रान्तो बहुभूमिपैः ॥४८॥

कृत्स्नव्रतानि संगृह्य पञ्चाचारे स्वशक्तितः ।
चचार सुचिरं पुण्यादधीत्य परमागमम् ॥४९॥

अथ कुक्कुटसर्पोऽपि पुष्करद्वीपपर्वते ।
हेमाऽऽख्ये नरकाच्च्युत्वा भीमस्त्वजगरोऽभवत् ॥५०॥

रश्मिवेगमुनिर्धीमान् घोरवीरतपश्चरन् ।
तस्मिन्नेव गिरौ सम्यक्कायोत्सर्गं समास्थितः ॥५१॥

तं दृष्ट्वा सन्मुनिं धीरं धर्मध्यानपरायणम् ।
क्षुधया चापि वैरेण सहसाऽजगरोऽगिलत् ॥५२॥

सम्यक् क्षमापरो भूत्वा कृत्वा संन्यसनं परम् ।
आराध्याऽऽराधनां चापि देवः कल्पेऽच्युतेऽभवत् ॥५३॥

द्वीपके पूर्व विदेहमें विजयार्ध पर्वतके मंगलावती देशमें, तिलोत्तम-पुरके राजा विद्युद्वेग विद्याधर और उसकी रानी विद्युद्वेगा विद्या-धरीसे रश्मिवेग नामका पुत्र हुआ। वह अपने उत्तम बलके लिए प्रसिद्ध था तथा रूप, लावण्य, शोभा, कला आदि गुणोंसे युक्त था ।।४२-४४।। उसकी रानीका नाम वायुवेगा था। उसके साथ वह नाना प्रकारके इष्ट भोग भोगता था जैसे कि देवाङ्गनाओंके साथ देव लोग भोगते हैं ।।४५।।

एक समय राजा विद्युद्वेगने यशोधर नामक मुनिसे धर्मोपदेश सुनकर संसारसे विरक्त हो अपने पुत्रको राज्य देकर दीक्षा ले ली। रश्मिवेगने भी बहुत समयतक राज्य-लक्ष्मीका उपभोग कर, एक समय गुणधर नामके एक श्रेष्ठ तपस्वी मुनिराजके पास जाकर उनकी पूजा की और उनसे धर्मोपदेश सुनकर वह विरक्त हो गया तथा अपने पुत्रको राज्य देकर बहुतसे राजाओंके साथ दीक्षित हो गया ।।४६-४८।। तथा मुनियोंके महाव्रतोंको धारण कर और पुण्योदयसे द्वादशांग वाणीका अध्ययन कर, अपनी शक्तिपूर्वक पञ्च आचारों का पालन करता हुआ बहुत समयतक विचरण करने लगा ।।४९।।

इधर वह कुक्कुट सर्पका जीव नरकसे निकलकर पुष्करार्ध द्वीपके हेम पर्वतपर एक भयङ्कर अजगर हुआ ।।५०।। एक समय वे प्रज्ञावान् रश्मिवेग मुनिराज घोर वीरतपस्या (सर्वतोभद्र आदि व्रत) करते हुए उसी पर्वतपर कायोत्सर्ग धारण कर निश्चल भावसे खड़े थे।।५१।। उस समय वहाँ धर्मध्यानमें लवलीन उन धैर्य-शाली मुनिराजको उस अजगरने देखा तथा भूखसे और पूर्व जन्म-के बैरके कारण उन्हें एकदम निगल गया ।।५२।। वे मुनिराज उस समय उत्तम क्षमासे युक्त थे तथा अच्छी तरह संन्यास धारणकर चारों आराधनाओंका आराधन कर अच्युत स्वर्गमें देव हुए।।५३।। वहाँ उनका नाम विद्युत्प्रभ देव था जो शुभंकर विमानका स्वामी था जिसकी बाईस सागरकी आयु थी; तथा उत्तम तपके कारण

शुभङ्करविमानेशो नाम्ना विद्युत्प्रभः सुरः ।
द्वाविंशतिसमुद्रायुर्भूत्वा सत्तपसः फलात् ॥५४॥
अष्टाभिश्च गुणैः सम्यग् अणिमाद्यैः समायुतः ।
अप्सरोभिः प्रियान्भोगान् बुभुजे देवपूजितः ॥५५॥
अर्जयित्वा महत्पापं बृहद्गात्रोरगोऽपि च ।
नरके पञ्चमे भूत्वा दश सप्त च सागरान् ॥५६॥
क्षेत्रजादि महादुःखं दुर्गन्धिक्षुत्तृषाभयः ।
छेदनादहनाद्यं च बुभुजे तत्र सन्ततम् ॥५७॥
जम्बूद्वीपविदेहेषु सीतोदाया उदक्तटे ।
विषये गन्धमालिन्यां वीतशोकाऽभवत्पुरी ॥५८॥
वज्रधीरोऽभवद्राजा विजया तस्य वल्लभा ।
कल्पाच्च्युत्वाऽच्युता देवः पुण्यात्पुत्रस्तयोरभूत् ॥५९॥
वज्रनाभिरसौ नाम्ना रूपसौभाग्यसद्गुणैः ।
शुक्लपक्षेन्दुवत्सार्द्धं सुखेन ववृधे प्रियः ॥६०॥
सकलविषया राज्यं चायुर्यशो बलं बुद्धयः
सुरपतिधनुर्मेघोल्कावत्सदा खलु नश्वराः ।
कटुकफलदाः पाके भोगास्तथापि च दुर्लभाः
इति वरमतिः सम्यग्ध्यात्वा मुहुर्मुहुरादरात् ॥६१॥
धर्मं संश्रुत्य सम्यग्जिनवरगदितं मोक्षसत्सौख्यहेतुं
प्राव्राजीद्वज्रवीरो बहुनृपसहितो भोगनिर्वेदयुक्तः ।
पुत्रं सद्वज्रनाभिं प्रवरगुणयुतं स्थापयित्वा स्वराज्ये
पुण्याढ्यानां हि राज्यं भवति धनसुखं ज्ञानसौख्यं तपश्च ॥६२॥

इति पार्श्वनाथचरिते पुराणसारसंग्रहे वज्रनाभिराज्यलाभो नाम
प्रथमः सर्गः समाप्तः ॥१॥

अणिमा आदि आठ ऋद्धियोंसे युक्त था; एवं देवोंसे पूजित हो देवाङ्गनाओंके साथ उसने नाना प्रकारके प्रिय भोगोंको भोगा ॥५४–५५॥

उस विशालकाय सर्पने ऐसा कर बहुत बड़ा पाप क ाया और पाँचवें नरकमें फिर जाकर सत्तरह सागरकी आयु पाई ॥५६॥ वहाँसे उसने निरन्तर ही नरक सम्बन्धी क्षेत्रज आदि महादुःखोंको, एवं दुर्गन्धि, भूख, प्यास, भय, छेदन, भेदन, दहन आदि कष्टोंको भोगा ॥५७॥

इधर अच्युत स्वर्गसे च्युत हो वह देव पुण्योदयसे इसी जम्बूद्वीपके विदेह क्षेत्रमें सीतोदा नदीके उत्तर तटपर गन्धमालिनी देशकी वीतशोका नगरीमें, राजा वजधीर और रानी विजयासे पुत्र हुआ। उसका नाम वज्रनाभि था तथा रूप, सौभाग्य आदि सद्गुणोंसे युक्त था तथा सबोंको प्यारा वह शुक्ल पक्षके चन्द्रमाके समान सुखपूर्वक बढ़ने लगा ॥५८–६०॥

एक समय उत्तम मतिवाले राजा वज्रवीरने संसारके सभी विषय-भोगोंको–राज्य, आयु, यश, शक्ति एवं बुद्धि आदिको–इन्द्रधनुष, शरत्कालीन मेघ तथा उल्कापातके समान शीघ्र ही विनाशशील और भोगोंको विपाककालमें कटु फल देनेवाला एवं प्राप्त करनेमें दुर्लभ मानकर वैराग्य भावनाका श्रद्धासे बार बार अच्छी तरह आराधन किया। तथा मोक्षके सच्चे सुख देनेवाले, जिनेन्द्र भगवान्से कहे गये धर्मोपदेशको सुनकर भोगोंसे विरक्त हो गया और अपने उत्तम गुणवाले श्रेष्ठ पुत्र वज्रनाभिको राज्यपद देकर अनेक राजाओंके साथ दीक्षा ले ली। ठीक ही है कि पुण्यवानोंको ही राज्य, धनसुख, ज्ञानसुख एवं तप मिलता है ॥६१–६२॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रहके पार्श्वनाथचरितमें वज्रनाभिको राज्य-प्राप्ति नामका प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ॥

द्वितीयः सर्गः

मण्डलीकनृपः पूर्वं वज्रनाभिरभूत्पुनः ।
सम्प्राप्य चक्रवर्त्तित्वं राज्यं चक्रे सुपुण्यतः ॥१॥

चक्रं खड्गो मणिश्चर्म दण्डश्छत्रं च काकिणी ।
सेनानी च गृहीभाश्वयोषित्तक्षपुरोधसः ॥२॥

कालः पद्ममहाकालो नैसर्प्यः पाण्डुपिङ्गलौ ।
सर्वरत्नमहाशंखौ निधयो माणवोऽपि च ॥३॥

चतुर्दशैव रत्नानि निधयश्च नवाऽपि च ।
षोडशैव सहस्राणि गणदेवाश्च संश्रिताः ॥४॥

षण्णवत्या सहस्रैश्च देवीभिर्नित्यसेवितः ।
द्वात्रिंशद्भिः सहस्रैश्च रेमेऽसौ राजभिस्तथा ॥ ५ ॥

दशाङ्गभोगसंयुक्तं कृत्वा राज्यं ततोऽन्यदा ।
वृक्षनाशादनित्यत्वं विदित्वा भोगसम्पदाम् ॥ ६ ॥

क्षेमङ्करजिनस्याऽन्ते श्रुत्वा धर्मं महागुणम् ।
दत्त्वा राज्यं गुणाढ्याय सूनवे वज्रबाहवे ॥ ७ ॥

निर्वेदात्सह दीक्षित्वा भूमिपैः पञ्चभिः शतैः ।
सम्यक्त्वज्ञानचारित्रक्षमादमयुतोऽभवत् ॥८॥

द्विषड्विधं तथा कुर्वन् विहृत्य सुचिरं महीम् ।
विपुलाऽख्यगिरौ पश्चात्कायोत्सर्गं प्रपेदिवान् ॥९॥

निर्गतो नरकाद् घोराद् बृहत् गात्रोरगश्चिरम् ।
भ्रान्त्वा संसारकान्तारे पश्चात्स विपुलाऽचले ॥१०॥

द्वितीय सर्ग

वह वज्रनाभि पहले मण्डलीक राजा था। फिर अपने विशेष पुण्यसे चक्रवर्ती पद पा राज्य करने लगा ॥ १ ॥ उस चक्रवर्तीको निम्न प्रकारकी विभूतियाँ उस समय प्रकट हुईं। ये चौदह रत्न थे जैसे कि चक्र, तलवार, मणि, चर्म, दण्ड, छत्र और काकिणी (ये सात अजीव रत्न) तथा सेनापति, गृहपति, गजपति, अश्व, स्त्री, स्थपति और पुरोहित (ये सात जीव रत्न)। नव निधियाँ थीं जैसे कि काल, पद्म, महाकाल, नैसर्प्य, पाण्डु, पिङ्गल, सर्वरत्न, महाशंख और माणव। वह चक्रवर्ती सोलह हजार गण देवताओं और छ्यानबे हजार रानियोंसे नित्य सेवित था तथा बत्तीस हजार राजाओंके साथ आनन्दसे रहता था ॥२–५॥ तथा दश प्रकारके भोगोंसे युक्त हो राज्य करता रहा। एक समय एक वृक्षका नाश होते देख उसे संसारकी भोगोपभोग सम्पत्तियोंमें अनित्य भावनाका बोध हो गया ॥ ६ ॥ और क्षेमङ्कर मुनिराजके पास महागुणशाली धर्मोपदेशको सुनकर अपने गुणी पुत्र वज्र-बाहुको राज्य दे दिया और विरक्त होकर पाँच सौ राजाओंके साथ दीक्षा ले ली और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र एवं क्षमा और दमसे युक्त हो गया। उस वज्रनाभिने १२ प्रकार-का तप कर बहुत समयतक पृथिवीमें विहार किया। एक समय विपुल नामके पर्वतपर कायोत्सर्ग धारण कर खड़ा हो गया ॥७–९॥

इधर वह अजगरका जीव भी भयङ्कर नरकसे निकलकर भववनमें घूमता फिरा और उसी विपुल पर्वतपर अति निन्दित

व्याधः कुरङ्गको नाम्ना भूत्वा निन्दितरूपकः ।
तं दृष्ट्वा सन्मुनिं वैरान्निजघान बृहच्छरैः ॥११॥

क्षमापरो महाधैर्यो धर्मध्यानरतो मुनिः ।
कृत्वा संन्यसनं तस्मिन्नाराधितचतुष्टयः ॥१२॥

ग्रैवेयके सुभद्राख्ये ललिताङ्गः सुरोऽभवत् ।
सार्धं त्ववधिना पुण्यात्सप्तविंशतिसागरान् ॥१३॥

कल्पवासितदेवानामनन्तगुणितं सुखम् ।
प्राप्याऽहमिन्द्रतां सौख्यं बुभुजे कामवर्जितः ॥१४॥

निष्कारुण्यादसौ व्याधः सप्तमे नरके भृशम् ।
बुभुजे तीव्रदुःखानि सप्तविंशतिसागरान् ॥१५॥

पापान्निरन्तरं घोरं क्षेत्रजं देहसम्भवम् ।
परस्परोद्भवं दुःखं बुभुजे चित्तजं च सः ॥१६॥

जम्बूद्वीपविदेहेषु सीताया उत्तरे तटे ।
देशेऽभवत्सुकच्छायां पुरं पद्मपुरं वरम् ॥१७॥

वज्रबाहुनरेन्द्रोऽस्मिन्देवी तस्य प्रभङ्करा ।
अहमिन्द्रस्ततश्च्युत्वा पुण्यात्पुत्रस्तयोरभूत् ॥१८॥

हेमाङ्गद इति ख्यातो रूपसौभाग्यसद्गुणैः ।
सुदन्ता तस्य कान्ताऽऽसीद्रूपेण रतिसन्निभा ॥१९॥

दिव्यान्भोगांस्तया सार्द्धं पञ्चेन्द्रियमनःप्रियान् ।
बुभुजे सुदृशा सार्धं सुरवत् पुण्यतः सदा ॥२०॥

प्राव्राजीद्वज्रबाहुश्च राज्यं दत्त्वा स्वसूनवे ।
हेमाङ्गदोऽपि सद्राज्यं कृत्वा मेघविनाशनात् ॥२१॥

विषयाणामनित्यत्वमन्यदा मेघफेनवत् ।
मत्वा विपाककाटुक्यं किम्पाकफलवच्च सः ॥२२॥ युग्मम् ।

रूपवाला कुरङ्ग नामका भील हुआ तथा उन मुनिको देखकर वैर भावसे बड़े पैने बाणोंसे उन्हें छेद किया ॥१०-११॥ तब क्षमाशील, महाधैर्यवान्, धर्मध्यानमें लवलीन उन मुनिराजने संन्यासको धारण कर चार आराधनाओंका आराधन किया और प्राण छोड़कर सुभद्र नामके मध्यम ग्रैवेयकमें ललिताङ्ग नामका देव हुआ। और पुण्योदयसे अवधिज्ञानसे संयुक्त हो सत्ताईस सागर तक कल्पवासी देवोंसे अनन्तगुणे सुखको पाकर वासनारहित अहमिन्द्र पदका सुखपूर्वक भोग किया ॥१२-१४॥ तथा वह भील भी करुणाहीनताके कारण सातवें नरकमें गया और सत्ताईस सागर तक अनेक प्रकारके तीव्र भोग भोगे। वहाँ उसे सदैव, क्षेत्र सम्बन्धी, देहसे उत्पन्न, मानसिक एवं आपसमें दूसरे नारकियोंसे उत्पन्न नाना प्रकारके घोर दुःख भोगने पड़े ॥१५-१६॥

अथानन्तर जम्बू द्वीपके विदेह क्षेत्रमें सीता नदीके उत्तर तट-पर सुकच्छा नामके देशमें पद्मपुर नामका उत्तम नगर था। वहाँ स्वर्गसे च्युत होकर वह अहमिन्द्र, पुण्योदयसे राजा वज्रबाहु और रानी प्रभंकराका पुत्र हुआ ॥१७-१८॥ वह अपने रूप, सौभाग्य एवं सद्गुणोंसे युक्त हेमाङ्गद नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसकी रानीका नाम सुदत्ता था जो कि रूपमें रतिके समान थी ॥१९॥ उसने पुण्योदयसे मनको प्यारे पाँचों इन्द्रियोंके नाना दिव्य भोगोंको उस सुन्दर नेत्रवालीके साथ ऐसे भोगता रहा जैसे कोई देव भोगता है ॥२०॥

कुछ समय बाद राजा बज्रबाहुने अपने पुत्र हेमाङ्गदको राज्य देकर दीक्षा ले ली। हेमाङ्गदने भी अच्छी तरह राज्य कर एक समय बादलको नष्ट होते देख सारे विषय-भोगोंको मेघ व जलबुद्बुदके समान क्षणभङ्गुर जान, किम्पाकके फलके समान इन्द्रिय विषयोंके

गुरोः समुद्रगुप्तस्य श्रुत्वा धर्ममुपान्तिके ।
संसारस्य क्षयं कर्तुं वाञ्छन् दत्त्वा स्वसूनवे ॥२३॥

राज्यं विमलनाथाय राजभिः पञ्चभिः शतैः ।
सार्धं जग्राह सद्दीक्षां सर्वसङ्गविवर्जिताम् ॥२४॥ युग्मम् ।

महाव्रतानि शीलानि गुणानथ च भावनाः ।
सङ्गृह्य सर्वशक्त्याऽसौ वर्तते स्म मुनीश्वरः ॥२५॥

समितिर्गुप्तिसद्ध्यानान् गृहीत्वा समतां तदा ।
दण्डान् कषायशल्यादीन् जित्वा पञ्चेन्द्रियाण्यपि ॥२६॥

दर्शनज्ञानचारित्रद्विषड्विधतपःशुचः ।
सर्वशक्त्या चरित्वाऽसाववधिज्ञानमाप्तवान् ॥२७॥

आदित्यद्वादशाङ्गानि सर्वतोभद्रमुत्तमम् ।
सिंहनिष्क्रीडितादीनि चकारोरुतपांसि च ॥२८॥

सम्यग्दर्शनसंशुद्ध्या विनयेन च शक्तितः ।
वैय्यावृत्येन सङ्घस्य भक्त्या च परमेष्ठिनाम् ॥२९॥

इत्येवमादिभिः सम्यक् पुनः षोडशकारणैः ।
बबन्ध तीर्थकृन्नाम नृसुराऽसुरकम्पनम् ॥३०॥ युग्मम् ।

दीर्घकालं विहृत्याऽसौ सर्वशक्त्या तपश्चरन् ।
वने क्षीरवने भीमे भूताद्रौ सच्छिलातले ॥३१॥

कायोत्सर्गस्थितो धीरो धर्मध्यानपरोऽथ च ।
व्याधोऽपि नरकाच्च्युत्वा क्षीराऽटव्यां तु तद्गिरौ ॥३२॥

पापात्पापार्जनं कर्तुं रौद्ररूपोऽभवद्धरिः ।
तं दृष्ट्वा स मुनिं वैरादघसत्क्रोधनोऽवशः ॥३३॥

ध्यायन् पञ्चनमस्कारं सर्वशक्त्या निरन्तरम् ।
कृत्वा संन्यसनं सम्यगाऽराध्याऽराधनां मुनिः ॥३४॥

विपाककी कटुता समझ गया। तथा समुद्रगुप्त मुनिराजके समीप धर्मोपदेश सुनकर भवभ्रमणको मिटानेकी इच्छासे अपने पुत्र विमलनाथको राज्य देकर पाँच सौ राजाओंके साथ सब प्रकारका परिग्रह छोड़कर जिनदीक्षा ले ली ॥२१–२४॥ और महाव्रत, शीलव्रत, उत्तम गुण तथा भावनाओंका अपनी शक्तिसे अभ्यास करने लगा ॥२५॥ तथा समिति, गुप्ति, उत्तम ध्यान और समताका आलम्बन ले, क्लेश पैदा करनेवाले क्रोधादि कषायों, माया, मिथ्या एवं निदान इन तोन शल्यों और पञ्चेन्द्रियोंको जीता (वशमें किया) तथा सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्रसे युक्त हो अपनी शक्तिपूर्वक १२ प्रकारके तपको तपकर अवधिज्ञान प्राप्त किया। इसके बाद आदित्यव्रत, द्वादशांगव्रत, उत्तम सर्वतोभद्र तथा सिंहनिष्क्रीडित आदि उच्च तप करने लगा ॥२६–२८॥ फिर दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शक्तिसे त्याग तथा संघकी वैयावृत्य, पञ्चपरमेष्ठियोंकी भक्ति आदि दस प्रकारकी सोलहकारण भावनाओंको आराधन कर, नरलोक, सुरलोक और असुरलोक अर्थात् तीनों लोकोंको कम्पन पैदा करनेवाली तीर्थंकर नामकी प्रकृतिका बन्ध किया ॥२९–३०॥ फिर वे मुनिराज घोर तपस्या करते हुए बहुत कालतक विहार करते रहे और तत्पश्चात् भूताद्रि पर्वतके क्षीरवन नामक भयंकर जंगलमें एक बड़ी शिलाके ऊपर कायोत्सर्ग धारण कर धर्मध्यानमें लवलीन हो गये।

इधर वह भील भी नरकसे निकलकर उसी पर्वतके क्षीरवनमें पापसे पापको कमाता हुआ भयङ्कर रूपवाला सिंह हुआ। और मुनिको देखकर पूर्व वैरके कारण क्रोधसे आपेके बाहर हो उन्हें खा गया ॥३१–३३॥ उन मुनिने अपनी पूरी शक्तिसे पञ्चनमस्कार मन्त्रका ध्यान किया और संन्यास धारण कर चारों आराधनाओंका अच्छी तरह आराधन किया ॥३४॥ तथा शरीर त्यागकर

भूत्वा प्राणतकल्पेन्द्रो विंशत्यर्णवजीवितः ।
बुभुजे रम्यं सत्सौख्यं सन्ततं सत्तपःफलात् ॥३५॥

सिंहोऽपि च महत्पापमर्जयित्वा स्वकर्मणा ।
चतुर्थनरके भूत्वा दशसागरजीवितः ॥३६॥

दहनताडनच्छेदभेदतक्षणभक्षणैः ।
बुभुजे दुःखमत्यन्तं नारकेभ्यो निरन्तरम् ॥३७॥

जम्बूवृक्षाङ्किते द्वीपे दक्षिणे भारते शुभे ।
काशीदेशे भुवि ख्याते स्वर्गलोकनिभे सदा ॥३८॥

श्वेतप्रासादसङ्कीर्णा विद्वज्जनसमावृता ।
नाकलोकपुरीवाभूद् वाराणस्यमितापुरी ॥३९॥

विश्वसेनोऽभवद्राजा शक्तित्रयसमन्वितः ।
विश्रुतः शक्रवद् विद्वान् युतो बलविभूतिभिः ॥४०॥

ब्रह्मदत्तेत्यभून्नाम्ना तस्य कान्ताऽतिविश्रुता ।
शचीव रूपकान्तित्वकलाशीलगुणादिभिः ॥४१॥

षट्सु मासेषु शेषेषु प्राणतेन्द्रस्य जीविते ।
वस्त्राभरणसन्मालासुगन्धधनवृष्टिभिः ॥४२॥

विबुधाः पूजयामासुर्गुरोस्तस्य दिनं प्रति ।
काले त्वित्थं गते भोगैर्जिनगुर्वोः स पुण्यतः ॥४३॥ युग्मम् ।

ब्रह्मदत्ताऽन्यदा हर्म्ये सम्यक् श्रीभिरुपासिता ।
सुखं शय्यातले सुप्ता निशान्ते पुण्यतः शुभान् ॥४४॥

ददर्श षोडशस्वप्नान् नागेन्द्रं वृषभं हरिम् ।
श्रियं दामद्वयं चन्द्रं सूर्यं मीनद्वयं पुटौ ॥४५॥

प्राणत स्वर्गका इन्द्र हुआ जहाँ उसकी आयु बीस सागरकी थी। वहाँ उसने अपने उत्तम तपके फलस्वरूप निरन्तर मनोहर सुख भोगे ॥३५॥ सिंहने भी अपने इस खोटे पापके कारण बहुत पापोंका संचय किया तथा चौथे नरकमें उत्पन्न हुआ जहाँ उसकी दश सागरकी आयु थी ॥३६॥ वहाँ उसने हमेशा दूसरे नारकियोंसे जलाना, पीटना, छेदन, भेदन, काटना और भक्षण आदि कार्योंसे बड़े-बड़े दुःख पाये ॥३७॥

अथानन्तर जम्बू वृक्षसे सुशोभित इसी जम्बू द्वीपके दक्षिण भागमें शुभ भारत क्षेत्रमें स्वर्गलोकके समान विश्वमें विख्यात काशी नामका देश है। वहाँ श्वेत महलोंसे युक्त तथा विद्वज्जनोंसे भरी हुई, दूसरी स्वर्गपुरी—अमरावती—के समान वाराणसी नामकी एक बड़ी भारी नगरी थी ॥३८–३९॥ वहाँ विश्वसेन नामका राजा था जो तीन शक्ति प्रभुत्व, मन्त्र और उत्साहसे युक्त तथा बलविभूति आदिसे सम्पन्न वह विद्वान् राजा इन्द्रके समान प्रसिद्ध था ॥४०॥ उसकी रानीका नाम ब्रह्मदत्ता था, जो अपने रूप, कान्ति, कला, शील आदि गुणोंसे इन्द्राणीके समान विख्यात थी ॥४१॥ इधर प्राणत स्वर्गके इन्द्रके जीवनकालके जब छह माह शेष रह गये तब देवता जिन भगवान्के भावी माता-पिताकी प्रतिदिन वस्त्र, आभूषण, उत्तममाला, सुगन्धित द्रव्य तथा धन आदिकी वर्षासे पूजा करने लगे। इस प्रकार जिन भगवान्के माता-पिताका काल पुण्य प्रभावसे सुखपूर्वक बीतने लगा ॥४२–४३॥

एक समय श्री आदि देवियोंसे अच्छी तरह सेवित ब्रह्मदत्ता रानी अपने महलमें सुखपूर्वक शय्यापर सो रही थीं कि रात्रिके अन्तिम प्रहरमें उसने पुण्योदयसे ये शुभ सोलह स्वप्न देखे—१ गजपति, २ वृषभ, ३ सिंह, ४ लक्ष्मी, ५ दो मालाएँ, ६ चन्द्रमा,

पद्मखण्डं समुद्रं च सिंहपीठं विमानकम् ।
भवनं रत्नराशिं च धूमहीनं च पावकम् ॥४६॥ त्रिकम् ।
इत्येतान् षोडशस्वप्नान् मात्रे सन्दर्श्य नाकतः ।
च्युत्वा हेमाङ्गदः पुण्यात्कम्पयन् भुवनत्रयम् ॥४७॥

तोटकवृत्तम्

सितवारणरूपधरो महितस्त्रिजगत्पतिभिर्वरमातृमुखम् ।
प्रविवेश विबुध्य च सापि तदा समलङ्कृतदेहवरा मुदिता॥४८॥

स्रग्धरावृत्तम्

राज्ञे स्वप्नानवोचद्वरविनययुता ब्रह्मदत्ताऽऽत्मदृष्टान्
श्रुत्वा राजाऽपि तेषां फलममितगुणस्त्वित्थमाख्यत्प्रियायै ।
श्रीमान् सूनुर्भविष्यत्यमलगुणनिधिस्ते त्रिलोकस्य नाथो
देवेन्द्रादित्यदैत्यक्षितिपतिमहितः स्वप्नसन्दर्शनेन ॥४९॥चतुष्क म्

इति पार्श्वनाथचरिते पुराणसारसङ्ग्रहे स्वर्गावतरणं
नाम द्वितीयः सर्गः समाप्तः ।

७ सूर्य, ८ मीनयुगल, ९ दो सुवर्ण कलश, १० पद्म-सरोवर, ११ समुद्र, १२ सिंहासन, १३ विमान, १४ धरणेन्द्रका भवन, १५ रत्नराशि और १६ निर्धूम अग्नि ॥४४–४६॥ हेमाङ्गदका जीव प्राणतेन्द्र इन १६ स्वप्नोंको माताको दिखलाकर अपने पुण्य-बलसे तीनों भुवनोंको कम्पित करता हुआ स्वर्गसे च्युत हुआ ॥४७॥ देवेन्द्र, सुरेन्द्र और नरेन्द्रोंसे पूजित उन भगवान्‌ने श्वेत हाथीका रूप धारण कर माताके उत्तम मुखमें प्रवेश किया। तब माता जाग गई, और प्रसन्न होकर प्रातःक्रिया कर आभूषण आदि पहने तथा उस ब्रह्मदत्ता रानीने अपने देखे गये स्वप्नोंको अत्यन्त विनयके साथ राजासे कहे। यह सब सुनकर अपरिमित गुणशाली राजाने अपनी प्रिय रानीसे स्वप्नोंके फल इस प्रकारसे कहा कि तुम्हें स्वप्न देखनेसे एक ऐसा शोभावान् पुत्र होगा जो निर्मल गुणोंका पुञ्ज, तीन लोकका स्वामी तथा देवेन्द्र, ज्योतिष्केन्द्र, असुरेन्द्र तथा नरेन्द्रोंसे पूजित होगा ॥४८–४९॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रहके पार्श्वनाथचरितमें स्वर्गावतरण नामका द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ ॥

तृतीयः सर्गः

कोटीस्तिस्रोऽर्धकोटिं च धनवृष्टिं दिने दिने ।
धनदो व्यमुचन्मासान्दिव्यान्पञ्चदशाञ्जनान् ॥१॥

नवमासेषु पूर्णेषु चन्द्रं पूर्वदिशो यथा ।
जिनेन्द्रं सुषुवे सम्यक् देवस्त्रीपरिरक्षिता ॥२॥

प्रसूतिं तस्य देवेन्द्राः ज्ञात्वा स्वासनकम्पनैः ।
आययुर्देवसेनाभिः सार्धं तत्पुरमादरात् ॥३॥

महर्द्ध्या सुजिनं नीत्वा मन्दराऽग्रं सुरेश्वराः ।
अभिषिच्य जलैः पूर्णैं रत्नकुम्भैः पयोऽम्बुभिः ॥४॥

वयोयोग्यैरलङ्कारैर्भूषयित्वाऽतिभक्तितः ।
स्तुत्वाःस्तुतिसहस्रेण सर्वशक्त्याः स्तुतेः पदम् ॥ ५ ॥

पार्श्वनाथ इति ख्यातं नाम कृत्वा सुरेश्वराः ।
आनीय नगरं मातुर्विन्यस्याङ्कं महाप्रभुम् ॥ ६ ॥

आनन्दनाटकं शक्रः समाक्रीड्य च भक्तितः ।
पूजयित्वा जिनं चाऽपि गुरू चासौ दिवं ययौ ॥ ७ ॥

यथा यथा ययौ वृद्धिं कान्त्या बालेन्दुवत्प्रभुः ।
तथा तथोग्रवंशश्रीर्ययौ ज्योत्स्नेव वर्द्धनम् ॥ ८ ॥

विवेश सर्वजीवानां मनांसि गुणसंहतिः ।
तस्य सर्वेषु तोयेषु छायेवेन्दोः सुनिर्मला ॥ ९ ॥

तृतीय सर्ग

भगवान्‌की गर्भावस्थामें आनेके ६ महीने पहले और गर्भावस्थाके ९ महीनोंमें अर्थात् पन्द्रह माहतक जनताके हितके लिए प्रतिदिन कुबेरने साढ़े तीन करोड़ रत्नोंकी वृष्टि की ॥ १ ॥ जैसे पूर्व दिशासे चन्द्रमा उगता है उसी तरह देवाङ्गनाओंसे सुरक्षित माताने नव मास पूर्ण होनेपर जिनेन्द्र भगवान्‌को उत्पन्न किया ॥ २ ॥ उस समय अपने आसनोंके कम्पनसे देवेन्द्रोंने भगवान्‌के जन्मको जाना और श्रद्धापूर्वक देवोंकी एक बड़ी सेनाके साथ वे उस नगरमें आये ॥ ३ ॥ फिर उन्हें बड़े समारोहके साथ सुमेरु पर्वतपर ले गये और सभी इन्द्रोंने मिलकर क्षीरसागरके जलको रत्नकलशोंमें भरकर उनका अभिषेक किया ॥ ४ ॥ तथा उन्हें अवस्था योग्य सुन्दर आभूषण पहनाये और स्तुति योग्य उन भगवान्‌की पूर्ण आत्मशक्तिसे, अतिभक्तिवश हो हजारों प्रकारसे स्तुति की एवं उनका नाम पार्श्वनाथ रखकर उन्हें वे नगरमें ले आये और उन महाप्रभुको माताको गोदमें दे दिया ॥५–६॥ इन्द्रने उस अवसरपर बड़ी भक्तिसे आनन्द नामका नाटक खेला और भगवान् तथा उनके माता-पिताकी पूजा कर स्वर्गलोक चले गये ॥ ७ ॥

ये प्रभु बालचन्द्रमाके समान जैसे-जैसे कान्तिमें बढ़ते गये वैसे-वैसे उनके उग्रवंशकी शोभा चन्द्रमाके समान ही बढ़ती गई ॥ ८ ॥ उनके (निर्मल) गुणोंका समूह, सभी जीवोंके मनमें ठीक वैसे ही प्रवेश होने लगा जैसे कि जलाशयोंमें चन्द्रमाका निर्मल प्रतिबिम्ब ॥ ९ ॥ रूप और सौभाग्यसे सम्पन्न वे भगवान

मतिश्रुतावधिज्ञानरूपसौभाग्यवान् विभुः ।
नवहस्तप्रमाणाङ्गः प्रियङ्गु[1]कुसुमप्रभः ॥१०॥

भक्त्या वैश्रवणानीतैर्भोगैरिन्द्राज्ञया वरैः ।
सुखेन सन्ततं रेमे पुण्याद्देवेन्द्रपूजितः ॥११॥ युग्मम् ।

सिंहोऽपि नरकाच्च्युत्वा चिरं भ्रान्त्वा भवभवे ।
पश्चाच्छतजटी.कश्चित्तापसस्तस्य पुत्रकः ॥१२॥

सहस्रजटिनामाऽसौ भूत्वा ज्ञानाद्धि तापसः ।
स पञ्चाऽग्नितपः कुर्वन् वाराणस्या बहिः स्थितः ॥१३॥ युग्मम् ।

पार्श्वनाथोऽन्यदा श्रीमान् स्वलङ्कृत्य विभूषणैः ।
आरुह्य शिबिकां दिव्यां विनोदाद्भूमिपैः सह ॥१४॥

अनुयात्रं विनिर्गत्य नागरैः परिवारितः ।
पुर्या बहिः स्थितं दृष्ट्वा तापसं तुष्टुवुस्तकम् ॥१५॥

केचिदज्ञानतो मर्त्या दिव्यं कर्त्तुमिदं तपः ।
सहस्रजटिनस्त्वन्यः कः शक्नोति महीतले ॥१६॥ त्रिकम् ।

श्रुत्वा प्रोचे जिनेन्द्रस्तु तपसो लक्षणं तदा ।
यस्य नास्ति दया सम्यक् तस्य धर्मः कुतस्तपः ॥१७॥

तापसस्याऽस्य हीनस्य दयाज्ञानादिभिस्तथा ।
किं करोति तपः सौख्यं श्रुत्वोक्तमिति तद्वचः ॥१८॥ युग्मम् ।

कुलिंगी तु स चोद्धृत्य शिविकायाः पुरः स्थितः ।
दर्शयाऽज्ञानतां शीघ्रं ममेति ह रुषाऽवदत् ॥१९॥

काष्ठस्य गह्वरे सर्पो दह्यमानो महाऽग्निना ।
दृष्ट्वा ह्यवधिना नाथो दर्शयामास सस्मितः ॥२०॥

---

१. बालशालितनुच्छायः इति उत्तरपुराणम् ।

मति श्रुत और अवधिज्ञानसे विराजित थे तथा उनके हाथकी ऊँचाई नौ हाथकी थी व शरीरका रंग प्रियङ्गुके पुष्पके समान था ॥१०॥ देवेन्द्रोंसे पूजित वे भगवान् इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरके द्वारा भक्तिपूर्वक लाये गये नाना भोगोंसे सदा सुखपूर्वक रहने लगे ॥११॥

इधर वह सिंहका जीव नरकसे निकलकर बहुत समयतक संसारमें घूमता फिरा। फिर वहीं बनारसमें किसी शतजटी नामके तपस्वीका सहस्रजटी नामका पुत्र हुआ और वह भी अज्ञानसे तपस्वी बनकर बनारसके बाहर एक जगह पञ्चाग्नि तप करने लगा ॥१२-१३॥

किसी समय श्री पार्श्वनाथ अनेक वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत हो अनेक राजाओंके साथ मनोविनोद करनेके लिए देवोपनीत पालकीपर चढ़कर सेवक वर्गके साथ तथा नगरवासियोंसे आवृत हो बाहर निकले। नगरके बाहर उन्होंने उस तापसको देखा। वहाँ कुछ लोग उस तपस्वीकी प्रशंसा कर रहे थे कि इस दिव्य तपको सहस्रजटीके सिवाय और कौन कर सकता है ॥१४-१६॥ तब यह सुनकर भगवानने तपस्वीके लक्षण बतलाये और कहा कि जिसके पूर्ण दया नहीं है उसका तप भी धर्म नहीं हो सकता। तथा दया और ज्ञानसे रहित इस तपस्वीका यह तप इसे क्या सुख दे सकता है। इस प्रकार उनके वचनोंको सुनकर वह मिथ्यात्वी तपस्वी उद्धत भावसे भगवान्की पालकीके आगे खड़ा हो गया और बड़े क्रोधके साथ बोला कि अच्छा, तो तुम जल्दी ही मेरी अज्ञानता दिखलाओ ॥१७-१९॥ तब उन भगवान्ने अपने अवधिज्ञानसे यह जानकर कि लकड़ीके खोखलेमें बैठे दो सर्प-सर्पिणी इस महाग्निसे जल रहे हैं उसे यह कुछ मुस्कराते हुए दिखलाया ॥२०॥ तथा भगवान्ने उन दोनों सर्प-सर्पिणीको पञ्च-

भाषते स्म नमस्कारं सर्पयोर्भगवान्स्फुटम् ।
सङ्गृह्य तौ नमस्कारौ जातौ भवनवासिनौ ॥२१॥

नागेन्द्रो नागिनी चापि महर्द्ध्या पार्श्वमीश्वरम् ।
प्रतुष्टुवतुरागत्य पूजयित्वा स्वशक्तितः ॥२२॥

तापसो मानभङ्गाच्च क्रोधेनाऽग्निप्रवेशनम् ।
कृत्वा ज्योतिष्कलोकेऽसौ देवोऽभूच्छम्बराऽह्वयः ॥२३॥

वर्षाणां त्रिंशतं दिव्यैरानीतैर्देवमानवैः ।
भोगै रेमे सदा पार्श्वः कौमारे जगदीडितः ॥२४॥

भगवानन्यदा पश्यन्नाटकं नयनप्रियम् ।
सद्यो निर्वेदमापन्नो मतिज्ञानेन पुण्यतः ॥२५॥

आयुष्यरूपसौभाग्यधनवीर्यविभूतयः ।
अनित्या मेघसंघाततडिद्देवेन्द्रचापवत् ॥२६॥

इत्थं मत्वा पुनश्चापि विषयाणां च दुष्टताम् ।
विपाके कटुकत्वं च ध्यात्वा तपसि निश्चितः ॥२७॥ युग्मम् ।

लौकान्तिकाः क्षणे तस्मिन्नागत्य प्रणयेश्वरम् ।
धर्मतीर्थं हितं सम्यगित्युक्त्वा ते दिवं ययुः ॥२८॥

ज्ञात्वा सर्वेऽपि देवेन्द्राः स्वसिंहासनकम्पनैः ।
प्रव्रज्यां देवसेनाभिरागत्य नुनुवुर्जिनम् ॥२९॥

हर्म्याङ्गणे महादिव्यं विकृत्य मणिमण्डपम् ।
रत्नसिंहासनच्छत्रवारिभिः क्षीरतोयधेः ॥३०॥

अभिषिच्य महदृद्ध्या सद्वस्त्राऽभरणलेपनैः ।
भूषयामासुरिन्द्रास्ते भक्त्या नाथे सुखासिते ॥३१॥

नमस्कार मन्त्र स्पष्ट उच्चारणपूर्वक सुनाया एवं उस मन्त्रको सुनकर वे दोनों भवनवासी देवोंमें धरणेन्द्र और पद्मावती हुए। और वे दोनों वहाँ आकर बड़े वैभवके साथ अपनी शक्ति-प्रमाण भगवान् पार्श्वनाथकी पूजा कर स्तुति करने लगे ।।२१-२२।। तब वह तापस अपने मानभङ्गको देख क्रोधसे अग्निमें जल मरा और ज्योतिषी देवोंमें शम्बर नामका देव हुआ ।।२३।।

जगत्से पूज्य भगवान् पार्श्वनाथ कुमारावस्थाके तीस वर्षोंतक देव और मनुष्यों-द्वारा लाये गये दिव्य भोग भोगते हुए सुखसे रहने लगे। एक समय वे एक नयनाभिराम नाटकको देख रहे थे कि पुण्योदयसे मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम होनेसे उन्हें शीघ्र ही वैराग्य हो गया। उन्होंने संसारमें आयु, रूप, सौभाग्य, धन, वीर्य, विभूति आदि सभी वस्तुओंको मेघसमूह, बिजली और इन्द्रधनुषके समान अनित्य जानकर और फिर विषयभोगों-की दुष्टता एवं विपाककालमें कटुताका ध्यान कर तपस्या करनेका निश्चय किया ।।२४-२७।। उसी क्षण वहाँ लौकिक देव आये और भगवान्से निवेदन किया कि "हे भगवन्! आप उत्तम, हितकारी धर्मतीर्थका प्रवर्तन कीजिए।" ऐसा कह वे लोग अपने स्थान-स्वर्गको लौट गये ।।२८।।

तब सभी देवेन्द्र अपने-अपने आसनोंके कम्पनसे भगवान्के दीक्षाकल्याणकको जानकर देवोंकी सेनाके साथ वहाँ आये और उन्होंने भगवान्को नमस्कार किया ।।२९।। तथा महलके आँगनमें अत्यन्त दिव्य मणिमण्डपकी रचनाकर तथा रत्नोंके सिंहासनपर और छत्रके नीचे बैठाकर क्षीरसागरके जलसे उन्होंने बड़े वैभवके साथ भक्तिपूर्वक भगवानका अभिषेक किया और सुखसे बैठे हुए भगवान्को उत्तम वस्त्र, आभूषण एवं सुगन्धित पदार्थोंसे आभू-षित किया ।।३०-३१।। फिर इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने मणियोंकी

शक्राज्ञया कुबेरश्च शिबिकां मणिनिर्मिताम् ।
विमलाऽख्यामुपानीय पुरन्दरमजिज्ञपत् ॥३२॥
व्यजिज्ञपच्च शक्रोऽपि विनयेन मुनीश्वरम् ।
मातरं पितरं बन्धून् पार्श्वो मधुरया गिरा ॥३३॥
अघवत्वाऽशुचित्वं च शरीरस्य जरारुजाः ।
संयोगश्चाप्रियैर्मृत्युर्वियोगश्च प्रियैर्ध्रुवम् ॥३४॥
अस्त्येव मानवानां तद्गच्छाम्याचरितुं तपः ।
भवद्भिर्मुच्यतां सम्यगित्युक्त्वा तान्व्यसर्जयत् ॥३५॥ त्रिकम् ।
तत्क्षणे पटहास्ताला नेदुर्दुन्दुभयोऽम्बरे ।
उत्कृष्टसिंहनादांश्च तदा चक्रुः सुरेश्वराः ॥३६॥
पुष्पवृष्टिः पपाताशु मुक्ता देवकरैः शुभा ।
दिव्यगन्धोदकं चापि सुरभिर्मारुतो ववौ ॥३७॥
एतेषु वर्त्तमानेषु शिबिकामारुरोह सः ।
पूर्वोत्क्षिप्तां नृपैर्भक्त्या स्वयमूढ्वा सुरेश्वराः ॥३८॥
सुतापसाश्रमं रम्यं महर्द्ध्या निन्युरादरात् ।
एकदेशे तु चैत्यस्य कृत्वा पल्यङ्कमीश्वरः ॥३९॥
कृत्वा सिद्धनमस्कारं सन्त्यज्याभरणानि च ।
वस्त्रं च जगृहे दीक्षां त्रिशतैर्भूमिपैः सहः ॥४०॥
रत्ने पटलके केशाञ्जिनस्यादाय वासवः ।
अर्चयित्वा च सद्भक्त्या चिक्षेप क्षीरवारिधौ ॥४१॥
पौषे मासे परे पक्षे पूर्वाह्णैकादशीतिथौ ।
भक्तेन चाष्टमेनेशः स मुनिः संयमे स्थितः ॥४२॥

भुजङ्गप्रयातवृत्तम्

मनःपर्ययज्ञानमूर्ध्वं बभूव,
प्रदीक्षाक्षणे चैव सम्यग्जिनस्य ।
चतुर्ज्ञानयुक्तो बभौ त्यक्तसंघो,
निरभ्राम्बरे पूर्णचन्द्रो यथैव ॥४३॥

बनी विमला नामकी पालकीको वहाँ लाकर इन्द्रको सूचना दी। तब इन्द्रने बड़े विनयके साथ भगवान्से निवेदन किया। उस समय पार्श्वनाथने अपने माता-पिता और बन्धुओंसे मधुरवाणी के द्वारा निवेदन किया कि ॥३२–३३॥ यह शरीर जरा और रोगोंसे पूर्ण, पापमय एवं अशुचि है। इस संसारमें मनुष्योंको अप्रिय लोगोंसे संयोग, इष्ट लोगोंसे वियोग एवं मृत्यु निश्चित है इसलिए मैं तपस्या करने जाता हूँ। आप सब लोग मुझे मुक्त कर दें। इस प्रकार उनसे कहकर उन्हें विदा किया ॥३४–३५॥

उस क्षण नगाड़े, ढोल तथा आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं और उस समय देवेन्द्रोंने उच्चस्वरसे सिंहनाद किया ॥३६॥ वहाँ देवोंके द्वारा जल्दी ही छोड़ी गई उत्तम पुष्पवृष्टि होने लगी और दिव्य सुगन्धित जल सींचा जाने लगा तथा सुगन्धित वायु बहने लगी ॥३७॥ इसी समय वे भगवान् पालकीपर चढ़े। उस पालकीको पहलेपहल अनेक नृप भक्तिपूर्वक स्वयं लेकर चले, इसके बाद इन्द्रगण बड़ी विभूतिसे एवं श्रद्धाभावसे उस पालकीको रमणीय सुतापसाश्रम नामके वनमें ले आये। वहाँ भगवान्ने एक मन्दिरके एक कोनेमें पर्यंकासनसे बैठकर सिद्धोंको नमस्कार किया और सारे आभूषण और वस्त्रोंको छोड़कर तीन सौ राजाओंके साथ जिन-दीक्षा ले ली ॥३८–४०॥ (भगवान्ने पंचमुष्टिसे केशलोंच किया) तथा इन्द्रने उन केशोंको रत्नोंकी पिटारीमें रखकर और उत्तम भक्तिसे पूजाकर उन्हें क्षीरसागरमें क्षेप दिया ॥४१॥

उन भगवान्ने पौष महीनेके कृष्णपक्षकी एकादशीके पूर्वाह्ण समयमें अष्टमभक्तोपवासपूर्वक संयम धारण किया ॥४२॥ भगवान्को दीक्षा लेते समय ही मनःपर्यय ज्ञान प्रकट हो गया और चार उत्तम ज्ञानोंसे युक्त तथा सर्वपरिग्रह रहित वे भगवान्

स्रग्धरावृत्तम्

सद्दीक्षायां जिनस्य प्रमुदितहृदयाः सर्वशक्त्याऽतिभक्त्या
पूजां कृत्वा सुरेन्द्राः सुरगणसहिता देवदेवस्य सम्यक् ।
नानाचित्रैः सुवृत्तैर्जिनगुणचरितैः पापनाशार्थमुच्चैः
स्तुत्वा तं त्रिः परीत्य प्रवरयतियुतं स्वर्गलोकान्प्रयाताः ॥४४॥

इति पार्श्वनाथचरिते पुराणसारसंग्रहे भगवत्प्रव्रजनं नाम
तृतीयः सर्गः समाप्तः ।

ऐसे शोभित होने लगे जैसे मेघरहित आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा ॥४३॥

इस दीक्षा-कल्याणकमें देवगण सहित इन्द्रोंने प्रसन्न हृदय हो, अपनी पूर्ण शक्ति और अतिभक्तिसे देवोंके देव—भगवान्—की अच्छी तरह पूजा की और पाप नाश करनेके हेतु जिनेन्द्रके गुणोंका वर्णन करनेवाले नाना चित्रात्मक छन्दोंसे उनकी स्तुति की और उत्तम मुनियोंसे घिरे हुए उन भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा कर स्वर्ग लोक चले गये ॥४४॥

इसप्रकार पुराणसारसंग्रहके श्री पार्श्वनाथचरितमें भगवान्की
दीक्षा नामक तृतीय सर्ग समाप्त हुआ ।

चतुर्थः सर्गः

अपरेद्युर्जिनेन्द्राय [1]पद्मखेटपुरे नृपः ।
परमान्नमदाद्धन्यः श्रद्धादिगुणसंयुतः ॥ १ ॥

तत्क्षणे पूजयामासुर्हृष्टा दानपतिं सुराः ।
अहो दानमहो दानमिति नादोऽम्बरेऽभवत् ॥ २ ॥

सुरदुन्दुभयो नेदुर्वायुश्च सुरभिर्ववौ ।
आकाशाद् वसुधारा च पुष्पवृष्टिः पपात च ॥ ३ ॥

देहधारणतन्मात्रं गृहीत्वाऽऽहारमल्पकम् ।
निर्गत्य च पुरान्नाथो ज्ञानध्यानरतोऽभवत् ॥ ४ ॥

सम्यगष्टविधाचारे दर्शनस्य सुखालये ।
ज्ञानस्याष्टविधाऽचारे त्रयोदशविधे तथा ॥ ५ ॥

आचारे च चरित्रस्य चचार तपसः सदा ।
सम्यग्धीः षड्विधाऽचारे विहरंश्च स सन्ततम् ॥ ६ ॥ युग्मम् ।

चातुर्मास्यमहोरात्रं घोरं वीरतपश्चरन् ।
आश्रमे तापसानां स प्रतिमासंस्थितो मुनिः ॥ ७ ॥

व्योम्नि शम्बरदेवस्तु तत्काले सह कान्तया ।
गच्छन्प्रतिहते याने यानात्क्रुद्धवाऽवरुह्य सः ॥ ८ ॥

निर्वाणे न्यस्तसच्चित्तमकम्प्यं गिरिराजवत् ।
महाक्षमं महासत्त्वं धर्मध्यानपरायणम् ॥ ९ ॥

दृष्ट्वातं पूर्ववैरेण प्रेरितः पापकर्मणा ।
चक्रे घोरोपसर्गं वै दीर्घसंसारकारणम् ॥१०॥ युग्मम् ।

---

१. गुल्मखेटपुरः इति उत्तरपुराणे ।

चतुर्थ सर्ग

एक दिन (पारणाके लिए) भगवान् पद्मखेटपुर गये। वहाँ उन्हें धन्य नामक राजाने श्रद्धा, तुष्टि, भक्ति आदि गुणोंसे युक्त हो परमान्न–खीर–का आहारदान दिया। उसीक्षण देवताओंने प्रसन्न होकर उस दानपतिकी पूजा की और आकाशमें अहो दान, अहो दान, इस प्रकारके शब्द हुए ॥१–२॥ देव-दुन्दुभियाँ बजने लगीं तथा सुगन्धित वायु बहने लगी और आकाशसे धनवृष्टि एवं पुष्पवृष्टि होने लगी ॥३॥ उन भगवान्‌ने देहधारण मात्रके लिए ही थोड़ा-सा आहार लिया और नगरसे लौटकर ज्ञान ध्यानमें लीन हो गये ॥४॥ उन उत्तमज्ञानी भगवान्‌ने निरन्तर विहार करते हुए सुखके हेतुभूत सम्यग्दर्शनके आठ प्रकारके आचारका, सम्यग्ज्ञानके आठ प्रकारके आचारका एवं सम्यग्चारित्रके तेरह प्रकारके आचारका तथा सम्यक्तपके छै प्रकारके आचारका अच्छी तरह पालन किया ॥५–६॥

इस प्रकार चार माहतक रात-दिन घोर वीर-तपस्या करते हुए एक समय वे तापसोंके आश्रमके पास प्रतिमायोग धारणकर बैठ गये। उस समय शम्बर नामका देव अपनी प्रिय देवीके साथ आकाश-मार्गसे कहीं जा रहा था। (भगवान्‌के ऊपर आते ही) उसका विमान रुक गया इससे वह विमानसे उतरकर अत्यन्त क्रुद्ध हुआ ॥७–८॥ उसने वहाँ मोक्षमें चित्त लगाये हुए, पर्वत-राजके समान निश्चल, अतिसहिष्णु, बलशाली एवं धर्मध्यानमें संलग्न भगवान्‌को देखा और पापकर्म स्वरूप अपने पूर्व बैरसे प्रेरित हो उनके ऊपर अपने ही भवभ्रमणको बढ़ानेवाले घोर उपसर्ग किये ॥९–१०॥ उसने भालू, शार्दूल, सिंह, सर्प,

रिक्षशार्दूलसिंहादिनागोष्ट्रमहिषादिभिः ।
उपसर्गं महच्चक्रे पिशाचैश्च विरूपकैः ॥११॥
चक्रत्रिशूलबाणासिच्छुरिकाशूलतोमरैः ।
प्रासमुद्गरखड्गाद्यैर्निहन्ति स्मायुधानि च ॥१२॥
मल्लिकाकेतकीनागजात्यादिकुसुमानि च ।
सम्भूय पादयोस्तस्य पतन्ति स्म सुपुण्यतः ॥१३॥ युग्मम् ।
धाराभिर्मुष्टिमात्राभिर्घोराकारां ववर्ष च ।
वृष्टिं पाषाणसङ्कीर्णां जिनस्योपरि सर्वतः ॥१४॥
दुःखं कर्त्तुं जिनेन्द्रस्य वृष्टिश्च न शशाक सा ।
इत्थं चक्रे सुरस्तीव्रमुपसर्गं दिनत्रयम् ॥१५॥
कर्त्तुं कर्मक्षयं सम्यङ्भगवन्निश्चलं स्थितम् ।
दृष्ट्वा प्रवृद्धमन्युः स स्वपूर्वकृतपापतः ॥१६॥
उत्तमाङ्गे क्षिपामीति भीममुद्धृत्य पर्वतम् ।
तस्मिन्व्योम्नि स्थिते सद्यो विदित्वा तत्क्षणे महत् ॥१७॥
उपसर्गं जिनेन्द्रस्य स्वसिंहासनकम्पनात् ।
नागेन्द्रो भूतलाच्छीघ्रं नागिन्या सार्धमुद्गतः ॥१८॥ युग्मम् ।
कृत्वा फटासहस्राणि ज्वलन्मणिविभूषितः ।
पार्श्वनाथं सुनागेन्द्रो भक्त्या प्रच्छाद्य संस्थितः ॥१९॥
सर्वलक्षणसम्पन्ना दिव्यरूपा महाप्रभा ।
पूर्णचन्द्रानना वृत्तपीनोन्नतपयोधरा ॥२०॥
मुष्टिप्रमाणसन्मध्या नीलोत्पलदलेक्षणा ।
नागिनी च बृहच्छत्रं वैडूर्यमणिदण्डकम् ॥२१॥
हिममुक्ताकलापाढ्यं दीप्तवज्रमयं मुदा ।
सम्यग्धृत्वा स्थिता भक्त्या तत्क्षणे च जिनेश्वरः ॥२२॥ त्रिकम् ।
क्षपकश्रेणिमारुह्य शुक्लध्यानपरायणः ।
सम्प्राप्तकेवलज्ञानं घातिकर्मविनाशनात् ॥२३॥

ऊँट तथा भैंस आदिका तथा नाना रूपधारी राक्षसोंका रूप धारण-कर बड़ा भारी उपसर्ग करना प्रारम्भ किया ॥११॥ तथा उन्हें चक्र, त्रिशूल, बाण, तलवार, छुरी, अंकुश, गँडासा, भाला, मुद्गर आदि हथियारोंसे मारना प्रारम्भ किया पर वे सब आयुध भगवान्‌के पुण्योदयसे मोंगरे, केतकी, नागकेशर, चमेली आदिके पुष्पोंके रूपमें परिणत होकर भगवान्‌के चरणोंमें गिरते थे ॥१२-१३॥ तब उसने भगवान्‌के ऊपर चारों ओरसे भयंकर, मोटी धारावाली पत्थरोंसे भरी हुई वर्षा करना प्रारम्भ किया ॥१४॥ पर उस वृष्टिसे भगवान्‌को थोड़ा भी दुख नहीं हुआ। इस प्रकार उस शम्बरदेवने तीन दिन तक महान् उपसर्ग किये ॥१५॥ फिर उन्हें कर्म क्षय करनेके लिए पर्वतके समान निश्चल खड़ा हुआ देखकर, उस देवका, पूर्व जन्ममें किये गये पापोंके कारण, क्रोध बढ़ गया ॥१६॥ और एक भयङ्कर पर्वतको उठाकर भगवान्‌के शिरपर पटकनेके इरादेसे ज्योंही वह आकाशमें गया, त्योंही अपने आसनके कम्पनसे भगवान्‌के ऊपर बड़ा भारी उपसर्ग जानकर, धरणेन्द्र, पद्मावतीके साथ शीघ्र ही पाताल लोकसे निकलकर आया ॥१७-१८॥ चमकते हुए मणियोंसे सुशोभित वह धरणेन्द्र अपनी हजारों फणाओंसे भगवान्‌को ढँककर खड़ा हो गया ॥१९॥ और उसकी देवी, सर्वलक्षणोंसे सम्पन्न, दिव्यरूपवाली, बड़ी कान्तिवाली, चन्द्रमुखी, गोल, स्थूल एवं उन्नत स्तनवाली, क्षीण कटिवाली एवं नील कमलके समान नेत्रवाली-पद्मावती, एक ऐसे छत्रको भगवान्‌के ऊपर धारण कर खड़ी हो गई जिसका कि दण्ड वैडूर्यमणिका था, किनारेपर शुक्ल मोतियोंकी लड़ियाँ लगी थीं, एवं जो वज्रके समान चमक रहा था। उस समय भगवान्‌ने क्षपक श्रेणीमें आरूढ़ होकर शुक्लध्यानमें लवलीन हो चार घातिया कर्मोंका नाशकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ॥२०-२३॥

चैत्रे मासि सिते पक्षे चतुर्थ्यान्तविशाखके ।
पूर्वाह्णे केवलज्ञानेनार्हन्त्यं प्राप्तवान् सह ॥२४॥

देवेन्द्रास्तत्क्षणे चैव ज्ञात्वा स्वासनकम्पनात् ।
आलोक्याऽवधिना सम्यक्केवलज्ञानसम्भवम् ॥२५॥

विमानसिंहनागाश्च व्याघ्रक्रौञ्चादिवाहनान् ।
आरुह्य विविधाऽनीकैर्देवीभिश्च सहाययुः ॥२६॥

मल्लिकाजातिपुन्नागकेतकीवकुलादिभिः ।
पुष्पैर्दिव्याऽक्षतैर्गन्धधूपदीपादिभिर्वरैः ॥२७॥

सम्यगभ्यर्च्य सद्भक्त्या प्रकृत्य त्रिप्रदक्षिणम् ।
नानाप्रकारसुस्तोत्रैस्तुष्टुवुः परमेश्वरम् ॥२८॥ युग्मम् ।

शम्बराख्यः सुरश्चाऽपि भीत्वा देवेन्द्रदर्शनात् ।
विहाय पर्वतं शीघ्रं जिनेन्द्रं शरणं ययौ ॥२९॥

मया कृतं महादोषमज्ञानात्पापकर्मणा ।
क्षमस्व लोकनाथेति ननाम जिनपादयोः ॥३०॥

भगवान् सहजः पूर्वं स्वकपुण्यात्सुखानि च ।
बुभुजे सन्ततं पापान्मग्नोऽहं दुःखसागरे ॥३१॥

इतः प्रभृति पापानि सर्वदा न करोम्यहम् ।
इति सञ्चिन्त्य भीतोऽसौ दुःखाज्जिनमपूजयत् ॥३२॥

शिखरिणीवृत्तम्

महत्पापं कृत्वा, नरककुगतौ दुःखमखिलं,
त्वहं भुक्त्वा नष्टः सुखदमिति मत्वा कुमतितः ।
इति ध्यात्वा भीतस्त्वसुखबहुलाज्जन्मजलधे-
र्जिनेन्द्रं वन्दित्वा स खलु जगृहे धर्ममपरः ॥३३॥

उन्हें चैत्र मासके शुक्लपक्षकी चतुर्थीके दिन पूर्वाह्णके समय विशाखा नक्षत्रमें केवलज्ञानके साथ अर्हन्त पद प्राप्त हुआ ॥२४॥ उस समय देवेन्द्रोंने अपने-अपने आसन कँपनेसे अपने अवधि-ज्ञानसे भगवान्‌के केवलज्ञान उत्पन्न होनेकी बात अच्छी तरह जान ली ॥२५॥ और वे लोग अपने देवियोंके साथ एवं नाना प्रकारकी सेनाके साथ विमान, सिंह, हाथी, व्याघ्र, क्रौञ्च आदि नाना वाहनोंपर चढ़कर वहाँ आये ॥२६॥ वहाँ उन लोगोंने बड़ी भक्ति से, मल्लिका, जाति, पुन्नाग, केतकी, वकुल आदि फूलोंसे तथा दिव्य तण्डुल, अक्षत, गन्ध, धूप, दीप आदि द्रव्योंसे जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की व तीन प्रदक्षिणा देकर नाना प्रकारके सुन्दर स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥२७–२८॥ तब वह शम्बर नामका देव देवेन्द्रको देखकर डर गया और पर्वतको छोड़कर शीघ्र ही जिनेन्द्र भगवान्‌की शरणमें गया ॥२९॥ और भगवान्‌के चरणोंको यह कहते हुए प्रणाम किया कि "हे नाथ ! पापकर्मके कारण अज्ञानवश मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है, मुझे क्षमा कीजिये ॥३०॥ हे भगवन् ! आप पहले भी अपने पुण्यसे सहज सुख भोगते रहे हैं और मैं पापसे निरन्तर दुःख-सागरमें मग्न रहा हूँ। अब मैं आगे कभी भी न पाप करूँगा"। तथा इस प्रकार सोच, पापों से भयभीत हो वह भगवान्‌की पूजा करने लगा ॥३१–३२॥ मैं तो बड़े-बड़े पापोंको करके नरकादि खोटी गतियोंमें सारे दुखको भोगकर और कुबुद्धिसे उन्हें सुखकर मानकर नष्ट हो चुका हूँ। ऐसा सोच वह दुखोंसे भरे इस संसार-समुद्रसे डर गया और जिनेन्द्र भगवान्‌की वन्दना कर उस देवने सच्चे धर्मको धारण कर लिया ॥३३॥

तब सभी इन्द्रों, नरेन्द्रोंने तथा व्यन्तरों और भवनवासियोंके इन्द्रोंने एवं चन्द्र और सूर्यने परमसुख देनेवाले, तीन लोकके

हरिणीवृत्तम्

सुरनरवरा दैत्या नागाश्शशाङ्कदिवाकराः,
सुरभिकुसुमैर्दीपैर्धूपैः सुगन्धजलाऽक्षतैः ।
परमसुखदं त्रैलोक्येशं समर्च्य सुखालयं
नुनुवुरमलं भक्त्या चेत्थं जिनेश्वरमादरात् ॥३४॥

इति पार्श्वनाथचरिते पुराणसारसंग्रहे केवलज्ञानोत्पत्तिर्नाम
चतुर्थः सर्गः समाप्तः ॥

स्वामी और सुखके आगार भगवान्की सुगन्धित पुष्पों, दीप, धूप तथा सुगन्धित जल एवं अक्षतसे पूजा की और श्रद्धा एवं भक्तिसे उन निर्मल जिनेन्द्र भगवान्को प्रणाम किया ॥३४॥

इसप्रकार पुराणसारसंग्रहके पार्श्वनाथचरितमें केवलज्ञानोत्पत्ति नामक चतुर्थ सर्ग समाप्त हुआ।

पञ्चमः सर्गः

पञ्चेन्द्रियैः कषायैश्च कृत्स्नं त्रिभुवनं जितम् ।
त्वया जितानि यत्तानि जिन तुभ्यं ततो नमः ॥ १ ॥

रागो द्वेषश्च मोहश्च रिपवः सर्वदेहिनाम् ।
यज्जितास्ते त्वया नित्यं जिन तुभ्यं ततो नमः ॥ २ ॥

उपसर्गश्च शल्यानि कामा दण्डाः परीषहाः ।
त्वया जितानि यत्तानि जिन तुभ्यं ततो नमः ॥ ३ ॥

देवासुरनराः सर्वे सर्वदा पूजयन्ति च ।
स्तुवन्ति च यतो नस्त्वां त्वमेव परमेश्वरः ॥ ४ ॥

ददास्यात्महितं धर्ममादित्यौषधमेघवत् ।
अनपेक्ष्योपकारं यत्त्वमेव परमेश्वरः ॥ ५ ॥

सज्ज्ञानं दर्शनं चापि केवलाख्यं निरन्तरम् ।
सम्यक्त्वं सच्चरित्रं च विनाशान् मोहकर्मणः ॥ ६ ॥

अनन्तदानलाभौ च भोगवीर्यमनन्तकम् ।
अन्ताऽतीतोपभोगश्च जाताः सत्तपसः फलात् ॥ ७ ॥

घातिकर्मक्षयोद्‌भूता नवक्षायिकलब्धयः ।
एतास्तवैव यत्तस्मात्त्वमेव परमेश्वरः ॥ ८ ॥

अतिशयाश्चतुस्त्रिंशद् भ्राजन्ते सततं तव ।
प्रातिहार्या यतस्तस्मात्त्वमेव परमेश्वरः ॥ ९ ॥

पञ्चम सर्ग

हे जिन ! आपने ऐसे तीनों लोकोंको जीत लिया है जो कि पञ्च इन्द्रियोंके विषयभोग और क्रोधादि कषायोंसे पूरी तरह जीते गये हैं; इसलिए आपको नमस्कार है ॥१॥ इस संसारमें राग द्वेष और मोह सभी प्राणियोंके शत्रु हैं और आपने उन्हें निश्चयरूपसे जीत लिया है; इसलिए आपको नमस्कार है ॥२॥ उपसर्ग, वासनाएँ, मन वचन और कायकी दुष्प्रवृत्ति रूपी दण्ड और भूख प्यास आदि परिषह ये सब शल्य अर्थात् पीड़ाकारक हैं तथा आपने उन्हें जीत लिया है इसलिए हे भगवन्! आपको नमस्कार है ॥३॥ सभी देव, असुर और उत्तम मनुष्य आपकी ही पूजा और स्तुति करते हैं इसलिए आप ही हम लोगोंके परमेश्वर हो ॥४॥ हे भगवन्! सूर्य जैसे प्रकाशको, औषधियाँ स्वास्थ्यको और मेघ सुभिक्षको बिना किसी प्रत्युपकारकी आशासे देते हैं, उसी तरह आप आत्म-कल्याणकारी धर्मका उपदेश देते हो इसलिए आप ही परमेश्वर हो ॥५॥

हे भगवन्! उत्तम तपके फलस्वरूप आपको सतत केवलनामका उत्तम ज्ञान और दर्शन अर्थात् केवलज्ञान और केवलदर्शन, और दर्शन एवं चारित्रमोहनीय कर्मोंके नाश करनेसे पूर्ण सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्चारित्र प्रकट हो गया है तथा चार घातिया कर्मोंके क्षय कर देनेसे अनन्तदान, अनन्तलाभ, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य, अनन्तउपभोग, अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र ये नव लब्धियाँ प्राप्त हो गई हैं, इसलिए आप ही परमेश्वर हो ॥६–८॥ हे भगवन्! आप जन्मकृत दश, केवल-

द्वादशानां गणानां सन्मध्ये धर्मप्रबोधनम् ।
कुर्वन्यद् भ्राजसे तस्मात्त्वमेव परमेश्वरः ॥१०॥
इति स्तुवन्ति ये नित्यं सद्भक्त्या त्वां जिनेश्वर ।
समाधिं [1]लघु बोधिं च लब्ध्वा ते यान्ति निर्वृतिम् ॥११॥
इत्थं देवा सुरा मर्त्याः भक्त्या स्तुत्वा जिनेश्वरम् ।
सर्वेऽपि शुश्रुवुर्धर्मं संसारक्षयकारणम् ॥१२॥
दृष्ट्वा जिनेन्द्रमाहात्म्यं तापसा बहवः स्वकम् ।
निन्दित्वा धर्ममत्यन्तं जिनस्याऽग्रे प्रवव्रजुः ॥१३॥
कृत्वा चतुर्विधं सङ्घं त्रिलोकसदसे हितम् ।
सद्धर्मं देशयन्देशान्विजहार जिनेश्वरः ॥१४॥
गणेशाः पार्श्वनाथस्य स्वयम्भुप्रमुखा दश ।
प्राप्तसप्तर्द्धयो नित्यं बभूवुर्देवपूजिताः ॥१५॥
कृत्स्नपूर्वधराणां तु मुनीनां त्रिशतं त्वभूत् ।
पञ्चाशच्च ३५० मत्वा संख्या पूजितानां सुरासुरैः ॥१६॥
अवधिज्ञानिनामासीत्सहस्रं च चतुःशतम् । १४००
प्रमाणं सन्मुनीनां च रूपिद्रव्याणि पश्यताम् ॥१७॥
केवलज्ञानिनामासीत्प्रमाणं तु सहस्रकम् । १०००
सर्वद्रव्याणि पश्यन्ति ये तेषां कथितं सदा ॥१८॥
वैक्रियाशक्तिसंयुक्तमुनीनां च प्रमाणकम् ।
तदेव १००० स्वेष्टरूपाणि ये प्रकुर्वन्ति चात्मनाम् ॥१९॥
शतानि सप्तपञ्चाशद् ७५० यतीनां तु प्रमाणकम् ।
मनःपर्ययसज्ज्ञानयुक्तानामभवत्खलु ॥२०॥
षट्छतं ६०० वादिनामासीत्प्रमाणं सञ्जयन्ति च ।
वादार्थिनः सुरान्मर्त्यानेकवाक्येन चैव ये ॥२१॥

---

१ शीघ्रमित्यर्थः ।

ज्ञानकृत दश तथा देवकृत चौदह अतिशय इसप्रकार चौंतीस अतिशयोंसे सुशोभित हो तथा अशोकवृक्षादि आठ प्रातिहार्योंसे विभूषित हो, इसलिए आप ही परमेश्वर हो ॥९॥ हे भगवन्! आप बारह प्रकारकी सभाके बीचमें धर्मोपदेश देते हुए विराजमान हो इसलिए आप ही परमेश्वर हो ॥१०॥ हे जिनेश्वर! जो आपकी नित्य ही सच्ची भक्तिसे स्तुति करते हैं वे चित्तकी एकाग्रतापूर्वक शीघ्र ही केवलज्ञान पा मोक्षको जाते हैं ॥११॥

इसप्रकार सभी देवों, असुरों और मनुष्योंने भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान्की स्तुतिकर उनसे भवभ्रमणको मिटानेवाले धर्मका उपदेश सुना ॥१२॥ जिनेन्द्र भगवान्के इसप्रकार माहात्म्यको देखकर बहुतसे तपस्वियोंने अपने कुकर्मकी खूब निन्दा कर जिन भगवान्के आगे दीक्षा ले ली ॥१३॥ भगवान् चार प्रकारका संघ बनाकर तीनों लोकोंको हितकारी सद्धर्मका उपदेश देते हुए देश-देशमें विहार करने लगे ॥१४॥

पार्श्वनाथ भगवान्के (समवसरणमें) स्वयम्भू आदि दश गणधर थे जोकि सात ऋद्धियोंसे युक्त एवं देवोंसे पूजित थे ॥१५॥ तथा देवों असुरोंसे पूजित सम्पूर्ण १४ पूर्वोंके धारी मुनियोंकी संख्या तीन सौ पचास थी ॥१६॥ और सभी रूपी पदार्थोंको जाननेवाले उत्तम अवधिज्ञानी मुनियोंकी संख्या एक हजार चार सौ थी ॥१७॥ समस्त द्रव्य और पर्यायोंको जाननेवाले केवलज्ञानी मुनियोंकी संख्या एक हजार चार सौ कही गई है ॥१८॥ अपने इच्छित रूपोंको बनानेवाले वैक्रियिक शक्तिसे युक्त मुनियोंकी संख्या भी एक ही हजार थी ॥१९॥ और मनःपर्यय रूपी उत्तम ज्ञानसे युक्त यतियोंका प्रमाण सात सौ पचास था ॥२०॥ तथा जो एक ही वाक्यसे वादेच्छुक देव और मनुष्योंको जीत सकते थे, ऐसे वादी मुनियोंकी संख्या छै सौ थी। और जिनेन्द्र-द्वारा

आसन् दशसहस्राणि युतानि नवभिः शतैः । १०९००
शिक्षका जिनसम्प्रोक्तमागमं विनयाऽन्विताः ॥२२॥

षोडशैव सहस्राणि १६००० ऋषीणां तु प्रमाणकम् ।
सर्वेषां पूजिता देवैर्ये तेषां कथितं खलु ॥२३॥

अष्टात्रिंशत् सहस्राणि चासन्नार्या गुणाकराः । ३८००० ।
सुलोचनाऽभवत्तासु ज्येष्ठा देवेन्द्रपूजिता ॥२४॥

दर्शनज्ञानचारित्रगुणाभरणभूषितम् ।
श्रावकाणां प्रमाणं तु लक्षमेकं १००००० प्रकीर्त्तितम् ॥२५॥

त्रिहतं लक्षमेकं तु ३००००० प्रोक्तमागमवेदिभिः ।
श्राविकाणां प्रमाणं स्याद्व्रतशीलशुचिभृताम् ॥२६॥

देवमानवसन्देहतमांसि जिनभास्करः ।
वाक्यगोभिर्निचिक्षेप तमोलोकस्य सूर्यवत् ॥२७॥

दुःखभास्करतप्ताय जनाय जिनतोयदः ।
धर्माऽम्बुसूर्यतप्ताय ववर्षोदकमभ्रवत् ॥२८॥

चातुर्मासोनकान् सम्यक् ससत्यब्दान् हितार्थिनः ।
संसारात्तारयन् भव्यान् विजहार महीं जिनः ॥२९॥

आयुष्यान्ते ततो ज्ञात्वा निर्वाणगमनक्षणम् ।
सम्मेदगिरिमारुह्य रम्यं पार्श्वजिनेश्वरः ॥३०॥

षड्विंशमुनिभिः सार्धं त्यक्त्वा विहरणं मतैः ।
मासं च प्रतिमां स्थित्वा पूर्वाह्णे स सुरार्चितः ॥३१॥

श्रावणस्य सिते पक्षे सप्तम्यां च तिथौ ततः ।
भूत्वा योगी खलु ध्यायन् समुच्छिन्नत्रयात्मकम् ॥३२॥ युग्मम् ।

विनाश्य शेषकर्माणि ज्ञानाद्यैरष्टभिर्वरैः ।
गुणैर्युक्तं महासौख्यं सम्प्रापन्मोक्षमुत्तमम् ॥३३॥

कथित आगमको पढ़ानेवाले विनयधारी शिक्षक मुनि दश हजार नौ सौ थे। एवं देवताओंसे पूजित अन्य मुनि सोलह हजार थे। और वहाँ गुणोंकी खानि स्वरूप आर्यिकाएँ अड़तीस हजार थीं जिनमें इन्द्रोंसे पूज्य सुलोचना नामकी आर्यिका प्रधान थी। तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र रूपी गुणोंसे भूषित श्रावकोंका समूह एक लाख प्रमाण था। और व्रत, शील एवं आचारको धारण करनेवाली श्राविकाओंका प्रमाण तीन लाख आगमके जाननेवाले मुनियोंने कहा है ॥२१-२६॥

उन जिनेन्द्र-रूपी सूर्यने देवों तथा मनुष्योंके सन्देह-रूपी अन्धकारको सूर्यके समान वचनरूपी किरणोंसे नष्ट कर दिया ॥२७॥ जिनेन्द्र रूपी मेघने दुःखरूपी सूर्यसे तप्त प्राणियोंके लिए धर्मरूपी जल ठीक वैसे ही बरसाया जैसे सूर्यसे सन्तप्त प्राणियोंके लिए बादल जल बरसाता है ॥२८॥ इसप्रकार चार महीने कम सत्तर वर्षोंतक कल्याणार्थी भव्य प्राणियोंको संसारसे पार लगाते हुए वे भगवान् पृथ्वीपर विहार करते रहे ॥२९॥

एक समय आयुका अन्त समीप जानकर, वे पार्श्वनाथ भगवान्, निर्वाण गमनकी वेलाके लिए रमणीय सम्मेदशिखर पर्वतपर आरूढ़ हुए ॥३०॥ और विहार करना छोड़कर मान्य छब्बीस मुनियोंके साथ प्रतिमा योग धारणकर एक माहतक खड़े रहे और श्रावण महीनेके शुक्ल पक्षकी सप्तमीके दिन पूर्वाह्ण समय देवोंसे पूज्य उन भगवान्ने योग धारणकर, ध्यान करते हुए मन, वचन और कायके योगोंको निरोधकर शेष कर्मोंको नष्ट कर दिया। तथा सिद्धोंके ज्ञान दर्शन आदि उत्तम आठ गुणोंसे युक्त हो महासुखके स्थान उत्तम मोक्षको प्राप्त किया ॥३१-३३॥ तब सभी इन्द्र अपने-अपने आसन-कम्पनसे भगवान्‌का मोक्ष-कल्याणक जानकर अपनी-अपनी देवियों और अनेक प्रकारकी

हरिणीवृत्तम्

त्रिदशपतयः शीघ्रं ज्ञात्वा स्वविष्टरकम्पनै-
र्युवतिसहिता दिव्यानीकैः समेत्य सुभक्तितः ।
सुरभिकुसुमैर्धूपैर्दीपैः सुगन्धजलाक्षतै-
र्जिनवरतनोः पूजां सम्यक् प्रचक्रुरनुत्तमाम् ॥३४॥

स्रग्धरावृत्तम्

अग्नीन्द्रोऽपि प्रपूज्य प्रवरकुसुमगन्धादिभिर्दिव्यदेहं,
पश्चाद् दग्ध्वा स्वमौलिप्रभवसुदहनेनाक्षतैर्गन्धतोयैः ।
पश्चान्निर्वाप्य शेषां सुरगणपतयो दैत्यनागेन्द्रचन्द्राः,
संगृह्याऽत्यन्तभक्त्या प्रमुदितहृदयाः स्वर्गलोकं प्रयाताः ॥३५॥
यस्मात्पुण्यं प्रकृत्य प्रथममनुपमं दिव्यसौख्यं प्रभुज्य,
स्वर्गे भूमौ च पश्चात्त्रिभुवनपतितां प्राप्तवान् पार्श्वनाथः ।
यस्मात्पापं प्रकृत्याऽशुभगति सुचिरं दुःखमापामरश्च,
तस्माद्यः सौख्यमिच्छेदतिशयसुकृतं सन्ततं सम्प्रकुर्यात् ॥३६॥
तीर्थं देवेन्द्रपूज्यं द्विशतमनुपमं यस्य पञ्चाशतं च,
वर्षाणां वर्त्तते स्म प्रवरगुणगणैर्मोक्षसोपानभूतम् ।
नित्यं यश्चापि देवा सुरनरमहितः सर्वशक्त्याऽहि भक्त्वा,
तं वन्दे पार्श्वनाथं जितसकलरिपुं देवदेवं जिनेन्द्रम् ॥३७॥

पृथ्वीवृत्तम्

जिनेन्द्रचरितं त्विदं प्रकथितं सर्वश्रेयसे,
श्रृणोति वरबुद्धिमान् परतो यः समाख्याति च ।
सदा सुखकरं त्रयो लिखति पुण्यवन्तो नराः,
प्रयान्ति लघु दिव्यमनन्तदिव्यसौख्यं पदम् ॥३८॥

इति पार्श्वनाथचरिते महापुराणसंग्रहे भगवन्निर्वाणगमनं
नाम पञ्चमः सर्गः समाप्तः ॥

सेनाके साथ भक्तिपूर्वक वहाँ आये और जिन-भगवान्के शरीरकी सुगन्धित पुष्पों, धूप, दीप, सुगन्धित जल एवं अक्षत द्रव्योंसे अच्छी तरह अपूर्व पूजा की ॥३४॥ फिर अग्निकुमार देवोंके इन्द्रने भगवान्के दिव्य शरीरकी उत्तम फूलों और चन्दनादि द्रव्योंसे पूजा की तथा अपने मुकुटसे उत्तम अग्नि उत्पन्नकर उसका अग्नि-संस्कार किया। तत्पश्चात् देवेन्द्र, असुरेन्द्र, नागेन्द्र और ज्योतिषी देवोंके इन्द्र, सूर्य, चन्द्रादिने भक्तिपूर्वक अवशिष्ट अंशको इकट्ठा कर अक्षत एवं सुगन्धित जलके साथ क्षीर-सागरमें क्षेप दिया और प्रसन्नचित्त हो वे स्वर्गलोक चले गये ॥३५॥ उन भगवान् पार्श्वनाथने, चूँकि अपने पहले भवमें ही पुण्य प्रकृतिका बन्ध किया था इसलिए उन्होंने स्वर्गलोक और भूतलपर अनुपम दिव्य सुखोंको भोग त्रैलोक्यके स्वामी पदको प्राप्त किया था। तथा चूँकि उस शम्बर देवने प्रथम भवमें पाप प्रकृतिका बन्ध किया था इसलिए उसे बहुत समय खोटी गतियोंमें भ्रमणकर दुःख भोगना पड़ा। अतः जो अपना सुख चाहता है वह निरन्तर खूब पुण्य करता चले ॥३६॥

उत्तम अनेक गुणोंसे मोक्षकी सीढ़ीके समान बना हुआ, देवेन्द्रोंसे पूज्य भगवान्का अनुपम तीर्थकाल ढाई सौ वर्षों तक चलता रहा। और उन भगवान्की नित्य ही देव, असुर और मनुष्य पूजा करते रहे। मैं अपनी पूर्ण शक्ति और बड़ी भक्तिसे देवोंके देव, जिनेन्द्र, पार्श्वनाथको—जिन्होंने सम्पूर्ण कर्मरूपी शत्रुओंको जीत लिया है—प्रणाम करता हूँ ॥३७॥

जिनेन्द्र भगवान्का यह चरित सभीके कल्याणके लिए कहा गया है। और जो उत्तमबुद्धि पुरुष इसे सुनते हैं या दूसरोंसे कहते हैं अथवा लिखते हैं वे सदा सुखदायक, अनन्त एवं दिव्य सुखवाले दिव्य अविनश्वर पदको शीघ्र ही पहुँच जाते हैं ॥३८॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रहके पार्श्वनाथचरितमें भगवान्का निर्वाणगमन नामक पञ्चम सर्ग समाप्त हुआ।

श्रीवर्धमानचरितम्

प्रथमः सर्गः

जयति त्रिजगन्नाथो वर्द्धमानजिनांशुमान् ।
प्रामोद्यं भव्यपद्मानामकरोज्ज्ञानरश्मिभिः ॥ १ ॥

प्रजादुरितविच्छेदे पुण्यं रत्नोत्तमाकरम् ।
पवित्रं चरितं तस्य भक्त्या वक्ष्ये समासतः ॥ २ ॥

जम्बूनाम्ने सुधर्मेण पृच्छते कथितं पुरा ।
पुराणं श्रूयतां सूरिपारम्पर्यक्रमागतम् ॥ ३ ॥

द्वीपेऽस्मिन्भारते वास्ये छत्राऽकारपुरेऽभवत् ।
यो नन्दिवर्द्धनो राजा प्रसूतिर्गुणसम्पदाम् ॥ ४ ॥

वीरमत्यां सुतस्तस्माद्देव्यामजनि नन्दनः ।
नानाविद्यार्थसलिलप्रक्षालितबृहन्मतिः ॥ ५ ॥

अर्हते सूनवे तस्मै दत्वा राज्यश्रियं सतीम् ।
संसारासारवित्रस्तो जगाम स तपोवनम् ॥ ६ ॥

स्थितो वृत्ते सतां श्लाघ्येऽशासदानन्दितो भुवम् ।
स्वगुणैरतुलैर्वश्यानत्यातीच्च महीक्षितः ॥ ७ ॥

देवी प्रियङ्करा कान्तिमैन्दवीं बिभ्रती पराम् ।
आसीत्तस्य गुणैः कान्तैस्तच्चित्तमनपायिनी ॥ ८ ॥

श्रीवर्धमान चरित

तीनों लोकोंके प्रभु वे वर्द्धमान भगवान्-रूपी सूर्य सदा जयवन्त होवें जिन्होंने अपनी ज्ञानरूपी किरणोंसे भव्य जीवरूपी कमलोंको प्रसन्न–विकसित–किया है ॥१॥ उनका पवित्र जीवनचरित जनताके पाप नष्ट करनेमें इतना पुण्यकारी है जैसे प्रजाके दारिद्र्यको नष्ट करनेके लिए उत्तम रत्नोंकी खदान। मैं उसे यहाँ संक्षेपमें कहूँगा। पहले सुधर्म गणधरने जम्बू स्वामीके पूछनेपर इस पुराणको कहा था। इसलिए आचार्य-परम्परासे आये हुए इस पुराणको आप लोग सुनें ॥२–३॥

इसी जम्बूद्वीपमें भरत क्षेत्रके छत्राकारपुरमें नन्दिवर्धन नामका राजा था जो अनेक गुणोंकी खान था ॥४॥ उसे अपनी रानी वीरमतीसे नन्दन नामका पुत्र हुआ, जिसने नाना शास्त्रोंके अर्थरूपी जलसे अपनी विशाल बुद्धिको स्वच्छ कर लिया था अर्थात् वह अनेकों शास्त्र पढ़ा था ॥५॥

एक समय वह राजा अपने योग्य पुत्रको राज्य लक्ष्मी देकर संसारकी असारतासे भयभीत हो तपोवनमें तपस्या करनेके लिए चला गया ॥६॥ और वहाँ उसके पुत्रने सज्जनोंके प्रशंसनीय चरित्रमें चलते हुए प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वीका शासन किया। उसने अपने अतुलनीय गुणोंसे अपने वंशके पूर्वज राजाओंको भी अतिक्रमण कर दिया ॥७॥ उसके चन्द्रमाके समान उत्कृष्ट कान्तिको धारण करनेवाली प्रियंकरा नामकी रानी थी जिसने अपने मनोहर गुणोंसे उस राजाके चित्तको हर लिया ॥८॥ अत्यन्त अनुराग

सुखमास्वादयन्तौ तौ रमयन्तौ परस्परौ ।
सानुरागवरौ जेतां रतिपञ्चशराविव ॥ ९ ॥

ततो ज्ञानरुचा भिन्दन् जनानां मोहतामसम् ।
तत्राऽऽगमदृढदृष्टिमुख्यः प्रोष्ठिलो ज्ञानपारगः ॥१०॥

प्रीत्या सान्तःपुरो राजा तमभ्यर्च्य यथाविधि ।
धर्मं संश्रुत्य पप्रच्छ भवसन्ततिमात्मनः ॥११॥

सता सर्वविदः पृष्टो विनयेन महीक्षिता ।
समासेन यथावृत्तं जगाद तपसां निधिः ॥१२॥

वर्षेऽस्मिञ्जाह्नवीकूले वराहमलये भवः ।
इत्यतोऽष्टमे भवे राजन्केशरी लोलकेशरः ॥१३॥

अन्यदा गगने यान्तौ शयितं तु गुहामुखे ।
तं तु जयामितगुणौ नाम्ना ददृशतुर्मुनी ॥१४॥

ज्ञानिनौ करुणावन्ताववतीर्य नभस्तलात् ।
अधः सप्तपलाशस्य तौ निषण्णौ शिलातले ॥१५॥

चारणौ पूतकरणौ हरिचोदनकारणौ ।
प्रज्ञप्तिमध्यगीषातां मन्द्रेण ध्वनिना सतीम् ॥१६॥ युग्मम् ।

त्यक्त्वाऽशुभमनोवृत्तिं तद्ध्वनेः समुपागतः ।
मुनिरूपं पुरा दृष्टं चिन्तयन् समुपाविशत् ॥१७॥

स्वजन्ममुनिरूपस्य दर्शनं ते हरे शृणु ।
इत्युक्त्वोवाच वदतां वरस्तमजितञ्जयः ॥१८॥

द्वीपेऽस्मिन्पुण्डरीकिण्यां नगर्यां धर्मवत्सलः ।
धर्मस्वामीति विख्यातः सार्थवाहो बभूव यः ॥१९॥

वाले वे दोनों, नाना सुखोंको भोग करते हुए रति और कामदेवके समान रमण करते हुए आपसमें एक दूसरेको (प्रेममें) जीतने लगे ।।९।।

अथानन्तर–एक समय वहाँ अपनी ज्ञानरूपी किरणोंसे प्राणियोंके मोहरूपी अन्धकारको नष्ट करते हुए, ज्ञानके पारगामी, प्रोष्ठिल नामक सम्यग्दृष्टि मुनि आये ।।१०।। राजाने, अपने रनिवासके साथ प्रीतिपूर्वक उनकी विधिवत् पूजा की और धर्मोपदेश सुनकर उनसे अपने पूर्वभवोंको पूछने लगा ।।११।। तब उस सज्जन राजा-द्वारा विनयपूर्वक पूछे जानेपर उन सर्वज्ञ मुनिने संक्षेपमें सब वृत्तान्त इस प्रकार कहा ।।१२।।

"हे राजन् ! तुम, अबसे आठवें भव पूर्वमें, इसी भरत क्षेत्रमें गंगा नदीके किनारे वराहमलय नामके पर्वतपर लहराती सटाओं वाले सिंह हुए थे ।।१३।। एक समय वह सिंह गुफाके दरवाजेपर सो रहा था । तब वहाँ आकाशमार्गसे जाते हुए जय और अमितगुण नामके दो मुनियोंने उसे देखा ।।१४।। ज्ञानी एवं करुणावान् वे दोनों मुनिराज आकाशसे उतरकर एक सप्तपर्ण वृक्षके नीचे शिलापर बैठ गये ।।१५।। और संसारको पवित्र करनेवाले उन दोनों चारण मुनियोंने सिंहको प्रेरणा देनेके लिए गम्भीर ध्वनिसे उद्बोध देनेवाली (वैराग्य उत्पन्न करनेवाली) उत्तम गाथाएँ गाना शुरू किया ।।१६।। उनकी उस ध्वनिको सुन, अशुभ मनोवृत्तिको छोड़कर वह सिंह वहाँ आया और यह सोचते हुए कि–इन मुनियोंको मैंने पहले कभी देखा है–वहाँ बैठ गया ।।१७।। तब अजितञ्जय नामके उत्तम वक्ता मुनिने कहा कि हे सिंह ! अपने पूर्वजन्ममें मुनिरूपके दर्शनका वृत्तान्त सुनो ।।१८।।

इसी जम्बू द्वीपकी पुण्डरीकिणी नगरीमें धर्मप्रेमी धर्मस्वामी नामका संघपति रहता था ।।१९।। एक समय उसके साथ शाखा-

सूत्रमार्गानुगब्रह्मज्योतिर्ज्वलितविग्रहः ।
मुनिः सागरसेनाख्यः प्रययौ तेन सार्थिना ॥२०॥

दर्शनाद्दस्युसंघस्य समन्तादाकुलीकृताः ।
पलायाञ्चक्रिरे क्षिप्रं जना रत्नपुरान्तरे ॥२१॥

काल्या पुरूरवं नार्या पुलिन्दं मधुके वने ।
दृष्ट्वाऽपृच्छत तन्मार्गं नष्टमार्गो निराकुलः ॥२२॥

परया दयया तस्मै कृत्वा धर्मोपदेशनम् ।
तेन दर्शितसन्मार्गो जगाम मुनिसत्तमः ॥२३॥

पापात्साधूपदेशेन विरते मार्गदर्शनात् ।
आयुष्यान्ते स सौधर्मे जज्ञे द्विजलधिस्थितिः ॥२४॥

तत्राऽमितबलैश्वर्यकान्तिज्ञानयशोद्युतिः ।
अनुभूयोत्तमं सौख्यं ततोऽच्यवत नाकतः ॥२५॥

भारतेऽस्मिन्पुरे रम्ये साकेते पुण्यकर्मणः ।
वृषभस्याऽपत्यो योऽभूद् भरतो नामतः प्रियः ॥२६॥

तस्मादनन्तमत्यां च सुतोऽजनि गुणाकरः ।
मरीचिस्तरुणादित्यमरीचिनिकरद्युतिः ॥२७॥

पुरुदेवेन निष्क्रम्य परीषहपराजितः ।
[१]जन्मप्रसंविमोहेन पारिव्राज्यं व्यदत्त सः ॥२८॥

चिरकालं तपः कृत्वा कृतान्ताकृष्टजीवितः ।
बभूव ब्रह्मलोकेशो दशसागरजीवितः ॥२९॥

पुरे साकेतके नाम्नः कपिलस्य ततश्च्युतः ।
द्विजातेरभवत्काल्याः पुत्रश्च जटिलाह्वयः ॥३०॥

---

१. दीर्घसंसार ।

नुसार चलनेवाले, ब्रह्मज्योतिवाले एवं देदीप्यमान शरीरवाले सागरसेन नामके मुनि (यात्राके लिए) चले। रास्तेमें मधु नामके वनमें चारों तरफसे भीलोंके समूहने उन्हें घेर लिया जिससे सभी लोग घबड़ाकर पासके रत्नपुर नामके नगरमें भाग गये ॥२०-२१॥ पुरूरव नामके भीलको उसकी पत्नी कालीने उन मुनिको मारनेसे रोका। रास्ता भूले हुए उन मुनिराजने उसे देख उससे निराकुल भावसे रास्ता पूछा ॥२२॥ मुनिने बड़े दयाभावसे धर्मोपदेश दिया और उसके द्वारा दिखाये गये मार्गसे वे श्रेष्ठ मुनि चले गये॥२३॥ मुनिराजके उपदेशसे सच्चा मार्ग जान वह भील पापकर्मोंसे विरक्त हो गया और आयुके अन्तमें मरकर सौधर्म स्वर्गमें दो सागरकी आयुवाला देव हुआ ॥२४॥

वहाँपर अपार बल, ऐश्वर्य, कान्ति, ज्ञान, यश एवं द्युतिको पाकर उसने उत्तम सुख भोगे और फिर स्वर्गसे अवतरित हुआ तथा इसी भारतवर्षकी साकेत नामकी सुन्दर नगरीमें पुण्यशाली ऋषभदेवके प्रिय पुत्र चक्रवर्ती भरत और उसकी रानी अनन्तमतीसे उत्तम गुणोंवाला पुत्र मरीचि हुआ जिसकी कान्ति ऊपर चढ़ते हुए सूर्यकी किरणोंके समान थी ॥२५-२७॥ उसने भगवान् आदिनाथके साथ दीक्षा ले ली पर परीषहोंको न जीत सकनेके कारण और इस दीर्घ संसारमें आसक्ति होनेके कारण (तपस्या छोड़कर) परिव्राजक साधु हो गया ॥२८॥ इसके बाद चिरकालतक तप करके यमराजके द्वारा जीवन ले लेनेपर अर्थात् मृत्यु होनेपर ब्रह्मलोकका इन्द्र हुआ जहाँ उसकी आयु दस सागर की थी ॥२९॥

तदनन्तर वहाँसे च्युत होकर इसी साकेत नगरीमें कपिल नामके ब्राह्मणकी काली नामकी पत्नीसे जटिल नामका पुत्र हुआ ॥३०॥ उसने परिव्राजक साधुकी दीक्षा लेकर खूब तप

पारिव्राज्यमनुप्राप्य दीक्षां कृत्वा महत्तपः ।
सौधर्मे द्विसमुद्रायुरासीन्नाकभुवां पतिः ॥३१॥
स्थूणागारे ततश्च्युत्वा भारद्वाजस्य धीमतः ।
द्विजस्य पुष्पदन्तायां पुष्यमित्रः सुतोऽभवत् ॥३२॥
पारिव्राज्यधरो भूत्वा तपः कृत्वा चिरन्ततः ।
सौधर्मे त्रिदशोऽभूच्च सागरोपमजीवितः ॥३३॥
पुरि[२]श्वेतबिकाऽख्यायां च्युतोऽमितसुखात्ततः ।
अग्निभूतेः स गौतम्यां सूनुरग्निसहोऽजनि ॥३४॥
पारिव्राज्येन संचित्य पुण्यं निष्ठितजीवितः ।
सनत्कुमारकल्पेऽभूत्सुरः सप्तार्णवस्थितिः ॥३५॥
ततोऽवतीर्णो नगरे मन्दिरे सितमन्दिरे ।
सुतो गौतमकौशिक्योरग्निमित्रो बभूव सः ॥३६॥
चिरमूढ्वा धुरं धर्म्यां परिव्राजकवेषभृत् ।
सप्तोदधिसमायुष्को माहेन्द्रे विबुधोऽभवत् ॥३७॥
शालङ्कायनसंज्ञस्य द्विजातेर्मन्दिरे पुरे ।
च्युतोऽतो मन्दिरायाश्च भारद्वाजोऽभवत्सुतः ॥३८॥
पारिव्राजकरूपेण समुपात्ततपोधनः ।
सप्तसागरतुल्यायुर्माहेन्द्रोऽभूत्सुरोत्तमः ॥३९॥
ततः प्रत्यागतस्तीव्रमानमिथ्योपदेशः ।
चिरं ससार संसारे त्रसस्थावरयोनिषु ॥४०॥

शिखरिणीवृत्तम्

स संसारारण्यं भवनियुतनानाविधरुजा,
जरावल्लिस्यूतं व्यसनभुजगं रुग्वनचरम् ।

---

२ सूतिका, श्वेतिका इति उत्तरपुराणप्रतिलिपिषु पाठः ।

किया और अन्तमें मरकर सौधर्म स्वर्गमें देवोंका इन्द्र हुआ जहाँ उसकी आयु दो सागरकी थी ॥३१॥ इसके बाद वहाँसे च्युत होकर स्थूणागार नामके नगरमें विद्वान् ब्राह्मण भारद्वाजकी पत्नी पुष्प दन्तासे पुष्यमित्र नामका पुत्र हुआ ॥३२॥ वहाँ भी वह परिव्राजक साधु हो गया और बहुत समय तक तपश्चर्या करके सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। फिर सागर पर्यन्त वहाँ के अमित सुखोंको भोगकर वहाँसे च्युत हो श्वेतम्बिका नामके नगरमें अग्निभूति ब्राह्मणकी पत्नी गौतमीसे अग्निसह नामका पुत्र हुआ ॥३३-३४॥ उसने परिव्राजक साधुका रूप धारणकर जीवन बिताया और अन्तमें सनत्कुमार स्वर्गमें सात सागरकी आयुवाला देव हुआ ॥३५॥ इसके बाद वहाँसे अवतरित हो श्वेत भवनों वाले मन्दिर नामके नगरमें गौतम ब्राह्मणकी पत्नी कौशिकीसे अग्निमित्र नामका पुत्र हुआ ॥३६॥ और परिव्राजक साधुका वेष धारणकर कुधर्मके बोझको बहुत समयतक ढोकर अन्तमें माहेन्द्र स्वर्गमें सात सागरकी आयुवाला देव हुआ ॥३७॥ फिर वहाँसे च्युत हो मन्दिर नामके नगरमें शालङ्कायन नामक ब्राह्मण-पत्नी मन्दिरासे भारद्वाज नामका पुत्र हुआ ॥३८॥ फिर परि-व्राजक रूप धारण कर तप रूपी धनको प्राप्त कर अर्थात् खूब तपस्या कर अन्तमें सप्त सागरकी आयुवाला उत्तम देव हुआ॥३९॥ वहाँसे च्युत होकर वह तीव्र मान और मिथ्या उपदेशोंके कारण इस संसारमें अनेक त्रस और स्थावर योनियोंमें बहुत समयतक घूमता फिरा ॥४०॥

इस तरह भगवान् महावीरके उस जीवने जरारूपी लताओंसे भरे हुए, व्यसनरूपी सर्पों और रोगरूपी वनचर जानवरोंसे व्याप्त, महादुर्गतिरूपी पर्वतवाले, कुनयरूपी खोटे रास्ते तथा मृत्युरूपी सिंहोंसे भरे इस संसाररूपी जंगलमें अति उन्मार्ग ज्ञानी

बृहद्दुर्गत्यद्रिं कुनयकुपथं मृत्युमृगपं,
प्रविश्यात्युन्मार्गं प्रभुरनुबभूवार्त्तिमतुलाम् ॥४१॥

असद्वृत्तैर्जीवैः प्रविगलितपुण्याऽमृतरसै-
र्न शक्यं यत्प्राप्तुं जननबहुकोटीषु सुचिरात् ।
तदापन्मानुष्यं घननिचितपापोपशमनात् ,
कथञ्चित् सद्रत्नं निपतितमिवाऽन्तर्जलनिधेः ॥४२॥

इति वर्द्धमानचरित्रे पुराणसारसंग्रहे अर्थाख्यानसंयुते देव-
सङ्घस्य कृतौ प्रथमः सर्गः समाप्तः ॥

होकर प्रवेश किया और अनेक भवोंमें मिले हुए अनेक प्रकारके विषैले रोगोंसे अतुलनीय दुखोंका अनुभव किया ॥४१॥ खोटे चरित्रवाले जीव-जिनका कि पुण्यरूपी अमृत रस एकदम गलित हो गया है-बहुत समयतक नाना जन्मोंमें भी जिस मनुष्य योनि को नहीं पा सकते, उसे यह जीव, पापराशिके उपशम होने पर ठीक वैसे ही पा लेता है जैसे कोई समुद्रके भीतरसे निकलकर बाहर पड़े हुए उत्तम रत्नको पा लेता है ॥४२॥

इसप्रकार अर्थाख्यानसंग्रहसे युक्त पुराणसंग्रहके वर्धमानचरित्रमें-जो कि देवसंघके लिए बनाया गया था-प्रथम सर्ग समाप्त हुआ ।

द्वितीयः सर्गः

अथेह भारते वर्षे पुरे राजगृहे शुभे ।
शाण्डिल्यायनविप्रोऽभूद्यो रतो धर्मकर्मसु ॥ १ ॥

पाराशर्यां सुतस्तस्माज्जातः स्थावरनामभृत् ।
पारिव्रज्यात्तपुण्येन माहेन्द्रं कल्पाश्रयत् ॥ २ ॥

सप्ताऽर्णवसमं कालमुपभुज्य परं सुखम् ।
अवसानं गते पुण्ये च्युतोऽतृप्तसुखस्ततः ॥ ३ ॥

पुरे राजगृहे राज्ञी विश्वभूतेर्यशस्विनः ।
जयिन्यास्तनयो जज्ञे विश्वनन्दी गुणालयः ॥ ४ ॥

विशाखभूतये भ्रात्रे राज्यलक्ष्मीं कनीयसे ।
सुददौ यौवराज्यं च सूनवे विश्वनन्दिने ॥ ५ ॥

आचार्यश्रीधरोपान्ते राजभिस्त्रिशतैः सह ।
दीक्षां विरहितग्रन्थां ददे श्रीमाननुत्तमाम् ॥ ६ ॥

यौवराज्यश्रिया कान्तो विश्वनन्दिरतिप्रियः ।
सहस्राम्रवनं श्रीमान्ययौ सान्तःपुरोऽन्यदा ॥ ७ ॥

सर्वर्त्तुसुखदे तस्मिन्सर्वर्त्तुकुसुमाकरे ।
आरराम परैर्भोगैः समेतो दयिताजनैः ॥ ८ ॥

लक्ष्मणायां महादेव्यां नृपतेस्तनयोऽभवत् ।
नाम्ना विशाखनन्दीति यः कान्तः शरदिन्दुवत् ॥ ९ ॥

स साम्यो युवराजेन गुणरूपविभूतिभिः ।
उद्यानसम्प्रवेशस्य निषेधादगमद्रुषम् ॥१०॥

द्वितीय सर्ग

अथानन्तर वह जीव इसी भारतवर्षके उत्तम राजगृह नामके नगरमें धर्म कर्ममें रत शाण्डिल्यायन नामके ब्राह्मण और उसकी पत्नी पाराशरीसे स्थावर नामका पुत्र हुआ। और परिव्राजक बन-कर पुण्योपार्जन कर महेन्द्र स्वर्ग गया जहाँ उसने सात सागर तक उत्तम सुख भोगे। फिर पुण्य क्षय होनेसे वहाँके सुखोंमें अतृप्त होता हुआ च्युत हुआ ॥१-३॥ और राजगृह नगरमें यशस्वी राजा विश्वभूतिकी रानी जयिनीसे गुणवान् विश्वनन्दी नामका पुत्र हुआ ॥४॥

एक समय राजा विश्वभूतिने अपने छोटे भाई विशाखभूतिको राज्यपद देकर और अपने पुत्र विश्वनन्दिको युवराज पद देकर आचार्य श्रीधरके पास तीन सौ राजाओंके साथ सब परिग्रह छोड़कर श्रेष्ठ जैनी दीक्षा ले ली ॥५-६॥ किसी समय युवराजपद-से विभूषित, कामदेवके समान वह विश्वनन्दि अपने रनिवासके साथ सहस्राम्रवनमें क्रीडा करनेके लिए गया ॥७॥ और सब ऋतुओंमें सुख देनेवाले, तथा सब ऋतुओंके फूलोंसे भरे हुए उस उद्यानमें वह स्त्रियोंके साथ उत्तम भोगोंसे क्रीड़ा करने लगा ॥८॥

इधर राजा विशाखभूतिकी महारानी लक्ष्मणासे शरत्कालीन चन्द्रमाके समान मनोहर विशाखनन्दी नामका पुत्र था ॥९॥ वह गुण, रूप और वैभवमें युवराज विश्वनन्दीके समान था। एक समय विश्वनन्दी उद्यानमें क्रीड़ा कर रहा था उस समय उसे वहाँ जाने न दिया गया इससे वह रुष्ट हो गया ॥१०॥ और अपनी

तदुक्त्वात्मन उद्यानमयाचत स मातरम् ।
सापि क्षितिभुजं तस्य यययाचे सकारणम् ॥११॥

अनुमत्य गिरं तस्या मन्त्रयित्वा स मन्त्रिभिः ।
समाहूय जगादेत्थं सादरं विश्वनन्दिनम् ॥१२॥

अस्माकं विषयप्रान्तं द्विषांचक्रैरुपप्लुतम् ।
उद्योगं तद्विनाशाय करिष्ये त्वरयाऽधुना ॥१३॥

अप्रमादेन भवता लोकचारित्रवेदिना ।
रक्ष्यो देशः सह पुरा पुरा दृष्टसुखोदयः ॥१४॥

इत्येवं निगदन्तं तं तदनुष्ठानमानसः ।
विज्ञाप्य सादरं कृच्छ्रात्तदनुज्ञामलब्ध सः ॥१५॥

बलेन महता तेन विश्वनन्दी समावृतः ।
आ देशान्तं ययौ शीघ्रं निसर्गप्रियसंयुगः ॥१६॥

तदन्तरे तदापास्य योषितो विश्वनन्दिनः ।
राजा प्रावेशयत्पुत्रमाक्रीडं नन्दनोपमम् ॥१७॥

ततः प्रत्यागतः पश्यन्परचक्रनिपीडितम् ।
विदित्वा तत्कृतं सर्वं रुषा जज्वाल वर्तिवत् ॥१८॥

उद्यानतिलकं स्तम्भं श्रिया दीप्तं शिलामयम् ।
बभञ्ज कूर्परेणाशु कपित्थं च व्यपातयत् ॥१९॥

दर्शयित्वाऽत्मनः शक्तिं स निर्वेदमुपागतः ।
सम्भूतोपान्तिके दीक्षामनवद्यामुपाददे ॥२०॥

अन्यदा प्राप्तचारित्रः पारणायै महामनाः ।
मुनिर्मासोपवासान्ते विवेश मथुरां पुरीम् ॥२१॥

माँसे कहकर उद्यानमें प्रवेश करनेकी याचना की। उसकी माताने भी राजासे कारण बतलाकर उसे उद्यानमें जाने देनेकी माँग की ॥११॥ तब राजाने रानीकी बातको मानकर अपने मन्त्रियोंसे सलाह ली और विश्वनन्दीको प्रेमपूर्वक बुलाकर इस प्रकार कहा ॥१२॥ कि हे युवराज ! हमारे देशके सीमान्त भागमें शत्रु-दल उपद्रव मचा रहा है। इस समय उसे जल्दी ही नष्ट करनेके लिए मैं चढ़ाई करूँगा ॥१३॥ तुम लोक-व्यवहारको जानते हो इसलिए प्रमादरहित होकर नगरवासियोंके साथ बहुत समयसे सुख-समृद्धिसे सम्पन्न अपने देशकी रक्षा करो ॥१४॥ इसप्रकार राजाके कहनेपर स्वयं ही उस कार्यको करनेकी इच्छासे अर्थात् स्वयं ही शत्रुका नाश करनेकी इच्छासे विश्वनन्दीने विनयपूर्वक राजासे निवेदन किया और किसी तरह उससे आज्ञा पा ली॥१५॥ तब स्वभावसे युद्धका प्रेमी वह विश्वनन्दी बड़ी भारी सेनाके साथ शीघ्र ही देशके सीमाप्रान्तको चला गया ॥१६॥

इस बीच राजाने विश्वनन्दीकी पत्नियोंको नन्दनवनके समान उस बगीचेसे हटाकर वहाँ अपने पुत्रको क्रीडाके हेतु जाने दिया ॥१७॥ इसके बाद विश्वनन्दी शत्रुदलकी बाधाको देखते हुए लौट आया और यह सब इन सब लोगोंका रचा हुआ जाल समझकर क्रोधसे दीपककी वत्तीके समान जलने लगा ॥१८॥ और अपने हाथकी केहुनीसे पत्थरके बने शोभनीय उद्यानतिलक नामक खम्भेको उखाड़ दिया और कैथेके वृक्षको (जहाँ विशाखनन्दी छिपा था) गिरा दिया ॥१९॥

इस प्रकार अपनी शक्तिको दिखलाकर वह संसारसे विरक्त हो गया और सम्भूत नामके मुनिराजके पास पाप रहित (दैगम्बरी) दीक्षा ले ली ॥२०॥ एक दिन वे चरित्रवान् विशालहृदय मुनिराज एक मासके उपवासके बाद पारणा करनेके लिए मथुरा नगरीमें

सुचिरं तपसोग्रेण सुकृशीकृतविग्रहः ।
शान्तः वत्सप्रहारेण रथ्यायां स्खलितोऽभवत् ॥२२॥

लक्ष्मणातनयस्तस्यां वेश्याहर्म्ये समास्थितः ।
तमालोक्य जहासोच्चैरमानुषबलक्षयात् ॥२३॥

अकृत्वा पारणां रुष्टस्तदप्रियवचःश्रुतेः ।
सनिदानो विहायाङ्गं महाशुक्रेशसंगतः ॥२४॥

अवाप्ताऽष्टगुणैश्वर्यः षोडशार्णवजीवितः ।
स्वसंस्कारविपाकेन भोगान्भुक्त्वा ततश्च्युतः ॥२५॥

वर्षेऽस्मिन् पौदने ख्याते पुरे राज्ञः प्रजापतेः ।
मृगावत्यां प्रभावत्यां त्रिपृष्ठोऽजायतात्मजः ॥२६॥

सोऽभूद्राज्ञोऽग्रजायायां जयायां विजयः सुतः ।
विश्वभूतिश्च नामासीद्यः पुराभवजन्मनि ॥२७॥

तावभूतां जयासूनु-त्रिपृष्ठौ चारुवर्चसौ ।
प्रकृष्टप्रणयाबद्धौ महासत्त्वबलश्रियौ ॥२८॥

भ्राता विशाखनन्दी यः प्रसन्नात्मा पुराभवे ।
अश्वग्रीवस्त्रिपृष्ठस्य शत्रुरासीत्खगेश्वरः ॥२९॥

तं हत्वा प्रथमे भूत्वा भारते रामकेशवौ ।
स्वसर्वरत्नविस्तारावभुञ्जातां श्रियं चिरम् ॥३०॥

अतृप्तः कामभोगानां केशवोऽन्ते जगाम सः ।
नरकं सप्तमं तीव्रं बहुक्लेशरसाकरम् ॥३१॥

प्रविष्ट हुए ॥२१॥ बहुत समयतक उग्रतप करनेके कारण उनका शरीर कृश हो गया था। वे शान्त मुनिराज गायके बछड़ेके धक्केसे गिर पड़े ॥२२॥ वहाँ लक्ष्मणाका वह पुत्र विशाखनन्दी एक वेश्याके मकानमें खड़ा हुआ उन्हें देख रहा था। तथा उनके अमानुषिक बलके नष्ट होनेसे वह बहुत जोरोंसे हँसा ॥२३॥ उसके इन अप्रिय वचनोंको सुनकर उन मुनिराजको बड़ा क्रोध आया और वे पारणा बिना किये ही लौट गये। अन्तमें निदान पूर्वक शरीरको छोड़कर महाशुक्र स्वर्गमें देव हुए ॥२४॥ वहाँ अणिमा आदि आठ ऐश्वर्योंसे युक्त हो सोलह सागरकी आयु पाई और अपने पूर्व पुण्योदयसे नाना भोगोंको भोगकर वहाँसे च्युत हुआ ॥२५॥

अथानन्तर इसी भारतवर्षके पोदनपुर नामक प्रसिद्ध नगरमें राजा प्रजापतिकी प्रभावशालिनी मृगावती रानीसे त्रिपृष्ठ नामका पुत्र हुआ। और पूर्वजन्ममें जो राजा विश्वभूतिका जीव था वह राजा प्रजापतिकी बड़ी रानी जयावतीसे विजय नामका पुत्र हुआ ॥२६-२७॥ जयावतीके पुत्र विजय और त्रिपृष्ठ दोनों बड़े प्रतापशाली थे, उन दोनोंमें बड़ा स्नेह था तथा बड़ा पराक्रम और बड़ी शोभा थी ॥२८॥

पूर्वजन्ममें विश्वनन्दीका चचेरा भाई विशाखनन्दी-जो कि बड़ा मौजी था-अश्वग्रीव नामका विद्याधर हुआ। वह त्रिपृष्ठका शत्रु था ॥२९॥ उसे मारकर वे दोनों भाई इस भारतवर्षमें प्रथम नारायण और बलदेव हुए और अपने सब प्रकारके रत्नोंको पाकर बहुत समयतक राज्यलक्ष्मीका भोग किया ॥३०॥ काम भोगोंमें तृप्त न होता हुआ वह त्रिपृष्ठ नारायण अन्तमें मरकर तीव्र एवं बहुत कष्टोंकी खानि वाले अर्थात् अनेक कष्टोंसे भरे हुए सातवें नरकमें गया ॥३१॥ वहाँ उत्कृष्ट आयु अर्थात् तैंतीस सागरकी

उत्कृष्टजीवितो दुःखं प्राप्य तस्माद्विनिर्गतः ।
अस्या रोधसि गङ्गाया जातः सिंहगिरौ हरिः ॥३२॥
अर्जयित्वा महत्पापं जीवितान्तमुपेतवान् ।
एकार्णवोपमायुष्को नरके प्रथमेऽजनि ॥३३॥
दुस्तरां वेदनां तस्मिन्ननुभूतगरीयसीम् ।
तस्मान्निर्गत्य संजातः सोऽयं त्वमिह केशरी ॥३४॥
संसृतिः सिंह संसारे सुखासुखविपाकिनी ।
त्वयैव सुचिरं कालमनुभूता स्वकर्मणा ॥३५॥
तदसत्यजमिथ्यात्वं पापतो विरतो भव ।
धर्मे निधेहि चित्तं स्वं यदीच्छेर्निर्गमं भवात् ॥३६॥
आवाभ्यां श्रीधरस्यान्ते श्रुतं केवलवेदिनः ।
दशमे जनने सिंह भवितासि जिनः किल ॥३७॥
इत्युक्त्वा सम्मुदोत्कर्षकणिकाविलचक्षुषे ।
सद्दृष्टिं हरये दत्वा गतौ चक्रे मनो मुनी ॥३८॥

मालिनीवृत्तम्

सुरयुवतिकुचान्तालीनगन्धादिवासं
कुवलयदलरागस्यामलं वायुमार्गम् ।
स्वतनुविसृतपिङ्गज्योतिषाऽभ्युज्ज्वलन्तौ
शमितकलुषवृत्ती चारणावाश्रयेताम् ॥३९॥

हरिणीवृत्तम्

रहितदुरितस्रस्तोर्भ्रान्तेर्भवार्णवसंकटे
शुभपरिणतिः प्रत्याख्यानं प्रगृह्य यथाविधि ।
मरणवशगः सौधर्मस्थं प्रेयाय मनोरमं
शमुदधिजले मग्नो देवो बभूव हरिध्वजः ॥४०॥

इति वर्द्धमानचरिते पुराणसंग्रहे सम्यग्दर्शनावलम्बो नाम द्वितीयः सर्गः समाप्तः ॥

आयु पाकर अनेक दुख भोगकर वहाँसे निकला और इस गंगाके तटपर सिंहगिरि नामक पर्वतपर सिंह हुआ। और बहुत पाप इकट्ठेकर मरा तथा प्रथम नरकमें एक सागरकी आयुवाला नारकी हुआ। वहाँ उसने कठिनसे कठिन भारी वेदनाओंका अनुभव किया और वहाँसे निकलकर वह यहाँ तुम–सिंह–हुए हो ॥३२–३४॥ हे सिंह ! इस संसारमें सुख और दुःखके विपाकस्वरूप परिवर्तनको तुमने अपने कर्मोंके आधीन होकर बहुत काल तक भोगा ॥३५॥ इसलिए मिथ्या बातोंसे उत्पन्न मिथ्यात्वरूपी पापसे तुम विरक्त हो जाओ और यदि इस संसारसे निकलना चाहते हो–छुटकारा चाहते हो–तो धर्ममें चित्त लगाओ ॥३६॥ हे सिंह ! हम दोनों मुनियोंने श्रीधर नामक केवलीके पास सुना है कि तुम अबसे दशमें भवमें तीर्थंकर होओगे ॥३७॥

इस प्रकार कहकर तथा अत्यन्त आनन्दके कारण सजल नेत्रवाले उस सिंहको सम्यग्दर्शन देकर उन जय और अमित मुनिने जानेकी इच्छा प्रकट की ॥३८॥

अपने शरीरसे निकलती हुई पीली ज्योतिसे प्रकाशमान, कलुषित परिणामोंसे रहित, वे दोनों चारण मुनि, उस आकाश मार्गसे जाने लगे जो कि देवाङ्गनाओंके स्तनोंपर लगे हुए सुगन्धित द्रव्योंसे सुगन्धित तथा नीले कमलोंकी कान्तिके समान निर्मल था ॥३९॥

वह सिंह भी पापसे रहित, भवसागरके संकटमें घूमनेसे भयभीत एवं शुभ भावनाओंवाला हो विधिवत् प्रत्याख्यान कर मरा और सौधर्म स्वर्गमें मनोरम शान्ति पा हरिध्वज–सिंहकेतु–नामका देव हुआ तथा वहाँ एक सागरकी आयु पाई ॥४०॥

इस प्रकार पुराण-सारसंग्रहके वर्धमानचरितमें सम्यग्दर्शन-प्राप्ति नामक द्वितीय सर्ग समाप्त हुआ।

तृतीयः सर्गः

च्युत्वाऽतो धातकीखण्डे पूर्वमन्दरपूर्वगे ।
विदेहे मङ्गलावत्यां विजयार्द्धोत्तरे तटे ॥१॥
कनकप्रभपुरेशस्य कनकाभमहीपतेः ।
देव्यां कनकमालायां सुतोऽभूत्कनकोज्ज्वलः ॥२॥
राजतां विपुलां प्राप्य स स्ववसुविभूतये ।
कनकप्रभया भोगान् बुभुजेऽनिन्दितश्रिया ॥३॥
कदाचिन्मन्दरोद्याने प्रियमित्रमुनीश्वरात् ।
श्रुत्वा धर्मं स जग्राह सम्यग्दर्शनमुत्तमम् ॥ ४ ॥
सूनौ निधाय राज्यं स्वं कनकादिरथाह्वये ।
दीक्षित्वा तन्मुनेरन्ते चचार विपुलं तपः ॥ ५ ॥
कृत्वा सल्लेखनां मुख्यामन्ते लान्तवसंज्ञके ।
कल्पे त्रयोदशाब्ध्यायुः सुरानन्दः सुरोऽभवत् ॥ ६ ॥
देवोऽवतीर्य साकेतनगरे च महीपतेः ।
वज्रसेनात्सुषेणायां हरिषेणः सुतोऽभवत् ॥ ७ ॥
अन्यदा समुतो धर्मं स श्रुत्वा श्रुतसागरात् ।
प्रदाय सूनवे राज्यं प्रादीक्षत तदन्तिके ॥ ८ ॥
राज्यसन्यक्तवयोर्लब्धिमवाप्याभवत् सुखम् ।
श्रावकीयां परावृत्तिं चरन्ननतिचारिणीम् ॥ ९ ॥
आयुरन्ते महाशुक्रे विमाने प्रीतिवर्द्धने ।
अभूत्प्रीतिङ्करो नाम्ना ख्यातो नाथो दिवौकसाम् ॥१०॥
षोडशोदधिसाम्यायुरनुभूय सुखामृतम् ।
पुण्यनिष्ठापरिक्षीणे विभूतिं च्युतवानतः ॥११॥

तृतीय सर्ग

वहाँसे च्युत होकर वह देव धातकीखण्ड द्वीपके पूर्वमन्दराचलके पूर्व विदेहमें मंगलावती देशके विजयार्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें कनकप्रभपुरके राजा कनकाभ और रानी कनकमालासे कनकोज्ज्वल नामका पुत्र हुआ ॥१-२॥ वहाँ उसने विशाल राज्य पाकर अपने धन और वैभवके अनुकूल ही अपनी उत्तम शोभावाली रानी कनकप्रभाके साथ नाना प्रकारके भोग भोगे ॥३॥

किसी समय उसने मन्दर नामक उद्यानमें प्रियमित्र नामके मुनीश्वरसे धर्मोपदेश सुनकर उत्तम सम्यग्दर्शन धारण किया ॥४॥ और कनकरथ नामक अपने पुत्रको राज्य देकर उन्हीं मुनिके पास दीक्षा लेकर महान् तप करने लगा ॥५॥ फिर प्रधान संल्लेखनाको धारण कर लान्तव नामक स्वर्गमें तेरह सागरकी आयुवाला देवोंको आनन्द देनेवाला देव हुआ ॥६॥ तत्पश्चात् वहाँसे अवतीर्ण हो अयोध्या नगरीके राजा वज्रसेन और रानी सुषेणासे हरिषेण नामका पुत्र हुआ ॥७॥ एक दिन पुत्रके साथ वज्रसेन राजाने श्रुतसागर मुनिसे धर्मोपदेश सुना और अपने पुत्रको राज्य देकर उनके पास दीक्षा ले ली ॥८॥ हरिषेणने राज्यके साथ सम्यक्त्वको भी प्राप्त कर और अतिचाररहित श्रावकोंके उत्तम व्रतोंका पालन करते हुए नाना सुख भोगे ॥९॥ फिर आयु समाप्त होने पर महाशुक्र स्वर्गके प्रीतिवर्द्धन नामक विमानमें देवोंका स्वामी प्रीतिङ्कर नामका देव हुआ ॥१०॥ वहाँ उसने सोलह सागर तक सुखामृतका पान किया और पुण्योदयके क्षीण होनेपर वहाँसे च्युत हुआ ॥११॥

धातकीखण्डपूर्वस्थमन्दराचलपूर्वगे ।
विदेहे पुष्कलावत्यां विषये जनतासुखे ॥१२॥

नगर्यां पुण्डरीकिण्यां सुमित्राख्यमहीपतेः ।
सुव्रतायामभूत्पुत्रः प्रियमित्रो गुणाकरः ॥१३॥

क्षेमङ्करजिनस्यान्ते धर्मं श्रुत्वा महीपतिः ।
दत्त्वा राज्यं स्वपुत्राय शिष्योऽभूत्तस्य धीमतः ॥१४॥

नृपश्रियं परां बिभ्रत्साम्राज्यं समवाप सः ।
निजपुण्यवशीभूतनृपविद्याधरामरम् ॥१५॥

सुरविद्याधरानीतां भोगश्रियमनुत्तमाम् ।
उपभुज्य चिरं भूमौ द्वितीय इव वासवः ॥१६॥

राजराजोऽन्यदा भोगसमास्वादविरक्तधीः ।
सूनवेऽरिञ्जयायेमान्ददौ प्रीतो नृपश्रियम् ॥१७॥

ततः क्षेमङ्करस्याऽन्ते दीक्षामक्षतपौरुषः ।
सार्कं राजसहस्रेण प्रपेदे क्लेशभञ्जिनीम् ॥१८॥

तपः कृत्वा चिरं कालमाराधितचतुष्टयः ।
उदपादि सहस्रारे विमाने रुचकाह्वये ॥१९॥

अष्टादशसमुद्रायुस्तत्र सूर्यप्रभः सुरः ।
बुभुजे विषयप्रीतिजननीं भोगसम्पदम् ॥२०॥

कृतान्तदृष्टिपातेन निरस्तविभवोदयः ।
ततश्च्युतो महीपाल सोऽयं त्वमिह जातवान् ॥२१॥

इत्येवं जन्मसन्तानो भवतो गदितो मया ।
तं विदित्वा लघु प्राप्य चोत्सह पदमक्षरम् ॥२२॥

तथा धातकीखण्ड द्वीपके पूर्व मन्दराचलके पूर्व विदेहमें जनताको सुख देनेवाले पुष्कलावती देशमें पुण्डरीकिणी नगरीके राजा सुमित्र और रानी सुव्रतासे अनेक गुणोंवाला प्रियमित्र नाम का पुत्र हुआ ॥१३॥ एक समय क्षेमंकर तीर्थंकरके समीप धर्मोपदेश सुनकर वह राजा अपने पुत्रको राज्य देकर उन विद्वान् मुनिराजका शिष्य हो गया ॥१४॥ प्रियमित्रने उत्तम राज्यलक्ष्मी को धारण कर ऐसे साम्राज्य-पदको पाया जिसमें उसके पुण्यसे सभी राजा, विद्याधर और देवता उसके वशीभूत थे अर्थात् उसने चक्रवर्ती पद पाया ॥१५॥ उसने देवताओं और विद्याधरों-द्वारा लाई गई अत्युत्तम भोग-लक्ष्मीका बहुत समयतक, पृथ्वीमें दूसरे इन्द्रके समान उपभोग किया ॥१६॥

एक दिन वह चक्रवर्ती विषय-भोगोंसे विरक्त हो गया और अरिञ्जय नामके अपने पुत्रको सुखपूर्वक राज्य-पद दे दिया॥१७॥ तथा पूर्ण पुरुषार्थी उस राजाने क्षेमङ्कर मुनिराजके पास एक हजार राजाओंके साथ पापोंको नष्ट करनेवाली दीक्षा ले ली ॥१८॥ उस राजाने बहुत समयतक तपस्या की और चार आराधनाओंका आराधन कर सहस्रार स्वर्गके रुचक नामक विमानमें देव हुआ ॥१९॥ वहाँ उसका नाम सूर्यप्रभ था और अठारह सागरकी आयु पर्यन्त उसने विषयोंमें प्रीति उत्पन्न करनेवाली भोग-सम्पत्तिका भोग किया ॥२०॥ फिर यमराजके दृष्टिपातसे अर्थात् आयु समाप्त होनेपर पुण्योदय क्षीण होनेसे वह वहाँसे च्युत हुआ और हे राजन्, वह यहाँ तुम ही (नन्दन नामके राजा) हुए हो[१] ॥२१॥

इस प्रकार मैंने (प्रोष्ठिलने) तुम्हारे पूर्व जन्मोंकी परम्परा कह दी । अब इसको भलीभाँति समझकर कर्मोंके बोझको हल्का

१—यह कथानक प्रथम सर्गके तेरहवें श्लोकसे बराबर चल रहा है ।

श्रुतवांस्तद्गिरं श्रव्यां ज्ञात्वा वृत्तिं जनार्णवे ।
राजा विरक्तराज्यश्रीस्तं मुनिं समपूजयत् ॥२३॥
ततः प्रियङ्कराकान्तसूनवे गुणभागिने ।
आनन्दाय ददौ राज्यं समस्तगुणशोभितम् ॥२४॥
सत्तीर्थं वासुपूज्यस्य तस्यालंकुर्वतो गुणैः ।
उपान्तिके महाराजो व्यजहाद् ग्रन्थसंहतिम् ॥२५॥
अभ्यस्यैकादशाङ्गानि संयमेन महामतिः ।
चक्रे तपांसि घोराणि कर्मराशिं जिगीषया ॥२६॥
आबध्य तीर्थकृन्नाम कर्मषोडशकारणैः ।
प्रायोपगमनेनान्ते जहौ योगतनुं तनुम् ॥२७॥
विमाने चाच्युते कल्पे स पुष्पोत्तरनामनि ।
द्वाविंशत्यब्धिसाम्यायुर्जातस्त्रिदशसत्तमः ॥२८॥

मालिनीवृत्तम्

दिनकरकरराग्रहेपणात्मीयतेपु।
ज्वलितवलयमाला मौलिलीलोत्तमश्रीः ।
सुकृतफलविपाकप्राप्तदेवाधिपत्यो
रुचिरगुणकलापो ज्ञानशक्तिर्बभूव ॥२९॥
सुखरसनिचिताङ्गै रम्यगन्धादिशोभैः
स्मरशरसितधारापातलक्ष्यत्वजातैः ॥
सकलगुणकलैः स्वैश्चारुदेवीसहस्रैः
श्चिरमरमत भोगास्वादसंसिक्तचित्तः ॥३०॥

इति वर्द्धमानचरिते पुराणसारसंग्रहे भगवद्भवाभिधानो नाम
तृतीयः सर्गः समाप्तः ॥

कर मोक्षपद पानेके लिए उत्साह करो ॥२२॥ तब उनकी मनोहर वाणीको सुनकर और भवसागरमें भ्रमणकी बातको जानकर वह राजा राज्यलक्ष्मीसे विरक्त हो गया और उन मुनिराजकी पूजा की। फिर प्रियङ्करा रानीसे उत्पन्न गुणवान् अपने पुत्र आनन्दको सब गुणोंसे सम्पन्न राज्य दे दिया ॥२३-२४॥ वह भगवान् वासुपूज्य तीर्थंकरका तीर्थकाल था, उसमें गुणोंसे सुशोभित उन प्रोष्ठिल मुनिराजके समीप उसने सब प्रकारका परिग्रह छोड़कर दीक्षा ले ली ॥२५॥ और संयम धारणकर उस महामतिने ग्यारह अंगोंका अभ्यास किया तथा कर्मराशिको जीतनेकी इच्छा से घोर तपस्या की ॥२६॥ तथा दर्शनविशुद्धि आदि सोलह भावनाओंको भावना करके नामकर्मकी तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध किया और प्रायोपगमन संन्यास धारण कर तपस्यासे क्षीण शरीरका त्याग कर दिया ॥२७॥ फिर अच्युत स्वर्गके पुष्पोत्तर नामक विमानमें बाईस सागरकी आयुवाला देवोंका इन्द्र हुआ ॥२८॥

वह इन्द्र सूर्यकी किरणोंको लज्जित करनेवाले चमकीले हाथके कंगन, गलेकी माला और सिरके मुकुटसे अत्यन्त शोभित था। उसने अपने पुण्य कर्मके उदयसे देवेन्द्र पदको पाया था तथा वह मनोहर गुणसमूहों व ज्ञानशक्तिसे युक्त था ॥२९॥ वहाँ उस देवने भोगोंके आनन्दमें आसक्त चित्त होकर बहुत समयतक सुखरससे भरे हुए अंगोंवाली रमणीय सुगन्धित द्रव्योंसे सुशोभित, तथा कामदेवके बाणोंकी तीक्ष्णधाराके बराबर गिरनेसे निशानके समान, एवं अनेक गुणों और कलाओंसे सम्पन्न, सहस्रों देवाङ्गनाओंके साथ भोग भोगे ॥३०॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रहके वर्धमानचरितमें भगवान्‌के भवोंका कथन नामक तृतीय सर्ग समाप्त हुआ।

चतुर्थः सर्गः

अथाऽस्मिन् भारते वर्षे विदेहेषु महर्द्धिषु ।
आसीत्कुण्डपुरं नाम्ना पुरं सुरपुरोत्तमम् ॥ १ ॥

सिद्धार्थस्तत्र राजासीत्प्रजाकान्ततराकृतिः ।
प्रसह्य भूक्षितां हर्त्ता रत्नानां दैवसम्पदाम् ॥ २ ॥

आसीत्तस्य महादेवी दयिता प्रियकारिणी ।
रूपकान्तिविभूत्याद्यैर्जयन्ती देवयोषितः ॥ ३ ॥

साऽन्यदा सकलश्रीभिः समालिङ्गितविग्रहा ।
शिरीषमृदुसंस्पर्शशयने शयिता सुखम् ॥ ४ ॥

वारणं गोपतिं सिंहमभिषेकयुतां श्रियम् ।
दामनी शशिनं सूर्यं मत्स्ययुग्मं घटद्वयम् ॥ ५ ॥

नलिनीं विकचाम्भोजां सागरं हरिविष्टरम् ।
विमानं भवनं दीप्तरत्नराशिं हुताशनम् ॥ ६ ॥

स्वप्नानेतान्क्षपान्ते तां दर्शयित्वा पृथक्-पृथक् ।
षण्मासप्राप्तदेवेन्द्रपूजः पुष्पोत्तराधिपः ॥७॥

अवतीर्य ततो लोकान्कम्पयन् पुण्यशक्तितः ।
सितवारणरूपेण दिव्यः प्राविशदाननम् ॥८॥ चतुर्थकम् ।

सा प्रबुद्धा स्वयं देवी समलंकृतविग्रहा ।
राज्ञे न्यवेदयत्सर्वमपूर्वां बिभ्रती रुचम् ॥९॥

स जगाद फलं तेषां संजाताङ्कुरुहोत्तमः ।
गुरोस्त्रिभुवनस्याऽऽवां यास्यावो गुरुतामिति ॥१०॥

चतुर्थ सर्ग

अथानन्तर–इसी भरत क्षेत्रमें विदेह नामका समृद्धिशाली देश है वहाँ देवोंके नगरोंसे भी बढ़कर कुण्डनपुर नामका नगर था ॥१॥ उस नगरमें जनताके बीच सुन्दर आकृतिवाला सिद्धार्थ नामका राजा था जिसने अपनी शक्तिसे बड़े-बड़े राजाओंको, दैव सम्पत्तियोंको एवं रत्नोंको प्राप्त किया ॥२॥ उसकी प्रिय-कारिणी नामकी प्यारी पटरानी थी जिसने रूप, कान्ति, वैभव आदिसे देवाङ्गनाओंको जीत लिया था ॥३॥

एक समय वह श्री ह्री आदि देवियोंसे अच्छी तरह सेवित हो शिरीषपुष्पके समान कोमल शय्यापर सुखसे सो रही थी ॥४॥ उस समय उसे रात्रिके अन्तमें गज, वृषभ, सिंह, अभिषेक की जाती हुई लक्ष्मी, दो मालाएँ, चन्द्र, सूर्य, मीनयुगल, दो कलश, खिले कमलोंसे भरा सरोवर, समुद्र, सिंहासन, विमान, धरणेन्द्रका भवन, जगमगाती हुई रत्नराशि और निर्धूम अग्नि–इन सोलह स्वप्नोंको अलग-अलग दिखलाकर, आयुके अन्तिम छह माहोंमें देवेन्द्रोंसे पूजित वह पुष्पोत्तर विमानका स्वामी इन्द्र स्वर्गसे अवतीर्ण हुआ और अपनी पुण्यशक्तिसे तीनों लोकोंको कम्पित करता हुआ श्वेत हाथीका रूप धारण कर उस माताके मुखमें प्रविष्ट हुआ ॥५–८॥ यह देख वह रानी स्वयं जाग गई और शरीरको अलंकारोंसे विभूषित कर मनोहर रूप धारण कर राजाके पास गई और उन सोलह स्वप्नोंको निवेदन करने लगी ॥९॥ तब हर्षसे पुलकित हो उस राजाने स्वप्नोंके फलको कहा कि हमलोग तीनों लोकके गुरु–तीर्थंकर–के गुरु अर्थात् माता-पिता होवेंगे ॥१०॥

वसूनां सार्धकोटीकास्तिस्रः कोटीर्दिने दिने ।
मासान् पञ्चदश जन्म धनदोऽपातयद्गृहे ॥११॥

जातेरुपस्थिते काले दिशि प्राच्यामिवांशुमान् ।
अजायत जिनस्तस्यां कम्पयञ्जगतां त्रयम् ॥१२॥

तदाऽशेषाः प्रजास्तुष्टाः प्रसेदुः सकला दिशः ।
सुरदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षो दिवोऽपतत् ॥१३॥

इन्द्राः सपदि तज्जन्म ज्ञात्वा विष्टरकम्पनैः ।
आययुस्तत्पुरं भूत्या सदेवाः साप्सरोगणाः ॥१४॥

जिनाम्बां प्रतिबिम्बेन प्रमोह्य कृतसंस्कृतिम् ।
शची जिनमुपादाय वज्रिणो निदधे करे ॥१५॥

स रराज तदाऽतीव सदुकूले करे हरेः ।
सन्ध्यातने सिताम्भोधेः विवस्वानिव शारदः ॥१६॥

धार्यमाणसितच्छत्रं लोलचामरवीजितम् ।
मन्दराग्रं निनायेन्द्रो रत्नांशुद्युतिपाटलम् ॥१७॥

उपवेश्य स तं दीप्तो विष्टरे पाण्डुकेऽमले ।
अस्नापयत्तदपां पूर्णैर्हेमकुम्भैः पयोऽम्बुधेः ॥१८॥ युग्मम् ।

तं शचीपतिसंस्कारकृतकौतुकमङ्गलम् ।
स्तुत्वा प्रणम्य देवेन्द्रा मन्दरात्पुरमागताः ॥१९॥

इन्द्राणी जिनमादाय स्वपतेः करपल्लवात् ।
विन्यस्य मातुरुत्संगे व्यपनीय प्रतिरूपकम् ॥२०॥

कुबेरने भगवान्‌के गर्भमें आनेके छह माह पहले और गर्भावस्थाके नव महीनोंमें इस तरह पन्द्रह महीनों तक साढ़े तीन करोड़ रत्न भगवानके माता-पिताके घर बरसाये ॥११॥ जन्म काल आने पर वे भगवान् तीन लोकोंको कम्पायमान करते हुए उस मातासे ठीक वैसे ही पैदा हुए जैसे पूर्व दिशासे सूर्य उगता है ॥१२॥

उस समय सभी प्रजा संतुष्ट हो गई और सभी दिशाएँ स्वच्छ हो गईं। देवतागण दुन्दुभि बाजे बजाने लगे और आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी ॥१३॥ इन्द्रोंने अपने-अपने आसन कम्पनेसे शीघ्र ही भगवान्‌के जन्मको जान लिया और बड़ी विभूतिसे देवों और देवाङ्गनाओंके साथ उस नगर में आये ॥१४॥

इन्द्राणी माताका संस्कार कर तथा उसे मोहनिद्रामें सुला पासमें मायामयी बालकको रखकर भगवान्‌को उठा ले गई और उसे इन्द्रके हाथमें रख दिया ॥१५॥ वस्त्रोंसे भूषित इन्द्रके हाथमें वे भगवान् अत्यन्त शोभित हुए जैसे कि संध्याके समय स्वच्छ समुद्रपर शरद्कालीन सूर्य सुशोभित होता है ॥१६॥ इसके बाद इन्द्र, भगवान्‌के ऊपर श्वेत छत्र लगाकर चांवरोंको हिलाता हुआ उन्हें रत्नोंकी किरणोंसे गुलाबी रंगवाले सुमेरुपर्वतपर ले गया ॥१७॥ और उन्हें निर्मल पाण्डुक शिलाके ऊपर जगमगाते सिंहासनपर बैठाकर क्षीरसागरके जलसे भरे हुए स्वर्णके कलशों से भगवानका अभिषेक किया ॥१८॥ इसके बाद इन्द्रने भगवान् को उत्तम वस्त्र आभूषण अलंकार आदि पहनाये और सभी इन्द्रों ने भगवान्‌को प्रणाम कर स्तुति की तथा सुमेरु पर्वतसे नगरमें ले आये ॥१९॥ फिर इन्द्राणीने अपने पतिके करकमलोंसे भगवान् को लेकर, मायामयी बालकको हटाकर माताकी गोदमें रख दिया ॥२०॥ तथा सभी इन्द्र भगवान्‌के माता-पिताकी विधिपूर्वक

गुरू जिनस्य देवेन्द्राः पूजयित्वा यथाविधि ।
आक्रीड्य नृत्यमानन्दं तदा स्वं ययुरालयम् ॥२१॥
भाज्यं त्रैलोक्यपूजायै लब्ध्वा तनयमुत्तमम् ।
भगवत्पितरौ प्रीतिमतुलां समवापतुः ॥२२॥
लक्ष्मीः काश्यपवंशस्य परां वृद्धिं दिने दिने ।
ययौ समन्ततो यस्माज्जाते त्रिभुवनेश्वरे ॥२३॥
तस्मादिन्द्रैः पितृभ्यां च दर्शनात्तृप्तलोचनैः ।
वर्द्धमान इति श्रीमान्नाम चक्रे मुदा विभोः ॥२४॥
प्रजानां परमप्रीतिं कुर्वन् प्रतिदिनं विभुः ।
त्रिज्ञानी ववृधे कान्त्या सौम्यया बालचन्द्रवत् ॥२५॥
क्रीडन्तमन्यदोद्याने कुमारैर्बहुभिर्जिनम् ।
रौद्रेण फणिरूपेण कश्चिद्देवो विभीषितः ॥२६॥
तदत्रासात्स्वयं त्रस्तो नतः कृत्वातिपूजनम् ।
वीरो नाम्नाऽयमित्याख्यामकरोदस्य विश्रुताम् ॥२७॥
फुल्लाम्भोजरजोगन्धिः स्वप्रभापरिवेषिणी ।
आसीत्तस्य तनुः कान्तिव्यक्तव्यञ्जनलक्षणा ॥२८॥
न किञ्चिदद्भुतं तस्य बभूव परमद्भुतम् ।
नानाऽद्भुतं वृथैवासीत्पश्यतां चरितं निजम् ॥२९॥
मुदिता वीक्ष्यमाणास्तं प्रजास्तद्गुणरञ्जिताः ।
आत्मोपार्जितसत्पुण्यविपाकमिव मेनिरे ॥३०॥
धनदेन समानीतैर्विचित्रैर्वासवाज्ञया ।
भोगैररमत प्राज्यैरतीवसुखकारणैः ॥३१॥
राज्यलक्ष्मीशितापाङ्गप्रणयावल्लुलोचनैः ।
कामितो नैव च क्षेमे प्रथमज्ञानचोदितः ॥३२॥

पूजा कर आनन्द नामक नाटक खेलकर अपने-अपने स्थान चले गये ॥२१॥

त्रैलोक्यमें पूजाके योग्य पात्र श्रेष्ठ पुत्रको पाकर भगवान्‌के माता-पिता अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥२२॥ त्रिभुवनपतिके उत्पन्न होनेसे काश्यप वंशकी लक्ष्मी दिनों-दिन चारों ओर खूब बढ़ने लगी; इसलिए तथा उनके दर्शनसे इन्द्र लोग और भगवान्‌के माता-पिताके नेत्र तृप्त हो गये, इन कारणोंसे भगवान्‌का नाम प्रसन्नतापूर्वक 'श्रीवर्धमान' रखा गया ॥२३-२४॥ तीन ज्ञानके धारी वे भगवान् जनताको प्रतिदिन परम प्रसन्नता देते हुए, बाल-चन्द्रमाके समान सौम्य कान्तिसे बढ़ने लगे ॥२५॥

एक समय भगवान् बहुतसे राजकुमारोंके साथ खेल रहे थे। उसी समय उन्हें किसी देवने भयङ्कर सर्पका रूप धारणकर डरवाया ॥२६॥ पर भगवान्‌के न डरनेसे वह स्वयं डर गया और उन्हें नमस्कार कर पूजा की तथा उनका 'वीर' यह प्रसिद्ध नाम रख दिया ॥२७॥ भगवान्‌के शरीरकी सुगन्धि फूले हुए कमलकी गंधके समान थी, प्रभामण्डलसे व्याप्त उनके शरीरकी कान्ति थी तथा उनका शरीर अनेक प्रकट शुभ चिह्नोंसे युक्त था ॥२८॥ भगवान्‌के लिए अत्यन्त अद्‌भुत वस्तु भी कुछ भी अद्‌भुत न थी पर भगवान्‌के अद्‌भुत चरितको देखनेवालोंके लिए अन्य दूसरे अद्‌भुत व्यर्थ ही थे ॥२९॥ उनके गुणोंमें मुग्ध जनता उन्हें देखकर बहुत प्रसन्न होती थी और सब लोग उनके दर्शनको अपने पूर्वजन्ममें उपार्जित उत्तम पुण्यका फल ही मानने लगे ॥३०॥

वे भगवान् इन्द्रकी आज्ञासे कुबेर-द्वारा लाये गये अत्यन्त सुख देनेवाले, विचित्र प्रकारके अनेकों भोगोंसे सुखपूर्वक रहने लगे। राज्य-लक्ष्मीके तीक्ष्ण कटाक्षों और स्नेह भरे नेत्रोंसे चाहे-जानेपर भी वे भगवान् मतिज्ञानावरणके क्षयोपशम हो जानेपर

तदा लौकान्तिका देवा नियोगात्तमबोधयन् ।
उन्मूलनाय दोषाणां क्षणोऽयमिति ते क्षमः ॥३३॥

समां प्रागभिनिःक्रान्तेर्जनतायै धनेश्वरः ।
ददौ किमिच्छकं दानं जिनं वज्रधराज्ञया ॥३४॥

इन्द्राः स्वविष्टराकम्पैर्विदित्वाऽवधिलोचनाः ।
आययुः परिवारैः स्वैः सहसा कृतभूषणाः ॥३५॥

कुम्भैरष्टसहस्रेण पयोऽर्णवजलोदरैः ।
अभिषिच्य जिनं वासो भूषणाद्यैरभूषयत् ॥३६॥

रम्यां चन्द्रप्रभां नाम्ना चन्द्रांशुद्युतिहारिणीम् ।
निर्वर्त्य शिबिकां भक्त्या राजराजः समानयत् ॥३७॥

इन्द्रविज्ञापितेनेशा समारूढां मनोहराम् ।
उत्क्षिप्तां क्षत्रियैः पूर्वं तामूहुस्त्रिदशेश्वराः ॥३८॥

सेवितो गीतनृत्याद्यैः सन्मोदैरप्सरोगणैः ।
भुवस्तिलकमुद्यानं ज्ञातखण्डमवाप सः ॥३९॥

अवतीर्य ततस्तत्र निरस्तवसनाधिकः ।
शिलायामासितः केशानलुञ्चत्पञ्चभिर्ग्रहैः ॥४०॥

दीक्षां षष्ठेन भक्तेन गतसङ्गां दिगम्बरः ।
उपेतो राजतापास्तघनरोध इवांशुमान् ॥४१॥

हैमे पटलके जैनान्केशानादाय वज्रभृत् ।
अभ्यर्च्य निदधे क्षीरपयोधेरमले जले ॥४२॥

दीक्षासमयसम्प्राप्तमनःपर्ययलोचनम् ।
इन्द्राः सपरिवारास्तं प्रणिपत्य दिवं ययुः ॥४३॥

(गृहस्थावस्थामें) ठहर न सके ॥३१–३२॥ उस समय नियोग पूरा करनेके लिए लौकान्तिक देव आये और भगवान्‌को समझाने लगे कि हे भगवन्, दोषोंको नष्ट करनेके लिए तुम्हारे लिए यही क्षण अच्छा है ॥३३॥ इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने जिन भगवान्‌की दीक्षा के एक वर्ष पहले ही से जनताके लिए 'जो चाहो उसी वस्तु' का दान दिया ॥३४॥ अवधिज्ञानधारी इन्द्रोंने अपने-अपने आसनोंके कंपनेसे भगवान्‌का दीक्षा-कल्याणक जाना और जल्दीसे सजधज कर अपने-अपने परिवारोंके साथ वहाँ आये ॥३५॥ तथा भगवान्‌का क्षीरसागरके जलसे भरे एक हजार आठ घड़ोंसे अभिषेक किया और उन्हें वस्त्र आभूषण आदिसे सजाया ॥३६॥ तब कुबेर चन्द्रमाकी किरणोंकी चमकको मात करनेवाली चन्द्रप्रभा नामकी रमणीय पालकीको बनाकर भक्तिपूर्वक वहाँ लाया ॥३७॥ और इन्द्रके निवेदन करनेपर वे भगवान् उस मनोहर पालकीमें बैठे, जिसे पहले पहल क्षत्रिय लोग उठाकर ले चले और फिर देवता लोग उसे लेकर चले ॥३८॥ बहुत प्रसन्न देवाङ्गनाओं-द्वारा गीत, नृत्य आदिसे सेवित वे भगवान् पृथिवीके तिलकके समान सुन्दर ज्ञातखण्ड नामके उद्यानमें पहुँचे ॥३९॥ फिर पालकीसे उतरकर उन्होंने वस्त्र-भूषण उतार दिये और एक शिलापर बैठकर पञ्च मुष्टिसे अपना केशलोंच कर लिया ॥४०॥ फिर उन्होंने समस्त परिग्रह छोड़कर षष्ठोपवास पूर्वक दीक्षा ले ली और स्वाभाविक दीप्तिसे वे ऐसे मालूम होते थे जैसे बादलोंके हट जानेसे सूर्य प्रभान्वित होता है ॥४१॥ तब इन्द्रोंने भगवान्‌के बालोंको सोनेकी डिबियामें रखकर और उनकी पूजाकर उन्हें क्षीरसागरके निर्मल जलमें क्षेप दिया ॥४२॥ दीक्षा लेते ही भगवान्‌को मनःपर्यय ज्ञान हो गया तब इन्द्रोंने अपने सब देवों तथा देवियोंके साथ तपः-कल्याणककी पूजा की तथा वे स्वर्गलोक लौट गये ॥४३॥

शिखरिणीवृत्तम्

जराऽऽवर्त्तोद्भ्रान्ति बहुविधरुजाग्राहकलितं
भयक्लेशोद्वीचिं मरणबहुलालोलसलिलम् ।
हृतं तृष्णावातैर्जननजलधेर्तोयमखिलं
द्रुतं नेतुं येते गुणकिरणमालो जिनरविः ॥४४॥

इति श्रीवर्द्धमानचरिते पुराणसंग्रहे भगवदभिनिष्क्रमणं नाम
चतुर्थः सर्गः समाप्तः ॥

अनेक गुणरूपी किरणोंसे विभूषित उन जिन रूपी सूर्यने, ऐसे संसार-समुद्रके सारे जलको शीघ्र ही सुखा देनेका प्रयत्न किया जहाँ कि वृद्धावस्थारूपी भँवरोंके चक्कर हैं, जो कि नाना प्रकारके रोगरूपी ग्राहोंसे व्याप्त है तथा भय और क्लेश रूपी लहरोंसे भरा है, एवं जहाँ सदा मरणरूपी चंचल जल है और जो तृष्णारूपी वायुओंसे संचालित है ॥४४॥

इस प्रकार पुराणसारसंग्रहके वर्धमानचरितमें भगवान्‌का दीक्षा-कल्याणक नामक चौथा सर्ग समाप्त हुआ ।

पञ्चमः सर्गः

कूलग्रामे ततो धीमानपरेद्युर्दयापरः ।
स्थितये संयमादीनां भिक्षावृत्तिमनुष्ठितः ॥१॥

प्रतिलभ्य जिनं तत्र सन्तुष्टः कूलभूपतिः ।
प्रणिपत्य समभ्यर्च्य ददौ पायसमादृतः ॥२॥

वसुधाराऽपतद् व्योम्नः दिवि दुन्दुभयोऽनदन् ।
विचेलुः शीतला वाता दिव्यगन्धविसर्पिणः ॥३॥

वृष्टिः पपात पुष्पाणां चन्दनाऽमृतगर्भिणाम् ।
अहो दानगिरः प्रीतैश्चक्रिरे बहुशोऽमरैः ॥ ४ ॥

तनुसन्धारणामात्रामदोषां शुद्धदातृकाम् ।
आदाय युक्तितो भिक्षामष्टिकास्थानमाश्रितः ॥ ५ ॥

ततः सुरगणाः प्रीता वचनैः श्रवणामृतैः ।
पात्रदानं प्रशंसन्तः कूलं च समपूजयन् ॥ ६ ॥

कर्मणां संहतिः क्षिप्रं क्षयं याति यथा यथा ।
सत्तपोभावनायत्नः स बभूव तथा तथा ॥ ७ ॥

विश्वजीवनिकायेषु दयाविततमानसः ।
वर्षास्वेकत्र योगेन चातुर्मास्यं जिनोऽवसन् ॥ ८ ॥

ततोऽपरेषु मासेषु ज्ञानध्यानतपोरतः ।
व्यहरत्पुरराष्ट्राणि बभूवाऽप्रतिबन्धनः ॥ ९ ॥

निशायामुज्जयन्यां तु कायोत्सर्गेण संस्थितः ।
गौर्या समं व्रजन्योगी दृष्टवानीश्वरः स तम् ॥१०॥

पञ्चम सर्ग

किसी दूसरे दिन दयालु बुद्धिमान् भगवान् संयम आदिकी रक्षाके लिए भिक्षा लेनेको कूल ग्राममें गये ॥१॥ वहाँके कूल नामक राजाने भगवान्‌को अपने यहाँ आया हुआ जानकर उन्हें नमस्कार कर पूजा की और आदरपूर्वक खीरका आहार दान दिया ॥२॥ तब वहाँ पञ्च आश्चर्य हुए—पहला, आकाशसे धनकी वृष्टि हुई; दूसरा, आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं; तीसरा, शीतल एवं दिव्य सुगन्धिको फैलानेवाली वायु बहने लगी; चौथा चन्दन-की सुगन्धि और अमृतसे भरे फूलोंकी वृष्टि होने लगी; पाँचवाँ, देवताओंने प्रसन्न होकर 'अहो दान, 'अहो दान' इस प्रकार बहुत बार शब्द किये ॥३-४॥ भगवान् शुद्ध दातासे दी गई निर्दोष भिक्षाको शरीर धारण मात्रके लिए लेकर अष्टिका नामक स्थानमें योग पूर्वक ठहर गये ॥५॥ उस समय देवोंने प्रसन्न होकर कानों-को प्रिय लगनेवाले वचनोंसे योग्य-पात्रमें दिये गये दानकी प्रशंसा की और उस कूल राजाकी पूजा की ॥६॥

वे भगवान् जितनी जल्दी यह कर्मराशि क्षीण हो जाये तद्-नुरूप ही उत्तम तप और आराधना करनेमें प्रयत्नशील हुए ॥७॥ तथा संसारके सभी प्राणियोंपर दयासे चित्तको व्याप्त कर अर्थात् दयाभावसे वर्षाकालके चार महीनोंमें वे एक ही जगह योग-धारण कर रहते थे ॥८॥ और उसके अतिरिक्त दूसरे महीनोंमें ज्ञान ध्यान तपमें लवलीन वे भगवान् वे रोक-टोक नगरों और देशोंमें लोगोंको धर्मोपदेश देते हुए भ्रमण करने लगे ॥९॥

एक समय ये उज्जयिनी नगरमें रात्रिके समय कायोत्सर्ग धारण कर बैठे थे। वहाँ गौरीके साथ घूमते हुए योगी (सात्यकि

वेतालफणिसिंहादिरूपं विद्याबलेन तु ।
कृतवान्भीषणस्तत्र तस्य धैर्यं परीक्षितुम् ॥११॥

चलितुं तमशक्तः सन् पूजां कृत्वाऽभिधानताम् ।
दत्त्वाऽपि च महावीरमित्यगात्स निजालयम् ॥१२॥

अन्यदा जृम्भिकग्रामे ऋजुकूलनदीतटे ।
मनोहरवने सालवृक्षाधःस्थशिलातले ॥१३॥

षष्ठभक्तं समादाय शुक्लध्यानमुपेयिवान् ।
आरोहत्क्षपकश्रेणीं जिगीषायै रजोद्विषाम् ॥१४॥

ध्यानाच्चिच्छेदमोहादिघातिकर्मचतुष्टयम् ।
आहूय केवलज्ञानमपराह्णे स लब्धवान् ॥१५॥

ततो ज्ञात्वा तदुद्भूतिं लोकत्रितयकम्पिनीम् ।
इन्द्राः देवगणोपेता आययुः सविभूतयः ॥१६॥

नाथं प्रदक्षिणीकृत्य स्तवैः स्तुत्वा स्तुतेः पदम् ।
प्रणिपत्य मुदा मूर्ध्ना पूजयित्वा गता दिवम् ॥१७॥

दिव्यध्वनिसमुत्पत्तिं ज्ञात्वोपायेन गोतमम् ।
आनीतवांस्तदा शक्रः स बभूव गणीश्वरः ॥१८॥

प्रतिपद्दिनपूर्वाह्णे कृष्णे श्रावणमासि च ।
षट्सप्तवासरैर्जातो दिव्यध्वनिविनिर्गमः ॥१९॥

स वाचां मध्यमां प्राप्य तीर्थोत्पादनकारणाम् ।
महासेनवनोद्यानं समाध्यासितवान् विभुः ॥२०॥

ततः स्वतनुभूषादिद्युतिचक्रविसर्पणैः ।
द्योतयन्तो दिशोऽशेषा आयन्देवाः समन्ततः ॥२१॥

नामके) महादेवने उन्हें देखा ॥१०॥ उस रुद्रने भगवान्के धैर्यकी परीक्षा करनेके लिए अपने विद्या-बलसे वेताल, सर्प, सिंह आदि के रूप धारण किये, पर वह उन्हें डिगानेमें असमर्थ रहा। फिर उनकी पूजाकर, उनका 'महावीर' नाम रखकर वह अपने स्थान चला गया ॥११-१२॥

एक समय भगवान् ऋजुकूला नदीके किनारे जृम्भिक ग्रामके पास मनोहर नामक वनमें एक सालवृक्षके नीचे शिलापर बैठे थे ॥१३। वहाँ उन्होंने षष्ठोपवास पूर्वक शुक्ल ध्यान प्राप्त किया, तथा कर्म शत्रुओंको जीतनेके लिए क्षपक श्रेणीमें आरूढ़ हुए ॥१४॥ और अपनी ध्यानरूपी अग्निमें मोहनीय आदि चार घातिया कर्मोंकी आहुति देकर दोपहरके बाद केवलज्ञान प्राप्त किया ॥१५॥ तब तीनों लोकोंको कम्पन करनेवाले केवल ज्ञानको उत्पन्न हुआ जानकर सभी इन्द्र, देवोंके समूहके साथ, बड़े वैभवसे वहाँ आये ॥१६॥ और प्रदक्षिणा कर स्तुति योग्य उन भगवानकी स्तुति की तथा प्रसन्नतापूर्वक सिर झुकाकर उन्हें नमस्कार कर तथा पूजाकर स्वर्गलोक चले गये ॥१७॥

भगवानकी दिव्यध्वनि निकलनेका क्या कारण होना चाहिये यह विचार कर इन्द्र गौतम (इन्द्रभूति) को वहाँ किसी उपायसे ले गया। वे गौतम भगवान्के प्रथम गणधर हुए ॥१८॥ भगवान्की दिव्यध्वनि श्रावण महीनेके कृष्ण पक्षको प्रतिपदाके दिन पूर्वाह्नमें निकली और छै सात दिन तक बराबर चलती रही ॥१९॥ उन भगवान्ने तीर्थ-प्रवर्तन करनेके लिए हेतुभूत मध्यमा वाणीका अवलम्बन लिया और महासेन वन नामक उद्यानमें आकर बैठ गये ॥२०॥ तब अपने शरीरके आभूषण आदिके प्रकाश-मण्डल (जगमगाहट) को फैलाते हुए और समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हुए चारों ओरसे देवता लोग वहाँ आये ॥२१॥

नेदुर्दुन्दुभयो व्योम्नि सुभगा मारुता ववुः ।
पुष्पवृष्टिर्दिशो गन्धैर्वासयन्ती दिवोऽपतत् ॥२२॥
प्रकृत्य प्रातिहार्याणि महं च परमाद्‌भुतम् ।
अध्यासत पिबन्तस्ते जिनवाक्यसुधारसम् ॥२३॥
तमशिष्यैर्जनैरन्यैर्दुरापं च जगत्त्रये ।
अश्रौषुरिन्द्रभूत्याद्या जीवादिगतसंशयाः ॥२४॥
निर्वर्ण्य तूर्णमागत्य प्रणिपत्य जिनेश्वरम् ।
चन्दना राजकन्यानां षष्टा दीक्षामुपेयुषी ॥२५॥
महासेनादयो जाताः श्रावका धरणीभुजः ।
जाताः प्रियङ्गुदेव्याद्याः श्राविका गततामसाः ॥२६॥
चतुर्विकल्पसङ्क्लेशो भूत्वा संज्ञानतेजसा ।
चकार संशयच्छेदं देवमानवसंसदि ॥२७॥
जीवान् संसारजलधेस्तारणार्हान् स तारयन् ।
प्रजाभ्यो देशयन्धर्मं विजहार जिनो भुवम् ॥२८॥
श्रीमतो वर्द्धमानस्य सर्वातिशयशोभिनः ।
गणेशाः सङ्ख्ययाऽभूवन्नेकादश महाधियः ॥२९॥
शतपञ्चभिरभ्यस्तं ५०० मनःपर्ययवादिनाम् ।
आसीत्केवलिनां संख्या विहतं सप्तभिः शतम् ॥३०॥
त्रयोदशशता १३०० न्यासन्नवधिज्ञानसंयुताः ।
शतानि नव सङ्ख्यातो वैक्रियावशवर्त्तिनाम् ॥३१॥
सहस्रा नव शैक्षास्ते नवाहतशतोत्तरा । ९९००
आसन् पूर्वधरास्त्रीणि शतानि ३०० महातेजसः ॥३२॥
शतमासीच्चतुष्कं तु वादिनां युक्तिवादिनाम् ।
आर्यिकाणां सहस्रं तु षट्त्रिंशद्विहतं पुनः ॥३३॥
त्रयं शतसहस्राणां ३००००० श्राविकाणां प्रमाणतः ।
एकं शतसहस्रं च १००००० श्रावकाणां यशोभृताम् ॥३४॥

उस समय आकाशमें दुन्दुभियाँ बजने लगी, सुगन्धित वायु बहने लगी और दिशाओंको सुगन्धिसे सुगन्धित करती हुई आकाशसे पुष्पवृष्टि गिरने लगी ॥२२॥ सभी देवता आठ प्रातिहार्योंकी रचना कर और अत्यन्त अद्भुत पूजाकर भगवान्‌के धर्मोपदेश रूपी अमृतका पान करते हुए समवशरणमें बैठ गये ॥२३॥ तीनों लोकोंमें अपात्र लोगोंके लिए दुर्लभ उस वाणीको इन्द्रभूति आदि गणधरोंने जीवादि तत्त्वमें सन्देह रहित होकर सुना ॥२४॥

चेटक राजाकी छठवीं पुत्री चन्दनाने भगवान्‌को प्रणाम कर तथा शीघ्र ही संसारसे विरक्त हो जिनदीक्षा धारण कर ली ॥२५॥ महासेन आदि राजा लोग भी श्रावक हो गये और प्रियङ्गुदेवी आदि रानियाँ अज्ञानरहित हो श्राविकाएँ हो गईं ॥२६॥ वे भगवान् मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका, इन चार संघोंके स्वामी थे। उन्होंने अपने श्रेष्ठ ज्ञानबलसे देवताओं और मनुष्योंकी सभामें जनताका संशय नष्ट किया ॥२७॥ संसार-सागरसे तरने योग्य भव्य जीवोंको तारते हुए तथा प्राणिवर्गको उपदेश देते हुए वे जिनेन्द्र भूतल पर भ्रमण करने लगे ॥२८॥

सभी अतिशयोंसे युक्त उन श्रीवर्धमान भगवान्‌के संघमें महाबुद्धि शाली ११ गणधर थे; ५०० मनःपर्यय ज्ञानधारी थे तथा सात सौ केवलज्ञानी मुनि थे; तेरह सौ अवधिज्ञानी मुनियोंकी संख्या थी; विक्रियाऋद्धिधारी मुनियोंकी संख्या नौ हजार नौ सौ थी; तथा परम तेजस्वी चौदह पूर्वधारी मुनि तीन सौ थे. एवं युक्तिवादी मुनि चार सौ थे; चन्दनादि छत्तीस हजार आर्यिकाएँ थीं तथा तीन लाख श्राविकाएँ थीं और एक लाख यशस्वी श्रावक थे ॥२९-३४॥

इस प्रकार चतुर्विध संघके साथ भ्रमण कर अन्तमें वे रत्नत्रय

अथाऽन्ते दर्शनज्ञानचारित्रविधिनायकः ।
आगत्य नगरीं पावां सहसङ्घचतुष्टयः ॥३५॥
शिलायां स्थितवानेकः प्रलम्बितकरद्वयः ।
भूत्वा योगी ततश्चक्रे शेषाणां कर्मणां क्षयम् ॥३६॥
ऊर्जस्य कालपक्षस्य चतुर्दश्यां निशि प्रभुः ।
कृतिं निष्ठाप्य षष्ठेन प्रत्यूषे प्राप निर्वृतिम् ॥३७॥
अथेन्द्रा देवसङ्घेन साकं सपदि सादराः ।
निशि तमांसि भिन्दन्तो रुचां चक्रैः समाययुः ॥३८॥
आत्मीयशक्तिसर्वस्वं दर्शयन्त इवाद्भुताम् ।
पूजां तस्य तनोश्चक्रुर्गन्धाम्बुप्रसवादिभिः ॥३९॥
ततो जिनकथासान्द्ररसरञ्जितमानसाः ।
उत्पाद्य पुण्यसद्रत्नं ययुर्नाकं यथायथम् ॥४०॥
स समा त्रिंशतं भोगे वने च द्वादशाऽवसत् ।
विजहार श्रिया जैन्या त्रिंशतं त्रिदशार्चितः ॥४१॥
वैशाखशुक्लपक्षस्य दशम्यामाप केवलम् ।
श्रावणकृष्णपक्षादिदिने तीर्थप्रवर्तनम् ॥४२॥
अर्यमक्षभवदृक्षं स्वर्गावतरणादिषु ।
स्वातिश्च परिनिर्वाणे वर्द्धमानस्य धीमतः ॥४३॥
सप्तारत्निप्रमाणाङ्गं शरत्तपनतेजसम् ।
वर्द्धमानं जिनं मूर्ध्ना नमामि ज्वलितश्रियम् ॥४४॥

शिखरिणीवृत्तम्

इतीयं नामावलिरुचिरकुसुमैः कान्तिरहितै-
र्यशोगन्धाऽऽमोदैः स्तुतिकिसलयोन्मिश्रसुभगैः ।
जिनस्याऽर्च्या भक्तिप्रचलितधियाऽकारि हि मया
क्षमा कार्या तस्यां गुणविरहितायामपि विदा ॥४५॥

निधिके स्वामी भगवान् पावा नगरीमें आये ॥३५॥ वहाँ एक शिलापर अकेले खड्गासनसे खड़े होकर उन भगवान्ने शेष कर्मोंको भी नष्ट कर दिया ॥३६॥ और उन्होंने कार्तिक महीनेकी कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिमें कृतकृत्य हो प्रातः काल मोक्ष प्राप्त किया ॥३७॥ तब इन्द्र लोग देवताओंके साथ शीघ्र ही रात्रिके अंधकारको अपनी प्रभामण्डलसे भेदते हुए अर्थात् लोकको प्रकाशित करते हुए भक्ति पूर्वक वहाँ आये ॥३८॥ तथा अपनी आत्मीय शक्तिका पूरा प्रदर्शन करते हुए उन लोगोंने जल चन्दन पुष्प आदिसे भगवान्के शरीरकी अद्भुत पूजा की, ॥३९॥ और जिन भगवान्का गुण कीर्तन कर पुण्य लाभ कर प्रसन्नचित्त हो स्वर्गलोक चले गये ॥४०॥

उन भगवान्ने अपनी आयुके तीस वर्ष भोगोंमें, १२ वर्ष तपस्यामें और तास वर्ष तक इन्द्रोंसे पूज्य अर्हन्त लक्ष्मी पाकर विहार किया ॥४१॥ उनने वैशाख शुक्ल दशमी तिथिके दिन केवलज्ञान प्राप्त किया था और श्रावण कृष्ण प्रतिपदाको तीर्थ प्रवर्तन किया था। वर्धमान भगवान्के स्वर्गसे अवतरण आदिमें अर्यमा नामका योग था और मोक्ष जानेमें स्वाति नक्षत्र था ॥४२-४३॥ उनके शरीरकी ऊँचाई सात अरत्नि अर्थात् ३॥ हाथ थी। शरीरकी कान्ति शरद्कालीन सूर्यके समान थी। मैं प्रकाशमयी उन जिन वर्धमानको नमस्कार करता हूँ ॥४४॥

इस प्रकार भक्तिवश मैंने यशरूपी गन्धसे सुगन्धित और स्तुतिरूपी कोपलोंसे सुशोभित (अलंकारादि) कान्तिसे रहित होने पर भी नामावलीरूपी मनोहर पुष्पोंसे जिन भगवान्की पूजा की है। गुणोंसे रहित भी इस स्तुतिके संबंधमें सज्जन लोग मुझे क्षमा करें ॥४५॥

विद्यामें पारङ्गत देवाङ्गनाओंका स्वामी इन्द्र भी जिनके थोड़े

गताऽन्तो विद्यानां त्रिदशवनितानामधिपति-
र्न शक्तो यस्यासीद्गुणलवमपि स्तोतुमखिलम् ।
महिम्नामाधारो भुवनविततध्वान्ततपनः
स भूयान्नो वीरो जननजयसम्पत्तिजननः ॥४६॥

इति वर्द्धमानचरिते पुराणसारसंग्रहे भगवन्निर्वाणगमनं नाम
पञ्चमः सर्गः समाप्तः ॥

गुणोंकी भी पूरी तरहसे स्तुति करनेमें असमर्थ रहा, वे महिमाओं के आधार, संसारके अज्ञानान्धकारको दूर करनेमें सूर्यके समान वीर भगवान् हमलोगोंके जन्म मृत्यु जीतनेवाली सम्पत्ति अर्थात् मोक्षको देनेवाले हों ॥४६॥

इसप्रकार पुराणसारसंग्रहके वर्धमानचरितमें भगवान्का मोक्ष-गमन नामक पाँचवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

उद्देश्य

ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित
अनुसन्धान और प्रकाशन तथा लोक-
मौलिक साहित्यका निर्माण
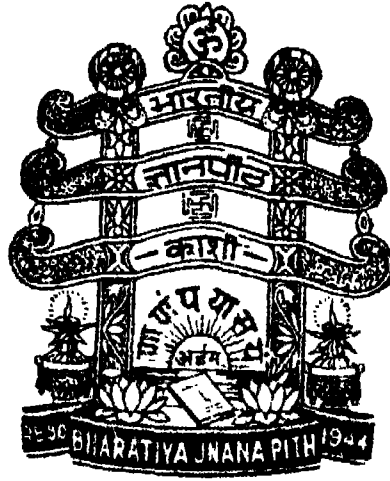
संस्थापक
साहू शान्तिप्रसाद जैन

अध्यक्षा
श्रीमती रमा जैन